RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

वर्ष : 8

अंक : 31

अक्टूबर-दिसम्बर 2023

मूल्य 50 रुपये

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

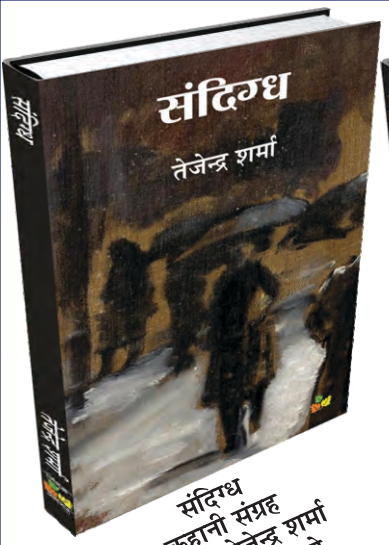

संदिग्ध
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य : 300 रुपये

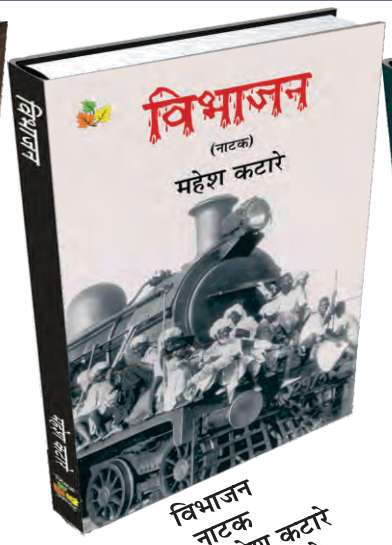

विभाजन
नाटक
लेखक - महेश कटारे
मूल्य : 200 रुपये

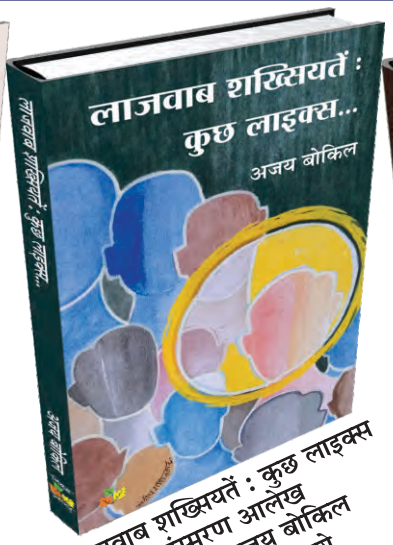

लाजवाब शख्सियतें : कुछ लाइक्स
संस्मरण आलेख
लेखक - अजय बोकिल
मूल्य : 400 रुपये

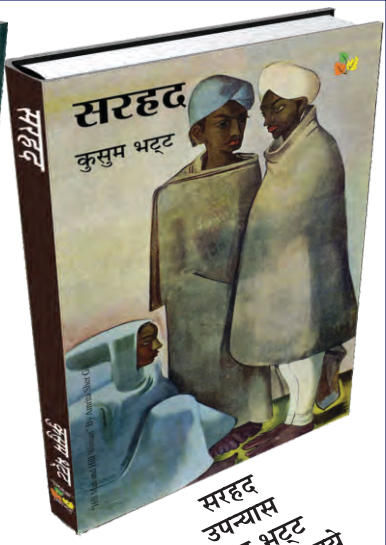

सरहद
उपन्यास
कुसुम भट्ट
मूल्य : 150 रुपये

संवाद की संस्कृति
साक्षात्कार
संपादक - राहुल देव
मूल्य : 225 रुपये

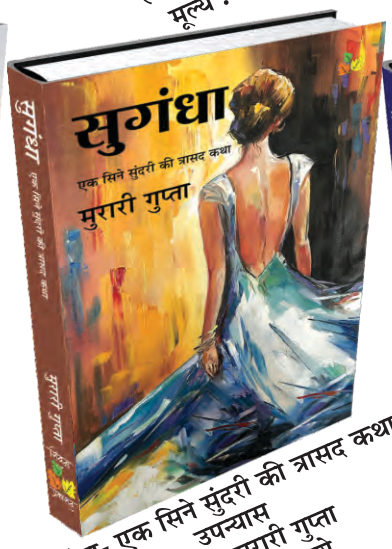

सुगंधा- एक सिने सुंदरी की त्रासद कथा
उपन्यास
लेखक - मुरारी गुप्ता
मूल्य : 350 रुपये

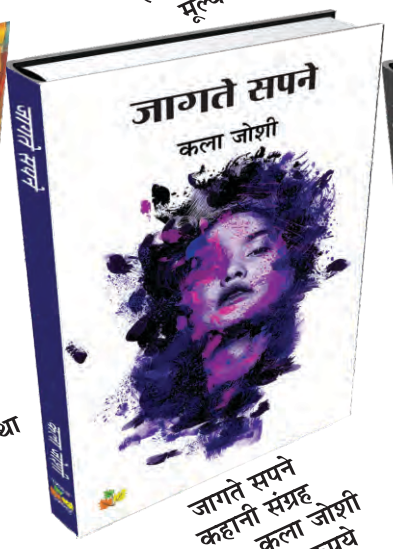

जागते सपने
कहानी संग्रह
लेखक - कला जोशी
मूल्य : 200 रुपये

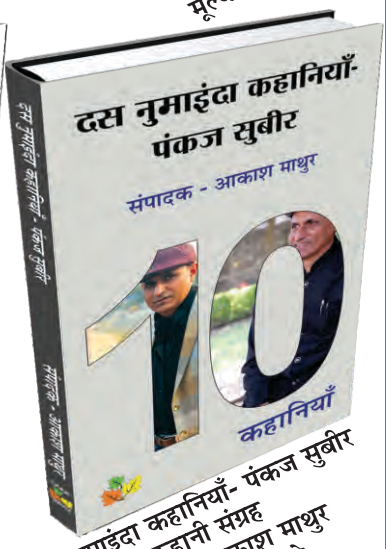

दस नुमाइंदा कहानियाँ- पंकज सुबीर
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

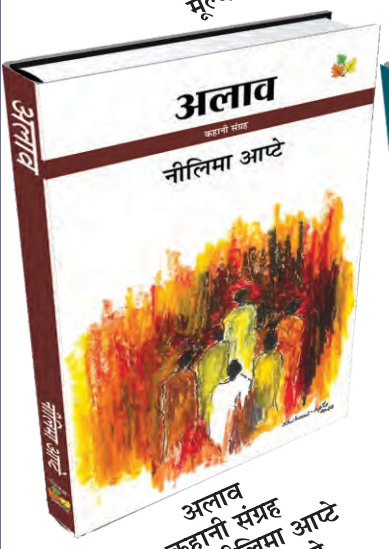

अलाव
कहानी संग्रह
लेखक - नीलिमा आप्टे
मूल्य : 150 रुपये

सर्जक, आलोचक और कोशकार डॉ. मधु सन्धु
व्यक्तित्व
संपादक - डॉ. दीप्ति
मूल्य : 400 रुपये

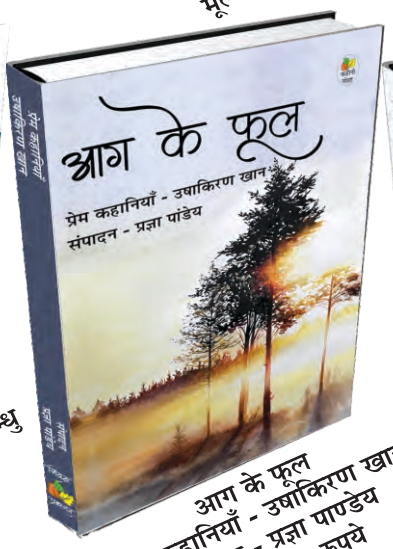

आग के फूल
प्रेम कहानियाँ - उषाकिरण खान
संपादक - प्रज्ञा पाण्डेय
मूल्य : 225 रुपये

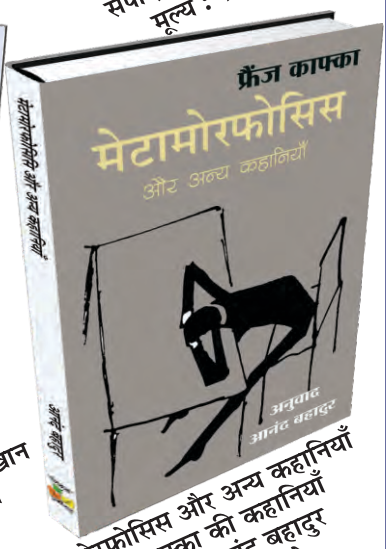

मेटामोरफोसिस और अन्य कहानियाँ
फ्रैंज काफ़्का की कहानियाँ
अनुवाद - आनंद बहादुर
मूल्य : 400 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 31, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2023
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

इन्दौर से भोपाल जाते हुए रास्ते में क्षिप्रा नामक स्थान पर यह महिला इसी प्रकार एक ठेले पर बैठ कर भुट्टे सेंक कर बेचती है।

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 31

अक्टूबर-दिसम्बर 2023

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

स्त्री विमर्श भी अराजकता का शिकार हो गया है

कहानीकार-उपन्यासकार तथा प्रतिलिपि की संपादक वीणा वत्सल सिंह से आकाश माथुर की बातचीत 9

विस्मृति के द्वार से

कहानी का सफ़र

नरेंद्र नागदेव 14

कथा कहानी

कौन ज़िम्मेदार

शेर सिंह 20

इक वादा था ख़्वाब का पूरा हुआ अभी-अभी

विमलेश शर्मा 24

एक अपने लिए

अंजना वर्मा 30

मन्दिर वाला घर

किसलय पंचोली 35

कोठी मिर्ज़ा सिंह

ज्योत्सना सिंह 38

स्टील का कप

ममता त्यागी 41

इन्द्रधनुष

प्रेमा श्रीवास्तव 45

भाषांतर

क्वीन्स लैंड

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : आग़ाज़बीर

अनुवाद : सुभाष नीरव 48

लघुकथा

अपनेपन की डोर

प्रगति त्रिपाठी 34

जनम जनम का साथ

सुभाष चंद्र लखेड़ा 40

हेल्प

यशोधरा भटनागर 47

रेखाचित्र

भेरू दादा

ज्योति जैन 52

स्मृति आलेख

रंगरेज़ के नाम हुआ एक रास्ता

विनय उपाध्याय 54

ललित निबंध

बोलिए सुरीली बोलियाँ...

वंदना मुकेश 56

व्यंग्य

एक प्रकृति प्रेमी की प्रेम कथा

कमलेश पाण्डेय 58

केजी-2 वाट्सएप समूह

भूपेन्द्र भारतीय 60

शहरों की रूह

अमेरिका का शहर लॉस वेगस- जलते रेगिस्तान में चमकता स्वर्ग

रेखा भाटिया 61

ग़ज़ल

देवी नागरानी 59

विज्ञान व्रत 68

नज़्म सुभाष 69

दोहे

रघुविन्द्र यादव 70

गीत

सूर्य प्रकाश मिश्र 71

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

'कबीला' सोच अब पूरे विश्व में पनप रही है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

अमेरिका की एक प्रतिष्ठित प्रयोगशाला में किसी दवाई का मेंढकों पर टेस्ट चल रहा था। उसके लिए मेंढक चीन से मँगवाए जाते। मेंढक जिन डिब्बों में बंद होकर आते, वे बड़े सुंदर तरीक़े से पैक किये हुए होते और डिब्बों पर भी मोटे और सख्त से ढक्कन चढ़े होते । मेंढक उछलते-कूदते बाहर जाने को बेताब रहते। लैब के वैज्ञानिक उन पर उस दवाई का प्रयोग करके उन्हें फेंक देते। चीन में मेंढकों की कमी होने लगी। चीन के निवासी बहुत नाराज़ हुए। वे मेंढकों को अमेरिका भेजने का विरोध करने लगे। मेंढक उनके भोजन में शामिल थे और अमेरिकी वैज्ञानिक उनका प्रयोग कर उन्हें समाप्त कर देते थे। चीन ने प्रयोगशाला में मेंढक भेजने बंद कर दिए। मेंढक मँगवाने का अनुबंध भारत को दिया गया। मेंढक भारत से आने लगे। अब न तो पैकिंग ढंग की, न ढक्कन मज़बूत पर मेंढक डिब्बे के अंदर ही जमे रहते। वैज्ञानिक अब दवाई के परिणाम को छोड़ कर यह विमर्श करने लगे, भारत से आए मेंढक ऐसे क्यों हैं? उन्होंने एक भारतीय वैज्ञानिक से इसका कारण पूछा। उसने हँसते हुए कहा-'' जी ये भारतीय मेंढक है, एक जब उछल कर डिब्बे से बाहर जाना चाहता है, तो दूसरा उसकी टाँग खींच लेता है। इस तरह से कोई मेंढक भी बाहर नहीं निकल पाता।''

यह कहानी मैंने इसलिए सुनाई, कि मेंढकों की मानसिकता पूरे विश्व में फ़ैल गई है, विशेषत: राजनीति में। स्वयं देश का भला करेंगे नहीं, और दूसरों को करने भी नहीं देंगे। यह मानसिकता भी अब कई हिस्सों और कई रूपों में बँट चुकी है। इसके रूप हैं - अहम्, आत्ममुग्धता, गुंडई, कट्टरता और अमानवीयता। यूरोप, रूस और चीन अलग-अलग तरह से इसकी चपेट में आ चुके हैं। नेताओं के अहम् बहुत बढ़ गए हैं, अहम् ब्रह्मास्मि भाव विश्व के तकरीबन सभी नेताओं में पल रहा है। अधिकतर देशों के अग्रणी नेता आत्ममुग्धता के शिकार हो चुके हैं, देश और जनता की कोई परवाह नहीं करते। यूरोप के साथ-साथ अब अमेरिका में भी

संपादकीय

एक बार फिर पर्वों का, उत्सवों का समय आ गया है। जीवन में उल्लास भरने का समय। जीवन में चिंताएँ, परेशानियाँ तो बनी ही रहती हैं, ऐसे में जब पर्वों का समय सामने आये, तो अपने लिए कुछ अतिरिक्त ऊर्जा संचित कर लेना चाहिए इन पर्वों से। शायद इन पर्वों की परिकल्पना भी इसीलिए की गई होगी।

विरोधी दल गुंडई प्रवृत्ति का अमानवीय हो चुका है। हाल ही में अमेरिका का एक उदाहरण देखिये-आज से आठ महीने पहले फरवरी में रिपब्लिकन पार्टी ने कांग्रेस में आठ सीटों की जीत के बाद अपना स्पीकर चुना। आठ कांग्रेस सदस्य जिन्होंने स्पीकर को चुने जाने में मदद की, उनकी एक शर्त थी कि अगर कभी वे स्पीकर के किसी निर्णय से सहमत नहीं हुए तो उनमें कोई भी एक NO Confidence प्रस्ताव ला कर उन्हें पद से हटा सकता है। तीस सितंबर को यदि बजट पास नहीं होता तो एक अक्टूबर रात बारह बजे से सरकार ठप हो जानी थी। स्पीकर महोदय ने रिपब्लिकन पार्टी और डेमोक्रेटिक पार्टी के सदस्यों के साथ मिलकर सरकार को बंद होने से बचाया। आठ सदस्य जो सरकार को बंद करवाना चाहते थे, वे स्पीकर से ख़फ़ा हो गए और उन्होंने स्पीकर को पद से हटा दिया। ये सब स्वयं को देशभक्त कहते हैं; लेकिन पार्टी के सदस्यों के साथ मिलकर देश के लिए कुछ नहीं करना चाहते, राष्ट्र के नाम पर केवल अपनी मनमानी ही चलाना चाहते हैं, क्योंकि वे पूर्व रिपब्लिकन प्रेसिडेंट के अनुयायी हैं। देश और जनता से कोई सरोकार नहीं। इस समय प्रेज़िडेंट और सरकार डेमोक्रेटिक पार्टी की है। पूर्व राष्ट्रपति ने भी सन् 2020 में चुनाव हारने के बाद यू एस कैपिटल बिल्डिंग पर गुंडों को धावा बोलने के लिए उकसाया था। दरअसल वे जिस इलाके से चुन कर आये हैं वहाँ की मानसिकता दादागिरी, अहंवादी और आत्ममुग्धता की है। एक तरह से 'कबीला' सोच है, जो अब पूरे विश्व में भी पनप रही है। डर इस बात का है कि अगर अमेरिका जैसे अत्याधुनिक और विकसित देश में कबीला प्रवृत्ति इतनी फैल रही है तो दुनिया के बाकी प्रजातांत्रिक देशों का क्या होगा? निष्पक्ष रूप से पूरे विश्व की राजनीति को परखें तो 'कबीला प्रवृत्ति' ही बढ़ावा पा रही है। बेहद शोचनीय स्थिति होने वाली है, आधुनिक समाज, लोग और अत्याधुनिक तकनीकी से लैस इस युग में देशों के भीतर कबीलों की सोच रखने वाले लोग क्या पाषाण युग की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ से निकलने में युग लग गए , तभी बंदूकें और हथियार घर-घर जगह बनाने लगे हैं।

वोटों के लिए मुफ़्त में सुविधाएँ देने की सोच भी बड़ी घातक है और यह हर देश की राजनीति में घर कर चुकी है। पेरिस में सरकार ने रिटारमेंट की दो साल उम्र बढ़ाने की कोशिश की तो लोगों के विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए; क्योंकि सेवामुक्त होकर उन्हें मुफ़्त का भत्ता और बाकी की सुविधाएँ मिलती हैं। विरोध था कि वे दो साल और काम क्यों करें? जबकि वहाँ सप्ताह में केवल चार दिन ही लोग काम करते हैं। इसी तरह अमेरिका की स्थिति है, करोना में कम वेतन वालों, जिनकी नौकरियाँ चलीं गई, को मुफ़्त सुविधाएँ दी गईं। अब वे काम करना ही नहीं चाहते, सरकारी भत्ते पर गुज़ारा करना चाहते हैं। अमेरिका में वर्करों की कमी हो गई है। हर क्षेत्र में काम करने वालों की माँग है, और कामगार मिलते नहीं। फ्री की सुविधाएँ मनुष्य को आलसी और अकर्मण्य बना देती हैं। रूस के विघटन का कारण ही सरकारी सुविधाएँ थीं, रूस के लोग काम ही नहीं करना चाहते थे। शराब में लीन रहने लगे थे। मुफ़्त की सुविधाएँ काम न करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही हैं। ब्राज़ील की आर्थिक स्थिति नाज़ुक होने का कारण ही अपनी जनता को मुफ़्त की सुविधाएँ देना हैं। ब्राज़ील की हालत देख कर भी कोई सतर्क नहीं हो रहा। पर्यावरण के लिए प्रकृति भी सचेत कर रही हैं, मानव जाति उसे भी अनदेखा कर रही है। मनुष्य की यही त्रासदी है कि वज्रपात होने पर ही इसकी आँख खुलती है।

पर्वों और उत्सवों का मौसम है, चारों ओर चहल-पहल है। नवरात्रि, दशहरा, दिवाली, थैंक्सगिविंग, क्रिसमस सबका भरपूर आनंद लें।

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की ओर से आपको ढेरों शुभकामनाएँ!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

मित्रनामा

'विभोम-स्वर' के जुलाई-सितम्बर 2023 अंक में छपी दीपक गिरकर की कहानी 'शुभम की मुक्ति' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक राजश्री शर्मा थे।

चित्रात्मक शैली

"शुभम की मुक्ति" नामक कहानी में दीपक गिरकर ने आधुनिक एकाकी समाज का चित्रण किया है। कहानी का कथानक अत्यंत प्रभावशाली है साथ ही साथ कहानी चित्रात्मक शैली में लिखी गई है। बैंक खुलने का समय एवं बैंक कर्मचारियों का विवरण करते हुए लेखक मानों चलचित्र के रूप में कहानी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। शैलजा और शुभम का पात्र आँखों के सामने घूमता हुआ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कहानी यथार्थ के धरातल पर लिखी गई है। शुभम कहानी में न होकर भी संपूर्ण कहानी में विद्यमान रहता है।

रामदयाल जी, जो सरकारी विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत हैं, उनके द्वारा एक ढाबे पर काम करने वाले छोटे से बालक के अंदर पढ़ने का जज़्बा खोज लेना बहुत बड़ी बात है, और फिर उसे अपने बालक की तरह शिक्षा-दीक्षा देना सच में प्रेरणादायक है। इससे समाज को नई दिशा मिलती है।

शुभम का अपनी पत्नी शैलजा को रामदयाल जी के विषय में सर्वस्व बताना इस बात का द्योतक है कि वह अंतरात्मा से रामदयाल जी से जुड़ चुका है, यहाँ तक कि उसने यह बात भी शैलजा को बताई कि रामदयाल जी की पत्नी स्वादिष्ट खिचड़ी बनाती हैं। शैलजा जब अपने बच्चों के साथ रामदयाल जी और उनकी पत्नी के घर रहने लगती है, तो उनके बुढ़ापे को जैसे सहारा मिल जाता है, और शुभम का भी शैलजा के सपनों में बार-बार आना बंद हो जाता है, जो इस बात का प्रतीक है कि शुभम की आत्मा को शांति मिल चुकी है... मुक्ति मिल चुकी है। कहानी के अंत से शीर्षक बिल्कुल सार्थक सिद्ध हो जाता है।

अंत में शैलजा का रामदयाल जी के परिवार में जाकर रहना एवं उन्हें मान- सम्मान प्रदान करना और शुभम की आत्मा का मुक्त होना यह सब लेखक ने इतने अच्छे तरीक़े से वर्णित किया है कि पाठक वर्ग भी नि:शब्द रह जाता है।

-प्रीति चौधरी "मनोरमा"
जनपद बुलंदशहर, उत्तरप्रदेश

000

सरल सहज भाषा

"शुभम की मुक्ति" नामक कहानी में दीपक गिरकर ने अपने विभागीय अनुभव के बैंक रूटीन के आधार पर कथानक को कहानी का आधार बनाया है। आज के इस दौर में पारखी नज़र रखने वाले गुप्ता जी जैसे व्यक्तित्व की कमी है। ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व का चेहरा समाज के सामने लाना भी कथा का उद्देश्य रहा है। गुप्ता जी जैसे ईमानदार, सहयोगी, उज्ज्वल चरित्र के धनी व्यक्तित्व को पाकर कोई भी परिवार या परिवार की चिंतित मृतात्मा भी शांत हो जाती है। दीपक गिरकर की कथा एक रूपक की तरह विस्तारित होकर आपने उद्देश्य की ओर बड़ी सहजता से बढ़ती नज़र आती है। सरल सहज भाषा, पारिवारिक माहौल के साथ अंतर्मन की संवेदना को अच्छे से अभिव्यक्ति देने में लेखक सफल रहे हैं।

कहानी में एक विशेषता देखने में मिली है कि कहानी का शीर्षक पात्र कहानी में मौजूद न होकर भी शीर्षक बनाया जाना। लेखक को बड़े कहानीकार की श्रेष्ठता की श्रेणी में लाकर खड़ा करता है।

-विजय जोशी 'शीतांशु'
महेश्वर, मध्य प्रदेश

000

सुखद अंत

दीपक गिरकर जी की कहानी 'शुभम की मुक्ति' बहुत ही सकारात्मक और सुखद अंत लिए हुए है। कहानी की शुरुआत में पात्रों के परिचय से लेकर समय का सटीक विवरण कहानी को रोचक बना रहा है। आज जब समाज में इतनी नकारात्मकता बढ़ रही है, उस समय एक अनाथ बच्चे को अपने घर में बेटे की तरह रखना उसे शिक्षित करना, लेखक की विकसित सोच को दर्शाता है।

बैंक में इत्तेफ़ाक़ से शुभम की पत्नी का रामदयाल जी से मिलना, उनका सम्मान करना उन्हें अपने साथ घर में रहने के लिए मनाना यह बताता है, कि शुभम के मन में रामदयाल जी एवं उनकी पत्नी का स्थान माता-पिता का ही था।

शुभम की मृत्यु, कहानी का दुखद मोड़ है जिसे लेखक ने बड़ी सरलता से बता दिया। शैलजा का माँ बाबूजी को साथ में रखने के निर्णय के बाद शुभम का सपनों में आना बंद हो गया। इस कहानी का एक और पहलू यह भी है रामदयाल जी ने बिना किसी स्वार्थ के एक अनाथ बच्चे को सहारा दिया, उसे पढ़ाया लिखाया। और आज शुभम का परिवार रामदयाल जी के बुढ़ापे का सहारा बन गया। कहानी के अंत में रामदयाल जी और उनकी पत्नी को परिवार मिल गया, शुभम की पत्नी को माँ-बाबूजी मिल गए, और शुभम को मुक्ति।

इतनी सुंदर कहानी लिखने के लिए दीपक गिरकर को सादर धन्यवाद।

-सविता खण्डेलवाल 'भानु'
झालरापाटन, राजस्थान

000

कहानी के तत्व मौजूद हैं

कहानी साधारण सी है किंतु कहानी तो है। कहानी के तत्व मौजूद हैं। उद्देश्य में सफल भी है। आज के समय में कौन किसकी परवाह करता है ? वर्तमान समय में अपनों की क़द्र नहीं की जाती है, तो पराए की कौन करे।

शुभम को लायक बनाने के लिए तो गुप्ता सर का संपूर्ण समर्पण तथा योगदान रहा। अब शुभम के जाने के बाद एक बैंक अधिकारी का इस तरह का भाव अत्यंत जटिल और असंभव सा प्रतीत होता है किंतु आस्थावान लेखक ने इसे गंभीरता से अंत तक पहुँचाया है। यह ज़रूर सुकून देने वाला है।

-शैलेन्द्र शरण

000

बहुत बड़ी बातें सीखा गई

कहानी छोटी-सी पर बहुत बड़ी बातें सीखा गई, जैसे गागर में सागर वाली कहावत चरितार्थ हो गई है, जीवन में हमारा किया हुआ कोई अच्छा कार्य हमारे सामने अवश्य आता है किसी न किसी रूप में।

रामदयाल जी ने एक ढाबे पर काम करने वाले लड़के मे पढ़ने की रुचि देखी तो, उसका एडमिशन स्कूल में करवा दिया, अनाथ होने के कारण उसे अपने घर में ही बेटे के समान रखा।

बिना किसी लालच के, वह ही बच्चा शुभम पढ़ लिख कर उच्च पद पर आसीन होता है, उसकी बहू शैलजा से अचानक एक दिन बैंक में मुलाकात होती है, तब पता लगता है कि शुभम की एक एक्सीडेंट में दो वर्ष पूर्व मृत्यु हो चुकी है, वह उन्हें अपने माता-पिता का दर्जा देकर प्रेम-पूर्वक अपने साथ रहने पर मजबूर कर देती है। शैलजा को भी एक सहारा मिल जाता है, और बच्चों को दादा-दादी का लाड़-दुलार मिल जाता है।

शुभम की पत्नी और बच्चे रामदयाल जी और उनकी पत्नी की बुढ़ापे की लाठी बन जाते हैं, उस दिन से शुभम का अपनी पत्नी के सपनों में आना बंद हो जाता है, उसे मुक्ति मिल जाती है।

पर एक बात पर मुझे थोड़ा-सा एतराज़ है लेखक से, जिस बच्चे को बेटे जैसा पाल-पोस कर बड़ा किया, उनका आपस में कोई संपर्क नहीं रहा, उसकी शादी हो गई, बच्चे हो गए, वह गाँव भी जाता है, तब तक वे इंदौर शिफ्ट हो जाते है, यह कुछ अटपटा और असहज-सा लगा।

-उमा चौरे, इंदौर

000

प्रवाहमान सुन्दर शिल्प

यह कहानी वर्तमान समय में टूटते रिश्तों को आईना दिखाती है। बहुत छोटी कहानी होकर भी बहुत प्रभावित करती है।

कहावत है कि इसी जन्म में हम जैसा करते हैं वैसा ही हमें भोगना पड़ता है। सब हिसाब यहीं हो जाता है। यह कहानी कहती है कि यदि सच्चे मन से कोई अच्छा काम किया जाए, तो उसका सुख भी जीते जी ही मिल जाता है।

गुप्ता जी ने अपने स्कूल शिक्षक होने के दिनों में एक अनाथ बालक को पढ़ा-लिखा कर बैंक अधिकारी बना दिया। उनके भी कोई सन्तान नहीं थी। अब वे बूढ़े और अशक्त थे लेकिन ईश्वर आपके अच्छे कर्मों का हिसाब जल्दी और आवश्यकता होते ही आपको चुकाते हैं।

गुप्ता जी को अनायास ही जैसे अपनी बेटी मिल गई थी। स्वर्गीय शुभम की पत्नी शैलजा के रूप में।

शैलजा भी मम्मी और बाबूजी को पाकर जैसे अपने एकाकीपन से उबर गयी थी। और शुभम की मृत आत्मा को शान्ति मिली कि अब उसकी पत्नी और बच्चों का भविष्य सुरक्षित है। द्वंद्व और उद्वेग पैदा करने वाली और लम्बी बोझिल कहानियों से इतर प्रवाहमान सुन्दर शिल्प में अवतरित यह कहानी पाठक को आकर्षित करती है। और बड़ा सन्देश भी देती है कि पैसे से सदैव, रिश्ते बड़े और सहारा देने के लिए ज्यादा मज़बूत होते हैं।

अस्तु इस ख़ूबसूरत कहानी के लिए दीपक गिरकर को हार्दिक साधुवाद।

-श्याम सुंदर तिवारी
खण्डवा, मध्यप्रदेश

000

कथानक अच्छा है

पकहानी औसत है पर पढ़ा ले जाती है। कथानक अच्छा है। अनाथ बच्चे को उठाकर घर लाना और पढ़ा-लिखाकर काबिल बनाना यह संभव है पर कहानी का अंत सहज ही समझ आ जाता है। शुभम की असमय मृत्यु और उसकी पत्नी की गुप्ता जी से भेंट होना, इंदौर जैसे शहर में बैंक में ही संभव है। कथा में कहीं-कहीं झोल दिखाई देता है। आरंभ में गुप्ता जी अपनी कथा कहते दिखाई देते हैं, बाद में लेखक कहानी कहने लगते हैं। देशकाल भी कहीं-कहीं गड़बड़ा जाता है।

तथापि कथा की कथावस्तु कहीं बाधित नहीं होती, यह कथा की सफलता है।

-सुधीर देशपांडे

000

सोद्देश्यपूर्ण कहानी

दीपक गिरकर जी की कहानी छोटी मगर एक सकारात्मक सोच-विचार को लेकर रची गई सोद्देश्यपूर्ण कहानी है जो वर्तमान परिदृश्य के लिए प्रेरक भी है।

ऐसे शिक्षक जो सिर्फ और सिर्फ ट्यूशन के ज़रिए पैसा कमाना चाहते हैं और उसे ही अपना शिक्षकीय दायित्व समझते हैं, उनके लिए एक संदेश भी देती है।

कहानी के शिक्षक बाल मनोविज्ञान के साथ एक अनाथ बच्चे के मन के सुषुप्त भावों को पढ़कर उसे सहारा देते हुए योग्य बनाकर अपना सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य का निर्वहन भी करते हैं।

कहानी में उल्लेखित शुभम ऐसा ही बालक है, जो आगे चलकर बैंक का प्रोबेशनल ऑफ़िसर बन जाता है किंतु एक दुर्घटना में उसकी मृत्यु होने से उसकी पत्नी जो ख़ुद भी बैंक मैनेजर होती है, वह स्थानांतरित होकर पेंशनभोगी उसी शिक्षक के गाँव आती है। वहाँ उनका परिचय होता है और वह महिला उन्हें पहचान लेती है कि वे वही हैं, जिन्होंने शुभम को योग्य बनाया। अंततः शुभम की पत्नी और उनके दो बच्चों सहित शिक्षक दंपति को भी अपने साथ ही रहने का आग्रह करती है। बच्चों को दादा-दादी का स्नेह मिलता है, शैलजा अर्थात् शुभम की पत्नी को नैतिक संबल और शिक्षक दंपति को उम्र के उत्तरार्द्ध में सहारा मिल जाता है। कहानी शिक्षक की सदाशयता और आज के एकाकी परिवारों के लिए एक सकारात्मक सोच के साथ समाज को संदेश भी देती है। कहानी सुखद है।

-अरुण सातले,खण्डवा

000

अच्छी और सकारात्मक कहानी

आलोच्य कहानी की नींव जीवन मूल्यों, आदर्शों और नैतिकता के सिद्धांत पर रखी गई है। यह कहानी वर्तमान समय के शिक्षक और पूर्व के शिक्षकों का अन्तर भी स्पष्ट करती है। ये कटु सत्य है कि वर्तमान समय में संवेदनाओं का अभाव है लेकिन आज से 40-50 साल पहले तक मानवीय संवेदनाएँ

शिक्षकों में तो रहती ही थीं। उसी दौर के एक शिक्षक द्वारा नि:स्वार्थ भाव से शुभम को उसकी विषम परिस्थितियों से बाहर लाकर उसमें पढ़ने की ललक उत्पन्न करना और उसे सहयोग देकर आगे बढ़ाना जैसी घटना सच के बहुत क़रीब लगती है। बच्चे को उँगली पकड़कर चलना सिखाना और उसे संस्कार की अमूल्य पूँजी देकर सही राह दिखाने का पुण्य कार्य शिक्षक ही कर सकते हैं। शुभम को दिए संस्कार उसकी का पौधा उसकी परिवार में भी पनपा और उसकी परिणिति में शिक्षक महोदय को जीवन के पूर्वार्द्ध में पुण्य फल मिला।

एक अच्छी और सकारात्मक कहानी से परिचित कराने के लिए कहानीकार दीपक गिरकर को धन्यवाद।

-महेश जोशी, खरगोन

000

एक अच्छी कहानी

कहानी में दीपक गिरकर ने बड़ी ही सरलता से जीवन की जटिलता और उसके समाधान को दिखाकर यह बताने की कोशिश की है कि संयुक्त परिवार में किस तरह एक-दूसरे का सहारा बन जीवन को सरस और ख़ुशनुमा बना सकते हैं। लेखक इसमें सफल भी रहे हैं।

कहानी का आरंभ बड़ी ही रोचकता लिए हुए है, जो अन्त तक बनी रहती है। कथानक स्पष्ट और प्रभावशाली है। शीर्षक की सार्थकता कहानी की अन्तिम पंक्ति स्वयं सिद्ध करती है- "अब शुभम शैलजा के सपने में नहीं आता है उसकी आत्मा को मुक्ति मिल गई है।" सुखद अन्त पाठक के मन को भी भाता है। कहानी की सरल-सहज भाषा, बैंक के खुलने तथा बैंक कर्मचारियों के कार्यों का विवरण, एक शिक्षक की सकारात्मक सोच, बड़ा ही प्रभावशाली है। कहानी छोटी किन्तु एक "अच्छी कहानी" की श्रेणी में आती है, निश्चित ही यह लेखक की सफलता है, बधाई।

-प्रतिमा आनन्द तिवारी

खण्डवा (म. प्र.)

000

बहुत ही सरल कहानी

दीपक गिरकर की कहानी 'शुभम की मुक्ति' रिश्तों के एक नए आयाम से परिचय कराती है।

सेवानिवृत हो चुके रामदयाल जी अपनी पेंशन के लिए बैंक जाते हैं और उनकी मुलाकात बैंक की नई प्रबंधक शैलजा से होती है। रामदयाल जी के हस्ताक्षर नहीं मिलने पर शैलजा उनकी पासबुक में उनके गाँव का नाम देखती है तो चौंक उठती है। वह जिनकी तलाश कर रही थी यह वही सज्जन थे, जिन्होंने उनके स्वर्गवासी पति को पढ़ा-लिखा कर काबिल बनाया था। कालचक्र में वे बिछड़ गए थे।

शैलजा को महसूस होता था कि उनके स्वर्गवासी पति की आत्मा अतृप्त है। नि:स्वार्थ भाव से रामदयाल जी ने अनाथ शुभम की बहुत सहायता की थी। शुभम उन्हें पिता तुल्य सम्मान देता था। अपनी पत्नी को शुभम ने सारी बातें बताई थी। लेकिन रामदयाल जी को खोजने की शुभम की सारी कोशिशें नाकाम हो जाती हैं और इसी बीच एक हादसे में शुभम की मृत्यु हो जाती है। शैलजा को लगता है उसके पति शुभम की आत्मा को शांति नहीं मिल रही है। अब रामदयाल जी संयोगवश मिल गए तो अब शैलजा उनके बुढ़ापे का सहारा बनना चाहती है ताकि रामदयाल जी और उनकी पत्नी की सेवा करके शुभम की आत्मा को शांति प्रदान कर सके।

कहानी बहुत ही सरल और सीधे एक प्रवाह में बहती है। लेखक ने बिना किसी लाग-लपेट के यह कहने की कोशिश की है कि नि:स्वार्थ भाव से की गई सेवा का फल अवश्य मिलता है। अपने कर्म किसी न किसी रूप में हमारे सामने लौट कर आते हैं। बिना किसी नाटकीयता के कहानी का एक सुखद अंत हो जाता है।

कहानीकार को एक अच्छा संदेश देने के लिए बधाई।

-अरुणा अग्रवाल अनुदिता

रायपुर (छत्तीसगढ़)

000

धारा-प्रवाह कहानी

प्रस्तुत कहानी शुभम की मुक्ति, ऐसा लगता है जैसे सतयुग के पात्रों को लिया गया हो। आज के भौतिकवादी, स्वार्थी समाज में अच्छा पद, पैसा मिलने के बाद, अपने माता-पिता को नहीं पूछते, तो सहारा देने वाले को खोजना, दूर की बात है। शुभम की पत्नी के रूप में एक आदर्श पत्नी, बहू, माँ का किरदार निभा रही है।

लेखक ने भारतीय संस्कृति की विचारधारा, मुक्ति, आत्मा, स्वप्न में दिखना को सही रूप में दिखाया है। कहानी आरंभ से अंत तक धारा-प्रवाह रूप में पढ़ने को मजबूर करती है। कहानी का अंत बहुत ही सुखद है।

-संध्या पारे, सुर्ख

000

दुख-सुख मिश्रित कहानी

प्रस्तुत कहानी पढ़ने में रोचक, सरल और हृदय स्पर्शी है परंतु व्यवहारिक तौर पर संभव होना कठिन है। काश कि हर शुभम जैसे बालक को बाबूजी जैसे पितातुल्य इंसान मिले और हर एकाकी माता-पिता को वृद्धावस्था में पोते-पोती, बहु-बेटे का साथ मिले। दुख-सुख मिश्रित कहानी का अंत बहुत सन्तोष जनक लगा।

-दामिनी पगारे

000

रोचक, हृदयस्पर्शी

प्रस्तुत कहानी शुभम की मुक्ति प्रवाहमयी, रोचक, हृदय को छू गई। कहते हैं सत्कर्म का फल मीठा ही होता है जैसा कि कहानी में रामदयाज जी को मिला। एक अनाथ लड़के की पढ़ने की इच्छा ज्ञात होने पर उसे बेटे की तरह अपने घर रख कर पढ़ाना एवं सम्मानित जीवन देना, यह सब उन्होंने निस्वार्थ भाव से किया। वहीं शुभम भी उनके इस उपकार को भुला नहीं, परिस्थितियाँ ऐसी बनीं की शुभम बाहर पढ़ने चला जाता है एवं रामदयाल जी रिटायर होकर इंदौर आ जाते हैं, सालों तक सम्पर्क नहीं हो पाता। यहाँ कहानीकार थोड़ा सा चूक गए, पिता-पुत्र जैसे रिश्ते होने के बावजूद मोबाइल के इस युग में सालों तक सम्पर्क क्यों नहीं कर पाए।

ख़ैर कहानी अनुसार शुभम अपने मन की गहराई से रामदयाल जी एवं उनकी पत्नी को चाहता है इसीलिए अपनी पत्नी को उनकी सारी छोटी सी छोटी बात बताता है एवं उन्हें खोजने के बाद भी वह उनका पता नहीं लगा पाता। सालों बाद शुभम की पत्नी जो बैंक मैनेजर है रामदयाल जी को बैंक में मिलती है उनका नाम पता देख वह चौंक जाती है। ये वही है जिन्हें उसके स्वर्गीय पति शुभम ढूँढ़ रहे थे, जिन्होंने उसे पिता तुल्य प्यार दिया। वह रामदयाल जी और उनकी पत्नी को अपने साथ रहने का आग्रह करती है, जो स्वर्गीय शुभम की इच्छा थी और उसकी आत्मा बार-बार सपने में आती थी।

उसके अनुसार शुभम की अधूरी इच्छा पूरी होने पर उसकी आत्मा मुक्त हो जाएगी। कहानी आज के एकल परिवार चाहने वालों के लिए एक सीख है। अच्छे संस्कारों से पूर्ण, रोचक, हृदयस्पर्शी है।

एक अच्छी कहानी के लिए कहानीकार दीपक गिरकर को बहुत-बहुत धन्यवाद।

-मंजुला शर्मा

000

संदेश देती हुई कहानी

दीपक गिरकर जी की कहानी 'शुभम की मुक्ति' बताती है कि कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं जो अपने न होकर भी अपने बन जाते हैं। रामदयाल जी सेवानिवृत हैं, उनका बैंक के समय से पहले बैंक पहुँचना, स्टाफ नया देख चिंता होना, हस्ताक्षर न मिलने पर घबराना बहुत ही सजीव वर्णन है। शैलजा बैंक प्रबंधक,जब उनकी पासबुक में नाम देखकर गाँव का नाम पूछती है और रामदयाल जी को शुभम की याद दिलवाती है तो उन्हें भी शुभम याद आता है। उनके पूछने पर शैलजा उसकी मौत की ख़बर देती है जिसका उन्हें बुरा लगता है।

शैलजा को आत्म संतुष्टि होती है कि जिनको शुभम ढूँढ़ रहा था वे आज मिल गए। शैलजा उनके घर के पास किराए के मकान में रहने आ जाती है, और उनको अपने घर रहने को बाध्य करती है। ऐसा करके वह उनके बुढ़ापे की लाठी बनने की कोशिश करती है ताकि शुभम को मुक्ति मिल सके।

कहानी के अंत में लेखक ने बताने की कोशिश की है कि यदि आप किसी कि मदद करते हो तो उसका फल हमेशा मिलता है। छोटी एवं अच्छे संदेश देती हुई इस कहानी के लिये लेखक को बधाई।

-मंजिरी "निधि"

000

मार्मिक कहानी

शुभम की मुक्ति-एक छोटी सी मार्मिक कहानी है, गागर में सागर लिये। प्रमुख पात्र बाबूजी ने एक अनाथ बच्चे को शिक्षा दी और इस योग्य बनाया कि वह न सिर्फ अपने पैरों पर खड़ा हुआ, अपितु बैंक में ऊँचे ओहदे पर नियुक्त हुआ।

वर्षों बाद उसकी पत्नी से बाबूजी की मुलाकात होना और पहचान लेना एक संयोग ही है, जहाँ दुःख और सुख के मिश्रित भाव कहानी में आते हैं। दुर्भाग्यवश शुभम की दुर्घटना में मृत्यु हो चुकी है, किन्तु उसकी पत्नी उतनी ही समझदार और अपने उत्तरदायित्व को समझने वाली महिला है, अपने बच्चों को भी उसने बड़ों का आदर करना सिखाया है। उनका बाबूजी और उनकी पत्नी से तुरंत हिलमिल जाना इस बात को दर्शाता है।

मां-बाबूजी को अपने ही घर में रहने का आग्रह करना, शुभम की पत्नी का सही अर्थों में अपने मृत पति को एक सच्ची श्रद्धांजलि ही तो है। ऐसी सन्देश परक कहानी पढ़ कर यदि नई पीढ़ी अपने बुजुर्गों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निबाह ले तो कहानी और भी सार्थक सिद्ध होगी। मैं इस कहानी से जुड़े सभी लोगों का हार्दिक अभिनंदन करती हूँ।

-साधना शर्मा, पुणे

000

भावों की पराकाष्ठा

इस रोचक कहानी में मानवीय भावनाओं के बहुआयामी स्वरूप दिखाई देते हैं। सबसे पहले पन्द्रह मिनट पहले बैंक स्टाफ की कर्तव्यनिष्ठा और सहयोग की भावना, अपनापन, ज़मीन से जुड़े होने का भाव, भारतीय संस्कार, प्रतिभा की पहचान और उसकी निस्वार्थ सहायता, अनाथ बालक का बाबूजी से मिली सहायता का आभार जीवन भर, यहाँ तक कि, मृत्योपरांत भी मानना, आदि ऐसी कई छोटी-छोटी भावनापूर्ण घटनाओं को लेकर बुनी गई यह कहानी आरंभ से अंत तक पाठकों को अपने साथ बाँधे रखती है।

शुभम की पत्नी शैलजा को जब अनायास ही शुभम की सहायता करने वाले बाबूजी मिल जाते हैं, तो वह भी उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा करने में देर नहीं करती। वह उन्हें हमेशा अपने साथ रहने का आग्रह करती है। उसे विश्वास है कि बाबूजी को नहीं ढूँढ़ पाने की कसक दिवंगत पति के मन में रह गई है और अब उसके पति की आत्मा को मुक्ति मिल जाएगी।

संतानविहीन वृद्ध दम्पति और पितृविहीन परिवार एक दूसरे का संबल बन जाते हैं और कहानी सुखांत हो जाती है। यही मानवीय भावनाओं, प्रेम, समर्पण और विश्वास जैसे भावों की पराकाष्ठा है।

सुंदर, रोचक, मन को बाँधने वाली इस सुखद कहानी के लिए लेखक को बहुत-बहुत बधाई।

-शशि शर्मा इंदौर

000

मार्मिक कहानी

दीपक गिरकर द्वारा रचित कहानी 'शुभम की मुक्ति' बहुत ही मार्मिक कहानी है। सुखद संयोग को दर्शाती अद्भुत कहानी है। एक अनाथ बालक को सही मार्ग देकर उसे पढ़ाना-लिखाना अपने आप में एक पुनीत कार्य है, कहानी एक अच्छा संदेश देती हुई प्रेरणादायी है। बिछोह और मिलन का ताना-बाना बुनती सुंदर, सार्थक, सुखांत, रोचक कहानी है।

थोड़े में अधिक दिखाकर कहानीकार दीपक गिरकर ने अपने बुद्धि कौशल से अपनी कलम की दक्षता को, बहुत ही सुंदर, सरल, सहज ढंग से, पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है साधुवाद।

-सुंदर शर्मा 'श्रुति', इन्दौर

000

साक्षात्कार

स्त्री विमर्श भी अराजकता का शिकार हो गया है

कहानीकार-उपन्यासकार तथा प्रतिलिपि की संपादक वीणा वत्सल सिंह से आकाश माथुर की बातचीत

वीणा वत्सल सिंह

मोबाइल- 8604623871

ईमेल- veenavatsalsingh19libra@gmail.com

दो वर्षों तक विश्वविद्यालय व्याख्याता के रूप में अध्यापन। सम्प्रति- संपादक, प्रतिलिपि। प्रकाशित पुस्तकें- तिराहा (उपन्यास), अनतर्मन के द्वीप, पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह)।

आकाश माथुर

152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर, मप्र 466001,

मोबाइल- 9200004206

ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

आकाश- प्रतिलिपि आपका नया प्रयोग था, आपने जब शुरू किया तब किस तरह की परेशानियाँ आई थीं और अब किस तरह की परेशानियाँ आ रही हैं जब इतने नए प्रतिद्वंद्वी हैं?

वीणा वत्सल सिंह- प्रतिलिपि मेरा नया प्रयोग था नहीं कह सकते। इसे बेंगलौर के चार युवा मित्रों ने एक स्टार्ट अप के तौर पर शुरू किया और मुझे हिन्दी के लिए काम करने को चुना। हाँ, नएपन के प्रति मन सदा आग्रही रहा है, तो मैंने इसे एक चैलेंज की तरह लिया। यह वह समय था जबकि हिन्दी के लेखक रोज़ अपना मेल भी चेक नहीं करते थे। तो मेल पर सूचना भेजने के बाद मैं उन्हें व्हाट्सएप या मैसेंजर से मेल चेक करने का आग्रह करती थी। लोग ऑनलाइन को हल्के तौर पर लेते थे और ऑनलाइन पाठक भी हल्के तथा अगंभीर पाठक माने जाते थे। तब हिन्दी पढ़ने वालों का भी नितांत अभाव था। युवा ऑनलाइन गेम्स में बिज़ी रहते थे। हमने नए पाठकों के लिए इन्हीं गेम खेलने वाले युवाओं पर टारगेट किया और उन्हें पढ़ने को प्रेरित किया। परिणाम धीरे-धीरे सुखद आने लगे और हिन्दी कहानियों के नाम पर केवल प्रेमचंद को पढ़ने, जानने वाले युवा हमें यह कहते मिले कि क्या आज भी हिन्दी में इतनी अच्छी कहानियाँ लिखी जा रही हैं? कौन लिख रहा है यह सब? क्या अभी भी हिन्दी के लेखक मौजूद हैं?

बड़ी विचित्र स्थिति थी तब। इधर लेखक समुदाय के एक वर्ग से जहाँ मुझे सहयोग और समर्थन मिल रहा था, वहीं एक बड़ा वर्ग बुरी तरह से नाराज़ भी चल रहा था। उनके अनुसार साहित्य तो पत्रिकाओं की चीज़ है और मैं बिना संपादक के इसे हल्के में लेकर नष्ट कर रही हूँ। इस वर्ग ने मेरे विरुद्ध मुझे काम नहीं करने देने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न किए। जैसे सोशल मीडिया पर मेरे लिए अनाप-शनाप पोस्ट करना। मैं उस पर ध्यान न दूँ तो उलजलूल पोस्ट कर फिर मुझे उकसाना। ऊटपटाँग अश्लील फ़ोन कॉल आवाज़ बदल कर करना। जबकि ऐसा करने वाले यह भूल गए थे कि जिस टेक्नोलॉजी ने उन्हें आवाज़ बदलने की सुविधा दी थी, उसी ने मुझे उनकी आईडी भी पहचानने की सुविधा दे रखी थी। ख़ैर, मेरे अंदर इन बातों से कोई नकारात्मक भाव नहीं आते, बल्कि एक ज़िद्द थी जो और अधिक दृढ़ होती जाती थी और हर ऐसी घटना के बाद में दोगुनी, चौगुनी मेहनत से जुट जाती थी। एक दिन जब सफलता ने अपनी आवाज़ बुलंद की, तो ये सारे विरोध के स्वर भी न जाने कहाँ ग़ायब हो गए। अब तो कुछ ख़ास परेशानी नहीं आ रही सिवाय एक-दो छोटी-मोटी परेशानियों के। प्रतिलिपि आज जिस मुकाम पर है वहाँ तक पहुँचने के लिए प्रतिद्वंद्वियों को और भी कई गुणा अधिक मेहनत करनी होगी। प्रतिलिपि को चाहने वाले लेखक और पाठकों का अपना बहुत बड़ा वर्ग है जिसे प्रतिलिपि ही अधिक पसंद है। तो जब तक हमारे लेखक और पाठक हमारे साथ हैं, तब तक हम सफल हैं।

आकाश- प्रतिलिपि और इस तरह के जितने भी प्लेटफार्म हैं, उन पर लोग क्या पढ़ना पसंद करते हैं। सबसे ज़्यादा क्या पसंद किया जा रहा है और क्यों?

वीणा वत्सल सिंह- डिजिटल प्लेटफॉर्म पर जैसा मेरा अनुभव है कि कहानियाँ और इससे भी अधिक उपन्यास बहुत अधिक पढ़े जाते हैं। आजकल पाठकों का एक बड़ा वर्ग कॉमिक्स पढ़ना भी काफी पसंद कर रहा है। हम कॉमिक्स भी युवा पाठकों को ध्यान में रखकर अच्छी कहानियों पर बनाते हैं। जो पाठकों को काफी आकर्षित कर रही हैं।

आकाश- प्रवासी लेखक भी क्या डिजिटल प्लेटफॉर्म के लिए लिख रहे हैं?

वीणा वत्सल सिंह- जी, बड़ी संख्या में लिख रहे हैं। उनके लिए तो डिजिटल प्लेटफॉर्म एक ख़ास अवसर की तरह है। जबकि दूर देश में बैठे प्रवासी लेखक एक क्लिक में हिन्दी के पाठकों तक अपना लेखन पहुँचा पा रहे हैं। किसी भी लेखक को इससे अधिक और क्या चाहिए?

आकाश- आपको साहित्य में प्रवासी लेखकों से क्या उम्मीद है और उनका लेखन हिन्दी साहित्य को कैसे पोषित कर रहा है?

वीणा वत्सल सिंह- प्रवासी लेखक अधिक खुलकर किसी भी विषय पर लिख सकते हैं। उनके लेखन में समाज या राजनीति का कोई प्रेशर नहीं होता। जैसे तेजेंद्र शर्मा की एक कहानी है 'गंध', यह कहानी जिस तरह से लिखी गई है वैसा कोई भारत में रहकर शायद नहीं लिख सकता। भारत में रहते हुए उसके मानस पर एक दवाब अप्रत्यक्ष रूप से बनेगा और वह चरित्रों के प्रति वह न्याय कर ही नहीं पाएगा, जैसा तेजेंद्र सर ने देश से बाहर रहने के कारण किया है। मुझे यह कहानी अपनी बात बेलौस तरीके से कहने के कारण काफी पसंद है और देखा जाए तो यह यथार्थ के अत्यंत करीब की कहानी है। ऐसे चरित्र मुझे भी मिले हैं लेकिन मैं लिख नहीं पाई हूँ। कहानी में जिस भूमि को एक विशेष दैहिक गंध के कारण उसका उच्च वर्गीय ससुराल स्वीकारने में हिचकिचाता है, वही भूमि विवाह के बाद जब अपने मायके जाती है तो वही विशेष गंध वह तीव्रता से महसूस करती है और वहाँ रह नहीं पाती है। गंध कहानी के इस कथ्य को भारत में रहने वाला कोई लेखक लिखे तो उसके सामने कई सामाजिक सरोकार आकर खड़े हो

जाएँगे और उसकी कलम इस सत्य से थोड़ी दूर जा बैठेगी।

आकाश- आपको प्रवासी लेखकों में कौन पसंद हैं और क्यों?

वीणा वत्सल सिंह- देखिए, समयाभाव के कारण मैं प्रवासी लेखकों को समग्र रूप से नहीं पढ़ पाई हूँ, और बिना समग्र पढ़े आप अपनी आधी-अधूरी राय ही बना पाएँगे। प्रतिलिपि पर तेजेंद्र शर्मा, सुधा ओम ढींगरा, अनिलप्रभा कुमार, दिव्या माथुर आदि लेखक ख़ूब पढ़े जाते हैं। तो ज़ाहिर है उनकी कहानियों में भारतीयता के साथ प्रवासी आबो-हवा की भी सुगंध लिपटी होती है और पाठकों को यह पसंद आता है।

आकाश- प्रतिलिपि और इस तरह के सभी प्लेटफॉर्म शुरुआत में भारतीयों के लिए नया था कई साहित्यकारों ने इसे स्वीकार भी नहीं किया, लेकिन प्रवासियों की इस पर क्या प्रतिक्रिया आई?

वीणा वत्सल सिंह- प्रतिलिपि को बहुतों ने स्वीकार कर छोड़ दिया। इसका एक बड़ा विचित्र कारण है कि कुछ लेखकों को अपनी कहानियों पर पाठकों की विपरीत प्रतिक्रियाएँ बर्दाश्त नहीं हुईं और उन्होंने अपनी प्रोफाइल ही डिलीट करवा ली। यह भी हिन्दी साहित्य का एक पक्ष है कि लेखकों को सेलेक्टिव पाठक ही चाहिए जो उनकी रचनाओं पर वाह-वाह कर सकें। अगर आपकी कहानी में पाठक को कोई कमी नज़र आएगी तो वह उसे रेखांकित तो करेगा! ऐसा नहीं है कि प्रतिलिपि के पाठकों के पास साहित्यिक समझ की कमी है। वे प्रेमचंद को ख़ूब पढ़ते हैं। वहीं आज के लेखकों में धीरेंद्र अस्थाना, शिवमूर्ति जी, मनोज रूपड़ा, पंकज सुबीर, विवेक मिश्र, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, गीताश्री, रजनी गुप्त, प्रज्ञा रोहिणी, अंजू शर्मा आदि की कहानियाँ ख़ूब पढ़ी जाती हैं और पाठकों की प्रतिक्रियाएँ भी सकारात्मक मिलती हैं। शिवमूर्ति जी की कहानी कुच्ची का कानून को लगभग ढाई लाख पाठकों ने पढ़ा है और उसे लगभग तीन हज़ार पाठकों ने 4.7 की रेटिंग दी है। जबकि कहानी एकदम अलग तरह की क्रांतिकारी बात कहती है। इससे आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि पाठकों की समझ कहानी और कथ्य को लेकर कितनी गहरी है। जो लेखक खुद को डिजिटल प्लेटफॉर्म से अभी भी दूर रखे हुए हैं उन्हें देर-सबेर यहाँ आना ही होगा क्योंकि डिजिटल साहित्य की पहुँच जितने पाठकों तक है उतनी पहुँच किसी भी साहित्यिक पत्रिका या हार्ड बाउंड पुस्तकों की नहीं है।

प्रवासी लेखक अपने साहित्य को डिजीटल प्लेटफॉर्म से प्रसारित करने में कमोबेश वैसे ही रहे हैं, जैसे भारत के अन्य लेखक। एक तो डिजिटल की कम समझ भी इसमें बाधक है और दूसरे कुछ लेखक इसके पाठकों को गंभीरता से नहीं लेते।

आकाश- आपका अधिकतर लेखन स्त्री विमर्श पर है, कविताएँ और कहानियाँ स्त्रियों की बेचैनी उजागर करती हैं, आप अन्य विषयों पर कम क्यों लिखती हैं?

वीणा वत्सल सिंह- यह सही है कि मेरे लेखन के अधिकतर विषय स्त्रियों पर आधारित हैं। लेकिन मैं किसी विमर्श के तहत लेखन नहीं कर रही हूँ। स्त्री हूँ तो ज़ाहिर है स्त्रियों की बातें ही अधिक लिखूँगी। बच्चों पर भी कहानियाँ लिखी है मैंने - अर्णव और अनिमेष। इनमें बच्चों की समस्याओं को उठाया गया है। अर्णव में व्यस्त माता-पिता की इकलौती संतान अर्णव कैसे मोबाइल गेम्स के जाल में गिरफ़्त हो जाता है और फिर एक मनोवैज्ञानिक की हेल्प लेनी पड़ती है। वहीं अनिमेष में एक ऐसे बच्चे की समस्या है

जो कम बोलता है और बिना किसी अपराध के ही टीचर की ग़लती से अपराधी मान लिया जाता है। अनिमेष कहानी पढ़कर बहुत से शिक्षकों ने मुझसे संपर्क कर कहा कि अब वे आगे बिना पड़ताल के किसी बच्चे को दोषी नहीं ठहराएँगे और मुझे अपनी यह कहानी यहीं सफल लगी क्योंकि उसकी संवेदना ने एक साथ बहुतों को आंदोलित किया। इनके अलावा मेरी कहानी सिकंदर एक बाघ और इंसान के परस्पर प्रेम की कहानी है। जिसमें एक फॉरेस्ट ऑफ़िसर है और एक बाघ का शिशु है। वहीं कहानी 4-2=0 दो कुत्तों के परस्पर प्रेम को व्याख्यायित करती है। तो स्त्रियों से अलग विषयों पर भी लिखा है मैंने।

अगर आपने मेरे कहानी मालविका मनु पढ़ी होगी तो उसमें स्त्री को ग्रे शेड में चित्रित किया गया है, जबकि पुरुष चरित्र अधिक सधा हुआ और सकारात्मक चरित्र है। तो यहाँ तो स्त्री विमर्श टिकता ही नहीं है।

बल्कि मालविका मनु कहानी के बारे में एक दिलचस्प बात बताऊँ कि इसे पत्रिकाओं के संपादकों ने छापने से मना करते हुए इसे एडिट करने की सलाह दी क्योंकि कहानी में कई जगहों पर स्त्री विमर्श पर भी प्रहार है। मैंने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया और इसे संग्रह में लाने का निर्णय लिया।

स्त्री विमर्श पर प्रहार - यह सुनने में थोड़ा अजीब लग सकता है। लेकिन मेरा मानना है कि कोई भी विमर्श अराजक न हो जाए इसके लिए ज़रूरी है कि उसकी कमियों का आकलन भी आए दिन होते रहना चाहिए और मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि स्त्री विमर्श भी अराजकता का शिकार हो गया है। समय रहते इसे दुरुस्त करने के लिए विमर्शकारों को आगे आना चाहिए।

आकाश- प्रकाशन को लेकर आपका अनुभव कैसा रहा, आपको कहीं ऐसा तो नहीं लगता कि साहित्य का भविष्य डिजिटल प्लेटफॉर्म पर बढ़ रहा है। क्या इसलिए आपकी सक्रियता डिजिटल पर बढ़ रही है?

वीणा वत्सल सिंह- प्रकाशन को करीब से कुछ समय देखा है मैंने। मेरी बहन पूनम प्रियंका ने एक प्रकाशन खोला था और धीरेंद्र

सर के संपादकत्व में कुछ बेहतरीन संग्रहों के साथ कुछ उपन्यास, व्यंग्य संग्रह आदि भी प्रकाशित हुए थे। पाठकों का स्नेह भी ख़ूब मिल रहा था। खासकर मैं कहूँगी कि धीरेंद्र सर के संपादन वाले कहानी संग्रहों की ख़ूब माँग रही। लेकिन बीच में कोविड के कारण लॉक डाउन आ गया और इसका बुरा असर प्रकाशन पर भी आया। पूनम ने प्रकाशन को प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की तरह खोला था, तो बिना किसी काम के भी प्रकाशन को सरकार को टैक्स देना पड़ता था। इससे तंग आकर उसे बंद करने का अप्लिकेशन देना पड़ा। लेकिन प्रकाशन को सरकार ने बंद नहीं किया और अब बार-बार उसे स्टार्ट अप के रूप में कनवर्ट करने और इसके लिए लोन देने संबंधी कॉल आते रहते हैं। ज़ाहिर है, अब इसे इस तरह से आगे नहीं बढ़ाना है इसलिए प्रकाशन को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। इसे समय की माँग ही कहेंगे कि जिस त्रासदी ने प्रकाशन की कमर तोड़ी, उसी ने ऑनलाइन प्रकाशनों को ख़ूब बढ़ाया और इसका ख़ूब फायदा प्रतिलिपि सहित सभी ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स को मिला।

ऑनलाइन प्रकाशन का तो भविष्य है। मैं भी ऑनलाइन पढ़ना अधिक पसंद करने लगी हूँ क्योंकि इसमें मुझे कई सुविधाएँ मिली हुई हैं। पलक झपकते किताब आपके सामने होती है, आप इसके फॉन्ट्स बड़े कर पढ़ सकते हैं और अत्यधिक पढ़ने के कारण आने वाली आँख की समस्या से भी बच सकते हैं। और सबसे ज़रूरी कि एक फ़ोन में सैंकड़ों किताबें आपके साथ हमेशा होती हैं। जिन्हें आप जहाँ चाहें और जब चाहें खोलकर पढ़ सकते हैं। अब इतनी सुविधाएँ तो हार्ड बाऊंड प्रकाशित किताबों के साथ नहीं मिल सकती न!

आकाश- महिला लेखक इतिहास पर लिख रही हैं और ख़ास कर महिलाओं पर ही। वे महिलाएँ जो नायिका हैं लेकिन इतिहास में उपेक्षित हैं। मनीषा जी ने मल्लिका, गीताश्री जी ने अम्बपाली और राजनटनी, उषा किरण खान जी ने भामती, अणुशक्ति जी ने शर्मिष्ठा और आपने बेग़म हज़रत पर उपन्यास लिखा है। क्या अब महिलाओं ने अपने इतिहास पर ख़ुद लिखने का ज़िम्मा उठा लिया है, क्योंकि पुरुष इतिहासकारों ने उन्हें उचित स्थान नहीं दिया?

वीणा वत्सल सिंह- यहाँ जिनके नाम लिए गए हैं उनमें भामति और शर्मिष्ठा पूरी तरह से मिथकीय चरित्र हैं। मल्लिका, आम्रपाली, बेगम हज़रत महल आदि इतिहास के पन्नों से निकली नायिकाएँ हैं। तो आप ऐसा कह सकते हैं कि मिथकीय चरित्रों के साथ और ऐतिहासिक चरित्रों के साथ भी न्याय नहीं किया गया। ज़ाहिर है जब महिलाओं की अभिव्यक्तियाँ सबल होंगी, तो वे स्त्री चरित्रों के प्रति न्याय के लिए कलम उठाएँगी ही। बल्कि यह पुरुष लेखकों के लिए शर्म की बात है कि लेखन में भी, चाहे वह इतिहास लेखन हो या फिर मिथकीय चरित्रांकन हो, पुरुषों की लेखनी पक्षपात करती नज़र आई है। जबकि मैंने जब बेगम हज़रत महल पर लिखना शुरू किया तो लगभग डेढ़ सौ पन्नों के बाद लगा कि बेगम को जैसा मैं चित्रित करना चाहती थी, ये तो वे नहीं हैं। तो फिर मैं ने वे सभी पन्ने फाड़कर फेंक दिए और काफी मंथन के बाद नवाब वाजिद अली शाह को गहराई से पढ़ना शुरू किया, क्योंकि बिना पुरुष चरित्र के बैलेंस के वही होता जो आज तक होता आया है। यानी स्त्री चरित्र के साथ तो न्याय हो जाता लेकिन पुरुष चरित्र यहाँ भी अन्याय का शिकार हो जाता। और मुझे लगता है कि अन्य सभी स्त्री लेखकों ने भी अपने उपन्यासों में इस संतुलन को बनाए रखा है। आप यह भी कह

सकते हैं कि हम एक संतुलित लेखन के भी हामी हैं और उसे बख़ूबी कर दिखाया है।

आकाश- इतिहास पर आधारित उपन्यास लिखने में क्या परेशानी आती है?

वीणा वत्सल सिंह- इतिहास आधारित उपन्यास लिखना कल्पना और बौद्धिकता का कड़ा अनुशासन माँगता है। आप इतिहास की घटनाओं को अपनी कहानी के लिए बदल नहीं सकते। उन्हें ज्यों का त्यों रखना और रोचकता बनाए रखकर कहानी बुनना एक कड़ी चुनौती होती है। कई बार ऐतिहासिक घटनाओं को क्रमवार रखने की कोशिश में कहानी का सिरा भी छूटता महसूस होता है। जिसे कड़े अनुशासन से साधना भी पड़ता है।

आकाश- कुछ लोगों का मानना है कि इतिहास पर लिखना आसान है, क्योंकि कहानी तैयार मिलती है, सिर्फ उसका नाटकीय रूपांतरण ही करना होता है। इस बात से आप कितनी सहमत हैं?

वीणा वत्सल सिंह- लोगों की मान्यता पर हँसने का मन कर रहा है। इतिहास आपको कहानी नहीं घटनाएँ देता है और दो घटनाओं के बीच का जो गैप होता है, उसे ऐतिहासिक उपन्यासकार को अपनी कल्पना के चमत्कार से भरना होता है। जैसे मेरे उपन्यास बेगम हज़रत महल की घटना है मोहम्मदी के नवाब वाजिद अली शाह के हरम में जाने की और वहाँ उसे महक परी का दर्जा मिलता है। अब अगर मैं सीधे-सीधे दो कुटनियों द्वारा मोहम्मदी को पकड़ कर हरम में ले जाने की बात लिख देती तो फिर कथा तंतु का क्या होता? क्या होता पाठकों की उस जिज्ञासा का जो इस घटना की तह में झाँकना चाहता है? फिर क्या उपन्यास का यह मुख्य पात्र क्या इतना अधिक प्रभावी बन पाता?

ऐसे तमाम सवालों से जूझने के बाद एक ही जवाब मिलता है कि कल्पना के सघन अनुशासन को साधना ऐतिहासिक उपन्यास लिखना है। जो काफी कठिन होता है। कई बार लिखने के क्रम में आप गिरते हैं, रुकते हैं, सोचते हैं, ठिठकते हैं और फिर ख़ुद को सँभालकर आगे बढ़ते हैं क्योंकि एक छोटी सी भी भूल आपके ऐतिहासिक उपन्यास में बड़ी

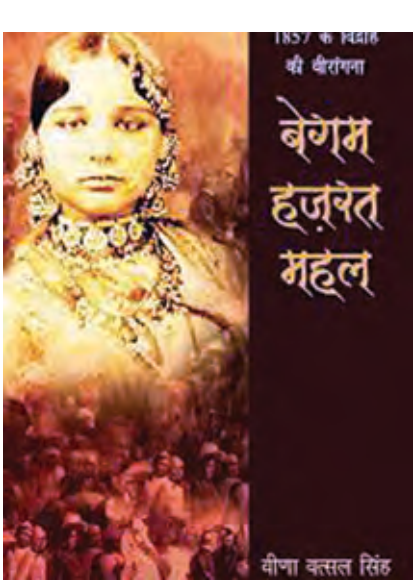

भूल के रूप में सामने आ सकती है। इसलिए कहूँगी कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखना सामान्य से बड़ी साधना की बात है। जहाँ आप भूतकाल के किसी ख़ास समय को जीने को अभिशप्त हो जाते हैं।

आकाश- इन दिनों साहित्य में महिलाएँ ज़्यादा सक्रिय हैं, उनकी व्यापकता बढ़ी है। 75 प्रतिशत किताबें महिलाओं की ही आ रही हैं। इसका क्या कारण है?

वीणा वत्सल सिंह- महिलाओं की अभिव्यक्तियों को सदियों तक एक तरह से क़ैद रखा गया। उनके द्वारा रचित साहित्य या तो जीवन भर उनकी डायरी में क़ैद रहा और उनकी चिता के साथ जल गया। छिटपुट लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियों की अपनी पीड़ा बाहर निकली है लेकिन वह बहुत कम।

अब जबकि सोशल मीडिया और प्रतिलिपि जैसे ऐप ने उनके लिए खिड़कियाँ खोल दी हैं, तो उनकी अभिव्यक्तियाँ भी खुलकर सामने आ रही हैं। प्रतिलिपि पर भी स्त्री लेखकों की संख्या अधिक है और कुछ तो प्रतिलिपि से लाखों की रॉयल्टी भी पा रही हैं। अब अभिव्यक्तियों का प्रस्फुटन है तो वे पुस्तकाकार भी सामने आ रही हैं। इसमें ताज्जुब की बात इसलिए है क्योंकि अभिव्यक्ति की आज़ादी की यह एक ख़ुशनुमा सुबह है। मंज़िल और बहुत आगे है। कल को यह 75 प्रतिशत 90 में भी ज़रूर बदलेगा।

आकाश- स्त्री विमर्श पर आपकी क्या राय है। लोग विरोध करते हैं कि स्त्री विमर्श की अलग से कोई आवश्यकता नहीं, क्या आप इससे सहमत हैं?

वीणा वत्सल सिंह- स्त्री विमर्श की अलग से कोई आवश्यकता क्यों नहीं है भला? स्त्रियों की जो स्थिति पितृसत्ता ने बना रखी है उसे वह कायम रखना चाहती है इसलिए विमर्श का विरोध है। कौन भला अपनी सुविधा रूप में एक ग़ुलाम स्त्री को आज़ाद देखना चाहेगा? वह आज़ाद होगी तो पुरुषों को भी हरेक घरेलू कार्य में बराबर की भागीदारी करनी होगी। उनकी लंबी आयु के लिए ईश्वर से वरदान माँगने का बड़ा महत्त्वपूर्ण काम कौन करेगा? मेरी एक कहानी है 'अना'। यह पितृसत्ता की पोल खोल स्त्रियों की सदियों से चली आ रही विवशता और विवशताजन्य कामों की बात करती है। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए स्त्री को वह सब कुछ करना पड़ता है जो वह करती आई है।

आकाश- कई लोगों का कहना है कि स्त्री विमर्श के नाम पर सिर्फ देह की बात हो रही है, आपका क्या मानना है, स्त्री विमर्श में देह विमर्श कितना होना चाहिए?

वीणा वत्सल सिंह- स्त्री विमर्श में केवल देह विमर्श ही लोगों को कैसे दिखता है? क्या स्त्री का पढ़ना-लिखना और अपने पैरों पर खड़े होने में भी उन्हें देह ही नज़र आता है? इस तरह की धारणा रखने वाले स्त्री को मात्र एक योनि के रूप में देखते हैं और इससे अलग स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में नहीं देख पाते। यह उनकी समझ का संकट है। स्त्री विमर्श अपनी समग्रता में स्त्री को केवल योनि रूप में नहीं बल्कि एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में परिभाषित करता है। स्त्री की अपनी पहचान एक इंसान के रूप में है और इसमें देह कहीं है तो बस उतना ही जितना भूख लगने पर भोजन की ज़रूरत।

आकाश- आपकी कहानी पॉर्न स्टार में भी नायिका बोल्ड स्टेप लेती है। इस तरह बदला लेने के लिए देह का उपयोग पहले कभी नहीं पढ़ा गया। क्या यह स्त्री विमर्श से भी आगे की बात है?

वीणा वत्सल सिंह- बदला लेने के लिए

देह का उपयोग इसलिए कहीं नहीं पढ़ा गया क्योंकि भारतीय समाज में स्त्री देह और यौनिकता एक बहुत बड़ा टैबू है। आज भी कितनी प्रतिशत स्त्रियाँ अपने अन्त: वस्त्रों को बाहर सूखने के लिए फैला पाती हैं? यहाँ स्त्री देह ही नहीं उसका पहनावा भी एक टैबू है। ऐसी मानसिकता में आप यह कैसे सोच सकते हैं स्त्री अपना बदला लेने के लिए अपना अमोघ अस्त्र अपनी देह यूज़ करेगी, तो उसे लिखा भी जाएगा? यहाँ तो दबी, लुटी, सकुचाई स्त्रियों का ट्रेंड है। आपको क्या लगता है कि स्त्री अपनी देह के प्रति जागरूक नहीं है या कि उसे नहीं पता कि भारतीय समाज में उसकी देह हर चीज़ से ऊपर है। जिसका उपयोग कर करोड़ों कमाया भी जा सकता है और बदला भी लिया जा सकता है। क्या विषकन्याओं के अस्तित्व के बारे में भी कोई संदेह है? जिन्हें तैयार ही इसलिए किया जाता था कि वे दुश्मन से अपनी देह का इस्तेमाल कर बदला ले सकें। मैंने नया तो कुछ भी नहीं लिखा। बस जो थॉट्स थे उन्हें आधुनिक रूप दे दिया है।

आकाश- आपकी कहानी पॉर्न स्टार अपने समय से बहुत आगे की कहानी है। लेकिन इस पर टिप्पणी और समीक्षा नहीं आईं। क्या साहित्य में लॉबी और भाई-भतीजावाद हावी है?

वीणा वत्सल सिंह- साहित्य में हो सकता है कुछ हद तक भाई भतीजावाद भी हो। लेकिन केवल यही है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस संग्रह के बाद आए मेरे ऐतिहासिक उपन्यास बेगम हज़रत महल पर ख़ूब लिखा गया और लगभग हरेक प्लेटफॉर्म पर, अख़बारों में, टीवी पर, पत्रिकाओं में सभी जगह समीक्षाएँ आईं।

पॉर्न स्टार कहानी संग्रह पर नहीं लिखे जाने के पीछे शायद दो मुख्य कारण हैं। पहला तो पॉर्न शब्द साहित्य के लिए एक अछूत शब्द है। लोगों को लगता है कि इस शब्द के लिखने या बोलने मात्र से साहित्य की वर्जिनिटी को ख़तरा पहुँच सकता है और उनकी ख़ुद की विशुद्ध साहित्यिक इमेज ख़तरे में पड़ सकती है। जबकि अस्सी नब्बे के

दशक से ही पॉर्न पत्रिकाएँ न केवल बॉयज हॉस्टल बल्कि गर्ल्स हॉस्टल में भी अपनी घुसपैठ बनाए हुए हैं। यह मैं दावे के साथ इसलिए कह पा रही हूँ क्योंकि ग्रेजुएशन करते हुए मैंने अपने हॉस्टल में भी इन पत्रिकाओं को घूमते देखा था। अब तो नेट का इतना एक्सपोज़र है तो बच्चे टीन एज पार करते न करते पॉर्न देख लेते हैं और यह एक मिथक है कि भारत में पॉर्न साइट प्रतिबंधित है। सब कुछ उपलब्ध है। लेकिन मेरा मानना है कि इसने कुछ भी ग़लत नहीं। स्कूल की बारहवीं कक्षा में री प्रोडक्शन के चैप्टर को देखिए, क्या उतनी ही नॉलेज पर्याप्त है एक युवा होते बच्चे के लिए?

कहने का तात्पर्य कि हमारे समाज में सब कुछ ढका-छुपा हो यह स्वीकार्य है। बस बोलने मात्र से आपकी इज़्ज़त तार-तार होने लगती है। तो ऐसे में पॉर्न स्टार कहानी पर बोलने या लिखने का जोखिम क्यों कोई उठाएगा? बिना कुछ बोले भी रहा जा सकता है। मैं कोई मंटो तो नहीं।

दूसरा कारण मेरी समझ से यह है कि भले ही कहानी मैंने पॉर्न वर्ल्ड की लिखी लेकिन उसे शाब्दिक पॉर्न बनने से बचाए रखा। हालाँकि ऐसी संभावना पूरी थी कि लेखनी फिसल जाए। अगर मेरी लेखनी थोड़ी भी फिसली होती तो फिर अश्लीलता का तमगा देकर जमकर शोर-शराबा होता। लेकिन कहानी शुरू से लेकर आख़िर तक केवल संवेदना के ट्रैक पर ही चलती रही तो कोई स्कूप भी नहीं मिला।

बहरहाल, मेरे विचार से बिना किसी चर्चा की अपेक्षा के ऐसी कहानियाँ और भी लिखी जानी चाहिए। ताकि हाशिए की सच्चाई मेन स्ट्रीम में आ सके। बाकी चर्चा और उपयोगिता तो समय रेखांकित कर ही लेगा।

आकाश- अंत में एक बात और पूछना चाहता हूँ। 'विभोम-स्वर' पत्रिका साहित्य के क्षेत्र में जो प्रयास कर रही है वे कितने सार्थक हैं, और क्या किया जा सकता है और बेहतर करने के लिये?

वीणा वत्सल सिंह- जी 'विभोम-स्वर' का स्तर काफी ऊँचा और साहित्यिक है और सुधा ढींगरा जी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण काम कर रही हैं।

पत्रिका को लोकप्रिय बनाने के लिए अगर इसकी साइट बना दें, तो कम ख़र्चे में इसकी पहुँच काफी बढ़ जाएगी और अधिकतम रचनाकार तथा पाठक हरेक अंक के साथ जुड़ जाएँगे।

'विभोम-स्वर' पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी अशेष शुभकामनाएँ।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

कहानी का सफ़र- जहाँ तक क़दम आ सके आ गए हैं

नरेंद्र नागदेव

नरेंद्र नागदेव
बी -2/2376, वसंत कुंज,
नई दिल्ली - 110070
मोबाइल- 9873498873
ईमेल- nknagdeve@gmail.com

पिछले अंक से निरंतर... (अंतिम किश्त)

तीन वर्ष बाद भारतीय ज्ञानपीठ से ही प्रकाशित अगले कहानी संग्रह 'वहीं रुक जाते' को ऐसा पसंद नहीं किया गया। समीक्षाएँ भी अधिक नहीं निकली। रायपुर में इस पुस्तक पर आयोजित एकाधिक गोष्ठियों में प्रतिक्रियाएँ मिश्रित रहीं। यह स्वयं मेरे लिए भी आश्चर्यजनक था, क्योंकि इसमें संकलित भी अनेक कहानियाँ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर चुकी थीं। मुझे लगता है कि इसका कारण संभवत: यह रहा हो कि पिछले कहानी संग्रह 'वापसी के नाखून' के बाद शायद मुझसे अपेक्षाएँ अधिक बढ़ गई होगी और इसका आकलन उसके साथ तुलनात्मक रूप से किया जाने लगा होगा।

इस बीच सन् 2005 तक मैं अपने आर्किटेक्चर व्यवसाय की गतिविधियों में अत्यधिक व्यस्त रहा। इन व्यस्तताओं के बीच लगातार सोचता रहा कि जैसे ही इनसे निजात मिलेगी तो साहित्य में अवश्य कुछ अपनी पसंद का बड़ा काम करने की कोशिश करूँगा। अत: कुछ फुर्सत मिलते ही एक उपन्यास लिखने में जुट गया, जिसे बाद में मैंने 'खंभों पर टिकी ख़ुशबू' शीर्षक दिया। यह उपन्यास भी हालाँकि पहले उपन्यास की तरह ही वास्तुकला की पृष्ठभूमि पर आधारित था, लेकिन इस बार इसे मैंने इस क्षेत्र में सक्रिय टेंडर माफिया की कार्य प्रणाली और गतिविधि पर केन्द्रित किया। जिस तरह वे अपने आतंक के बल पर मनचाहा टेंडर हासिल कर लेते थे तथा बाद में भी उसके निर्माण में तमाम भ्रष्ट तरीक़े अपनाते थे, उन सब के खुलासे के साथ ही तमाम ख़तरे उठा कर भी इन्हें चुनौती देती सकारात्मक शक्तियों का प्रस्तुतिकरण किया। सामान्यत: मैं अपने लिखे हुए में अधिक सुधार अथवा परिवर्तन नहीं करता, लेकिन 275 पृष्ठ के इस उपन्यास को लिख लेने के बाद जब मैंने इसके रिजेक्टेड पृष्ठों को गिना तो उनकी संख्या लगभग 1000 निकली। इसे राजकमल प्रकाशन द्वारा 2008 में प्रकाशित किया गया, और आशा के अनुरूप ही तत्काल साहित्य जगत् में इसका संज्ञान भी लिया गया। प्रसिद्ध कवि-समीक्षक श्री आनंद प्रकाश ने बधाई देते हुए कहा कि मैं तो इसे पढ़ कर तुम्हारा मुरीद हो गया हूँ। राजेन्द्र यादव जी ने सहारा समय में लिखा कि उन्हें इस वर्ष पढ़े गए उपन्यासों में यह सर्वश्रेष्ठ लगा। उन्होंने इंदु शर्मा स्मृति पुरस्कार के लिए इसकी संस्तुति भी की, और जब इसे नहीं दिया गया तो निराशा भी प्रकट की। फिर भी, समीक्षाएँ तो ख़ूब आईं। प्रबुद्ध पाठकों से ले कर प्रतिष्ठित साहित्यकारों तक ने इसे पढ़ा और सराहा। बल्कि एक युवा फिल्मकार ने गंभीरता पूर्वक इसका फिल्मांकन करने की योजना भी बनाई। मराठी में अनूदित हो कर प्रकाशित हुआ। लेकिन तभी कुछ ऐसा भी लगा

कि हिन्दी का साहित्य जगत् अपने परंपरागत विषयों के भीतर ही इस कदर आत्ममुग्ध और सिमटा हुआ है कि ऐसे नए और तकनीकी विषयों को आत्मसात् करने के लिए उसे अभी कुछ और सकारात्मक प्रयासों की आवश्यकता है।

इस बीच हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा मुझे सन् 2008-09 के साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया। समारोह एक बार फिर श्रीमती शीला दीक्षित की उपस्थिति में कमानी आडिटोरियम में सम्पन्न हुआ। इस बार श्री भीष्म साहनी के सान्निध्य में श्री विष्णु प्रभाकर के हाथों सम्मान ग्रहण करना सुखद रहा।

हरिनारायण जी को मैं तब से जानता हूँ जब वे हंस के सहायक संपादक हुआ करते थे। बाद में जब 'कथादेश' पत्रिका निकली तो वे उसके संपादक बन कर चले गए। मेरे लिए यह अच्छा ही था कि मुझे अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिए एक और अच्छी पत्रिका मिल गई थी। बाद में अर्चना वर्मा जी भी हंस से निकलकर कथादेश में ही आ गईं। मैंने स्वयं अपनी कुछ अच्छी रचनाएँ कथादेश में प्रकाशनार्थ दीं। अर्चना जी ने स्वयं एक बार मुझे कहा कि जब आपकी रचना आती है तो हमें यह थोड़े ही तय करना होता है कि वह स्वीकृत है अथवा अस्वीकृत। कथादेश में मैंने 'दारा शिकोह की उपनिषद्' तथा 'गिद्ध' के अलावा भी 'पेड़ खाली नहीं है' जैसी चर्चित कहानियाँ दीं। बल्कि इसे मैं अपने ऊपर उनका विश्वास ही कहूँगा कि उन्होंने मेरी 'एक हजारवी अँगुली' जैसी प्रयोगधर्मी कहानी भी प्रकाशित की, जो न सिर्फ एक पौराणिक कथ्य है, बल्कि प्रस्तुतिकरण में भी कविता के ज़्यादा करीब है। 'गिद्ध' कहानी पर मन्नू भंडारी जी और 'एक हजारवी अँगुली' पर राजी सेठ जी की प्रतिक्रियाओं ने सचमुच अभीभूत कर दिया था। बल्कि कथादेश के आरंभिक वर्षों में प्रकाशित हुई कहानी 'निद्रागामी' को भी तत्कालीन साहित्य जगत् में बहुत पसंद किया गया था। इस कहानी को पढ़ कर विख्यात आलोचक श्री देवेन्द्र इस्सर ने कहा था कि इसे कहते हैं जेनुइन कहानी।

अंग्रेज़ी के प्रमुख प्रकाशक हार्पर कोलिंस ने जब हिन्दी विभाग खोला तो उम्मीद बँधी थी कि हिन्दी साहित्य के प्रकाशन के लिए एक और अच्छा आधार मिल गया है। वहाँ की मुख्य हिन्दी संपादक मीनाक्षी ठाकुर ने इस विषय में सकारात्मक पहल की। कई बड़े साहित्यकारों ने इसमें रुचि ली और अपनी पुस्तकें उन्हें प्रकाशन के लिए दी। मैंने भी अपनी अभी तक प्रकाशित कहानियों में से कुछ प्रतिनिधि कहानियों का चयन करके 'इस मुकाम तक' शीर्षक से उन्हें दिया और उन्होंने उसे स्वीकृत भी कर लिया। सच तो यह है कि वे एकमात्र ऐसे प्रकाशक थे जिन्होंने मुझे एडवांस में रॉयल्टी अदा की। प्रकाशित करने में भी देर नहीं लगाई। सन् 2011 के अंत में यह प्रकाशित होकर आ भी गई। मुझे नहीं पता कि हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए आवश्यक सुविधा और नेटवर्क उनके पास उपलब्ध था अथवा नहीं ? इसलिए पुस्तक पर समीक्षाएँ कम ही दिखीं। लेकिन जो दिखीं, वे गंभीर और स्तरीय थीं।

इस बीच मैं अपने तीसरे उपन्यास पर काम कर रहा था। इस बार आर्किटेक्चर से अलग विषय चुना - भोपाल गैस त्रासदी। मुझे लग रहा था कि विश्व की इस भीषणतम औद्योगिक त्रासदी की भयावहता पर तो बहुत कुछ लिखा जा चुका है, और उससे पीड़ित लोगों तथा उनकी उपेक्षाओं पर भी। लेकिन बहुत कम ध्यान इस ओर गया है कि आख़िर यह दुर्घटना घटी क्यों? सामान्यत: यही विचार था कि किसी तकनीकी ग़लती से गैस का रिसाव शुरू हो गया होगा। बस। लेकिन सच्चाई यह थी कि यूनियन कार्बाइड कंपनी की अमरीका स्थित मुख्य शाखा का भोपाल फैक्ट्री के प्रति रवैया पूर्णत: गैर ज़िम्मेदाराना और नस्लवादी था। इन आपराधिक उपेक्षाओं के चलते हालात यहाँ तक पहुँचे थे। मुझे लगा कि हिन्दी साहित्य में एक उपन्यास लिख कर इस अक्षम्य अपराध की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाना ज़रूरी है।

मैंने बहुत अध्ययन कर के उपन्यास की रूपरेखा बनाई और उसे लिखा। इस बार प्रकाशन के लिए किताबघर प्रकाशन, दिल्ली से संपर्क किया। उन्होंने भी स्वीकृति दी और शीघ्र ही, 2012 में उसे प्रकाशित कर भी दिया। लेकिन ऐसा लगा कि पुस्तक के छपने की सूचना साहित्य में उस तरह से नहीं पहुँची जैसे कि अपेक्षित थी। समीक्षकों से अपेक्षा थी कि वह इतने ज्वलंत विषय पर लिखे गए उपन्यास का महत्त्व समझेंगे लेकिन वहाँ लगभग निराशा ही हाथ लगी। पत्रिकाओं के लिए शायद विषय पुराना हो चुका होगा। वरिष्ठ लेखक श्री रमेश उपाध्याय ने अवश्य इसे पढ़ा और अपनी पत्रिका 'वसुधा' में आलेख भी लिखा। लेकिन ऐसा लगा कि इस विषय पर उनकी और मेरी मान्यताओं में विरोधाभास था। काफी समय के बाद वरिष्ठ लेखिका श्रीमती चंद्रकांता ने अपनी संस्था 'अभिव्यक्ति' में इस पुस्तक पर चर्चा का सफल आयोजन किया और उपस्थित पाठकों - लेखकों ने अपने सारगर्भित मंतव्य भी रखे। बाद में स्वर्गीय श्री अशोक गुप्त ने बहुत गहन समीक्षा लिखकर प्रकाशित की और उपन्यास को अपने सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। उपन्यास का अंग्रेज़ी अनुवाद Traitor of Bhopal शीर्षक से मैंने स्वयं किया, जिसे 2018 में कोलकाता के Quintus (Roman books) ने प्रकाशित किया।

अब तक मैं तीन उपन्यास लिख चुका था। तीनों ही टेक्निकल विषयों पर आधारित थे। दो आर्किटेक्चर पर और एक गैस त्रासदी पर। इसलिए अब मन में आ रहा था कि अगला उपन्यास सामान्य पृष्ठभूमि पर होना चाहिए। ठगों की समस्या पर लिखी गई कहानी 'तम्बाकू लाना ज़रा' हंस में प्रकाशित हो कर बहुत लोकप्रिय हुई थी। इसलिए मन में आया कि इसी समस्या को अधिक विस्तार से उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस समस्या में मानवीय संवेदनाएँ, उनका ध्वंस, विश्वास, विश्वास में धोखा, सब शामिल था। यह मध्ययुग की गाथा थी, जब एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए संसाधन नहीं हुआ करते थे और लोग यात्रा बना कर चलते थे। रास्ते में काली के पुजारी ये ठग किसी मासूम धनी व्यक्ति के विश्वासपात्र बन कर उसके साथ हो लेते थे और सही

मौका पा कर पीले रूमाल से उसके गले में फंदा कस कर उसकी हत्या कर देते थे और माल लूट लेते थे। अंतत: विलियम हेनरी स्लीमेन नामक एक ब्रिटिश अधिकारी ने कुछ विश्वस्त भारतीयों की मदद से उनका सफाया किया। 'पीले रूमालों की रात' शीर्षक इस उपन्यास के अंश कादम्बिनी और अन्य दो तीन पत्रिकाओं में प्रकाशित हो कर पसंद भी किए जा चुके थे। इसे वाणी प्रकाशन ने लिया और वर्ष भर में प्रकाशित भी कर दिया। चित्रा मुद्गल जी ने पढ़ कर कहा कि इसे पढ़ते हुए लगता है जैसे आँखों के आगे फिल्म चल रही हो और पंकज सुबीर ने कहा कि यह तो फिल्म के लिए बना-बनाया बेहतरीन स्क्रिप्ट है। लंदन से श्री तेजेन्द्र शर्मा ने एक बड़ी पोस्ट फेसबुक पर लिख कर भूरि-भूरि प्रशंसा की। खजुराहो अंतरराष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल में साहित्यकारों और फिल्म कलाकारों की उपस्थिति में इस पर विशेष रूप से चर्चा की गई।

साल में बस दो या तीन कहानियाँ लिखने का क्रम बदस्तूर जारी रहा और सुविधानुसार हंस, कथादेश और नया ज्ञानोदय पत्रिकाओं में प्रकाशित भी होती रहीं। इस तरह एक और कहानी संग्रह बना। वह मैंने किताबघर प्रकाशन को दिया। 2017 में वहाँ से 'पेड़ खाली नहीं है' शीर्षक से यह कहानी संग्रह आया। लोकसभा टी.वी. के लिए बक्षी प्रियंबरा ने 'साहित्य संसार' कार्यक्रम में इस पर इंटरव्यू प्रसारित किया जिसे दूर-दूर तक देखा गया। श्रीमती संतोष गोयल और चंद्रकांता जी ने एक बार फिर अभिव्यक्ति के लिए गुड़गाँव में कार्यक्रम आयोजित किया, जिसमें श्री राजेश जैन और श्री विवेक मिश्र ने विस्तार से इसमें संग्रहित कहानियों पर अपने विचार रखे। श्री गोविन्द सेन, गोपाल माथुर और मनीष वैद्य जैसे समकालीन कहानी के प्रमुख हस्ताक्षरों ने स्वयं ही संज्ञान ले कर इसकी विस्तृत समीक्षाएँ लिखीं जो प्रतिष्ठित पत्रिकाओं ने प्रकाशित कीं। युवा आलोचक श्री दिनेश कुमार ने वर्षांत की साहित्य राउंड अप में इसे उस वर्ष प्रकाशित उल्लेखनीय कहानी संग्रह बताया। इसके कवर पर मैंने बड़े भाई सच्चिदा जी का एक प्रासंगिक पेंटिंग लिया था।

मई 2017 में बड़े भाई सच्चिदा जी का स्वर्गवास हो गया। वे कलाकार के रूप में मेरे मार्गदर्शक भी थे और प्रेरणा स्त्रोत भी। साहित्य में मेरी हर गतिविधि पर नज़र रखते थे और ख़ुश होते थे। उनके जाने के साथ ज़िंदगी में एक अध्याय का अंत हो गया। कई महीनों तक कुछ लिखने की इच्छा नहीं हुई। फिर एक दिन कापी-कलम थाम कर उनकी जीवनी लिखने बैठ गया। 'लाल रंग की इमारत और सच्चिदा' नामक यह पुस्तक उनकी औपचारिक जीवनी नहीं थी, बल्कि मेरी नज़रों में वे जो कुछ थे उसकी सीधी प्रस्तुति थी। मैंने इसे चार अध्यायों में विभक्त किया। पहले में उनका बाल्यकाल और कला की प्रतिभा के आरंभिक अक्स थे। दूसरे में भारती कला भवन से संबंध और कलाकार के रूप में पूर्ण विकास था। तीसरे भाग में मैंने उनके सम्पूर्ण कला कर्म पर आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। जबकि चौथे में एक उदार हृदय व्यक्ति के बड़प्पन के अक्स थे। पुस्तक सचित्र थी, जिसमें कुछ उनकी कलाकृतियाँ और कुछ ज़िंदगी के यादगार लम्हों को समेटा गया था। इसे भोपाल के ही श्री महेंद्र गगन ने प्रकाशित किया। मई 2018 में सच्चिदा जी की प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर भोपाल में आयोजित एक समारोह में प्रतिष्ठित कलाकारों और साहित्यकारों की उपस्थिति में इसका लोकार्पण किया गया, जिसमें श्री मंज़ूर एहतेशाम, श्याम मुंशी, श्रीकांत आप्टे, अखिलेश, नारायण व्यास इत्यादि ने सच्चिदा जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपनी स्मृतियाँ साझा की।

'हाउस ऑफ लस्ट' कहानी नया ज्ञानोदय में छपी और चर्चित हुई। इतनी कि इस पर प्रबुद्ध लेखकों ने आलेख लिखे, जिन्हें ज्ञानोदय ने अपने अगले अंक में एक लेख के रूप में प्रकाशित किया। कुछ और कहानियाँ थीं जो पिछले कहानी संग्रहों में नहीं आ पाई थीं। इन सबको संकलित कर के 'हाउस ऑफ लस्ट' शीर्षक से ही एक कहानी संग्रह बनाया। बड़े प्रकाशकों के पास चूँकि समय बहुत लग जाता है, इसलिए इस बार इसे कानपुर के अमन प्रकाशन को दिया। अमन प्रकाशन अब एक जाना-माना नाम है। उन्होंने प्रकाशित कर के 2020 के पुस्तक मेले में प्रदर्शित भी कर दिया। इस पर किसी तरह की समीक्षाएँ आ पाती इसके पहले ही कोरोना फैलने लगा और लॉक डाऊन की स्थिति आ गई।

सच्चिदा जी पर किताब लिखते समय बाईं आँख में तकलीफ होने लगी थी और ज़रूरी हो गया था कि मैं लिखना-पढ़ना कम से कम कुछ समय के लिए स्थगित कर दूँ। इसलिए लेखन स्थगित रहा। बाद में धीरे-धीरे फिर सँभाल कर फिर लिखना शुरू किया। इस बार कोई एक दशक पूर्व महाराष्ट्र में घटित एक स्तब्धकारी घटना को आधार बनाया। यह घटना वर्षों से स्मृति के भीतर अंकित थी। हुआ ऐसा था कि सन 2006 में महाराष्ट्र के खैरलांजी नामक गाँव में एक दलित लड़की बारहवीं कक्षा में प्रथम आ गई। यह बात वहाँ के सवर्णों को इस कदर नागवार गुज़री कि उन्होंने माँ-बेटियों को सरेआम निर्वस्त्र कर के बलात्कार किया और फिर उनकी हत्या कर दी। उनके भाइयों को भी, जिनमें एक अंधा था, मौत के घाट उतार दिया गया। लड़की का पिता किसी तरह खेत में छिप कर अपनी जान बचा पाया था। उपन्यास में मैं इस घटना को प्रस्तुत करना नहीं चाहता था, बल्कि उसके पीछे की विषाक्त जातिवादी मानसिकता को रेखांकित करना चाहता था। उसे मैंने प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। 'फाँसी बाग' शीर्षक यह उपन्यास छोटा था - कोई सवा सौ पृष्ठों का। किताबघर ने प्रकाशन के लिए ले लिया। इस बीच मैंने श्री जाबिर हुसैन से पूछा कि क्या वे इसे 'दोआबा' के किसी एक ही अंक में सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित कर सकेंगे? उन्होंने स्वीकृति दे दी और अगले ही अंक में पूरा प्रकाशित भी कर दिया। प्रतिक्रियाएँ अपेक्षाकृत अच्छी आईं। कई पाठकों ने तो आलेख भी लिखे, जिन्हें दोआबा के अगले अंक में प्रकाशित किया गया। बाद में किताब रूप में किताब घर से निकलने की तैयारियाँ लगभग पूरी हो ही चुकी थीं कि कोरोना फैल गया। देश भर में लॉक डॉउन

लग गया और पत्रिकाओं का प्रकाशन स्थगित हो गया तथा प्रकाशन उद्योग मंदी का शिकार हो गया। किसी तरह उन्होंने अक्टूबर 2020 में अंतत: 'फाँसी बाग' को प्रकाशित किया।

चार दशक से अधिक समय तक निरंतर सृजन यात्रा जारी रखने के बाद, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर से लेकर राजेंद्र यादव, प्रभाकर श्रोत्रिय जैसे संपादकों की शीर्ष पत्रिकाओं में 100 से अधिक कहानियाँ छपने के बाद, 10 कहानी संग्रह और 5 उपन्यास शीर्षस्थ प्रकाशकों से प्रकाशित होने के बाद, कुछ तो संतोष के साथ पीछे मुड़ कर देखा जा सकता है ना? कहीं पहुँचे या नहीं पहुँचे इससे असंप्रक्त, अपने सृजन-पथ पर निरंतर अग्रसर होते हुए, उस कालखंड को, जिसमें सतत मन की गहराई से लिखा, कुछ तो संतोष के साथ महसूस किया जा सकता है ना?

प्रताप सहगल जी ने एक बार कहा था कि इन दिनों लेखन की दो स्टेज होती हैं - पचास प्रतिशत होती है स्वयं लेखन, और शेष पचास प्रतिशत होती है उस लिखे हुए को साहित्य में ज़माना। अपना आलम यह रहा कि पहले पचास प्रतिशत में तो ज़िंदगी खपा दी, लेकिन दूसरे पचास प्रतिशत में ज़ीरो के ज़ीरो रह गए। न कभी किसी लेखक संघ के सदस्य बने, न किसी संस्था के। न कभी किसी मठाधीश के दरबार में हाजिरी ही लगाई। सिर्फ कभी कभार हंस के कार्यालय में कहानियाँ देने के लिए गए। वहाँ जाना वैसे अच्छा भी लगता था, ख़ास कर राजेंद्र जी के उन्मुक्त स्वभाव और ठहाकों के चलते।

वह तो मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् और हिन्दी अकादमी, दिल्ली ने तीन बार पुरस्कृत कर दिया, वरना अपने परिचय में पुरस्कार/सम्मान वाले कॉलम में क्या भरते? हाँ, इतना अवश्य हुआ कि किसी न किसी बड़े पुरस्कार के लिए कभी न कभी अपने नाम की भी समय-समय पर सुगबुगाहट सुनाई दी। शायद किसी न किसी सहृदय की संस्तुति के चलते। लेकिन गोलपोस्ट से टकराकर लौटी हुई बॉल का कोई मतलब होता है क्या? फिर इस मामले में अपनी जागरूकता का हाल यह रहा कि इतना भी कभी पता नहीं चला कि किस पुरस्कार की अधिसूचना कब जारी होती है, और उसके चयन की प्रक्रिया क्या होती है ? उसकी जूरी के सदस्यों के नाम की जानकारी तो बहुत दूर की बात है। यानी कि उस दुनिया में ना कभी घुसे, ना कभी विचरण ही किया। लब्बो लुबाब यह कि मिल जाता तो बुरा भी नहीं था, और नहीं मिला तो अपनी बला से।

अब है ना हैरानी की बात कि दिल्ली जैसी उत्सव प्रिय राजधानी में पूरी ज़िंदगी गुज़ार दी और पंद्रह पुस्तकों में से एक का भी विमोचन नहीं किया। एक पुस्तक मेले में सिर्फ 'कला वीथिका' नामक संग्रह पर चर्चा हुई थी, जो कला से संबंधित विशेष कहानियों का संकलन था।

हाँ, लेकिन अपनी एक ग़लती की स्वीकारोक्ति अवश्य ही करना चाहूँगा। एक ऐसी ग़लती जिसने मेरी साहित्य यात्रा को दूर तक अवश्य ही प्रभावित किया होगा। एक ऐसी ग़लती जो नहीं करता तो अपने लेखन को संभवत: एक अलग धरातल तक पहुँचा सकता था। वह यह है कि बचपन में ही आदरणीय बच्चन जी ने एक पत्र में सलाह दी थी कि ख़ूब पढ़ो तब जाकर एक पृष्ठ लिखो। यह मुझसे ज़िंदगी भर नहीं करते बना। भले ही मैं अब उसके लिए कोई ना कोई बहाना खोज लूँ, लेकिन वह अब वक्त गुज़र जाने के बाद अपने आप को तसल्ली देने से अधिक कुछ नहीं होगा। मैं कह सकता हूँ कि मुझे समय नहीं मिलता था। कह सकता हूँ कि आर्किटेक्चर विषय का व्यवसाय इतना समय और ऊर्जा ले लेता था कि बाद में कुछ पढ़ने की हिम्मत ही नहीं रह जाती थी। कह तो यह भी सकता हूँ कि साथ-साथ चित्रकला में भी गंभीरता से दखल देता रहता था, जिसमें शेष बचे समय का बड़ा अंश चला जाता था। कह तो यह भी सकता हूँ कि दोनों सँभालते हुए बस जो कुछ भी वक्त बच जाता था उसी में अपनी लिखने की इच्छा पूरी करता था। तो पढ़ने के लिए समय लाता कहाँ से? लेकिन यह कोरी बहानेबाज़ी है। न तो स्वदेशी साहित्य में डूब कर ही रत्न खोजे, और न ही विदेशी साहित्य में। हालाँकि इसका अर्थ यह नहीं कि कुछ भी नहीं पढ़ा। लेकिन बस जो अपनी पसंद के लेखक थे, अधिकतर उन्हीं को पढ़ता रहा।

दूसरा यह भी रहा कि मैं जो कुछ भी लिखता था, वह छपने के पहले न तो किसी को बताता था, न उस पर किसी की राय ही लेता था। किसी के कहने पर उसमें कोई बदलाव करने का तो प्रश्न ही नहीं था। यह अनेक समकालीन लेखकों की रचना प्रक्रिया के उलट था, जिसमें वे अपनी रचनाओं को प्रकाशन से पूर्व अन्य लेखकों को पढ़ने के लिए देते है, तथा उनके सुझावों को समन्वित कर के उसे फायनल रूप देते है। लेकिन मैं तो ठीक वही लिखता रहा जो अपना मन कहता था। फिर भी अपने लेखन पर निर्मल वर्मा, चेखव और अल्बेयार कामू के गहरे प्रभाव से इंकार नहीं कर सकता।

मुझमें अपनी कहानियों के प्रस्थान बिंदुओं को ले कर कभी कोई संशय नहीं रहा। यह वही था जो मेरी सबसे पहली कहानी 'उतार' में था। मुझे याद है, उसके पहले मैं कई दिनों तक दिल्ली जैसे शहर में संघर्ष करता रहा था और इस दौरान उन्हीं से आहत होता रहा था, जिनसे सहारे की सबसे ज़्यादा अपेक्षा थी। यह टकराहट औरों के और अपने बीच थी। इससे जो चिंगारी पैदा हुई, उससे कहानी का जन्म हुआ। लेकिन एक दूसरी टकराहट भी थी, जो मेरे और मेरे बीच ही जारी रहती थी। मेरे भीतर दो आत्म थे। एक मुझे भौतिक सुख अथवा लाभ की आकांक्षा में ग़लत निर्णयों की ओर ठेलता था, जबकि दूसरा सात्विक भाग सही के पक्ष में सदैव उससे द्वंद्व करता था। जीत हमेशा पहले वाले अधम पक्ष की ही होती थी। लेकिन बाद में एक सघन अपराध भाव जकड़ लेता था। इस आंतरिक टकराहट से उड़ी चिंगारी दूसरी तरह की कहानियों का फ्लैश प्वाइंट बनती थी। और यह अपराध भाव तो मेरी रचनाओं का स्थाई स्वर बन गया था। यह द्वंद्व और यह भाव तो मेरी कहानियों ही नहीं बल्कि उपन्यासों तक में पृष्ठ दर पृष्ठ छाया रहा और एक तरह से मेरा सिग्नेचर एलिमेंट बन गया।

कहानी का मुख्य भाव तय हो जाने के बाद मैं उस पर केन्द्रित रहता हूँ। इधर-उधर नहीं भटकता। अक्सर तो भाव केन्द्रित होने के

कारण मेरी कहानियों में किसी बड़े कथानक की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। पात्र भी सीमित होते है। पात्र सामान्यत: कल्पना जन्य ही होते हैं, जो प्रस्तुत कथानक को परिणति तक पहुँचा सकें। कभी ऐसा होता है कि अपने मन के किसी भाव को मैं बाहरी परिवेश में प्रतिबिंबित कर के बाहर से पात्र ले कर प्रसंग गढ़ लेता हूँ। कभी बाहर की किसी घटना को अपने मन की पीड़ा के साथ एकात्म कर के रचना को मुकाम तक पहुँचा देता हूँ। तात्पर्य यह कि कभी बाहरी पीड़ा को अपनी मान कर प्रकट करता हूँ। कभी अपनी पीड़ा के अक्स बाहरी दुनिया में ढूँढ़ लेता हूँ।

जब मैंने 'खंभों पर टिकी ख़ुशबू' उपन्यास लिखा, तब संघर्ष तो पूर्णत: उस क्षेत्र के सही और ग़लत के बीच ही था, लेकिन उसका नेरेटर लगातार आधे सही और आधे ग़लत के बीच झूल रहा था। उपन्यास के अंत में उसका ज़रा सा सही की ओर झुक जाना अपनी सकारात्मक आकांक्षा का ही प्रतिबिंब था।

सामान्यत: सच्चाई के रास्ते पर चलने की आकांक्षा रखते हुए भी निरंतर ग़लत रास्ते चुनते चले जाने वाला यह पात्र मेरी कहानियों और उपन्यासों में तरह-तरह के रूप धरकर निरंतर आता है। कभी यह अंतत: अपनी लालसा पर विजय भी पा लेता है, लेकिन कई बार ऐसा नहीं कर पाने के कारण अपराधभाव की आँच में झुलसता चला जाता है।

मेरी कहानी के कथानक बेशक खालिस सामयिक भी हों, जैसे शहर में हुए सांप्रदायिक दंगे, तब भी उसके किसी न किसी पात्र में मैं ही जीता हूँ। मैं किसी न किसी रूप में अपनी हर कहानी और उपन्यास के पात्रों में होता हूँ। सच तो यह है कि मैं वही लिख सकता हूँ, जो अनुभव जन्य हो। दूसरे शब्दों में कहूँ तो बार बार मैं ख़ुद को ही लिख सकता हूँ। मैं ही रूप बदल बदल कर हर कहानी में अवतरित होता हूँ। स्वयं को इन्वॉल्व किए बिना लिखना ऐसा लगता है जैसे दूर बैठ कर कमेंट्री की जा रही हो।

मेरी कई कहानियों में एक मुख्य पात्र होता है जो ज़िंदगी तूफ़ान बन कर शुरू करता है और अंत में हवा का थका हुआ झोंका बन कर रह जाता है, और उस स्थिति की हताशा को भोगता है। निस्संदेह वह मेरा ही अक्स होता है।

मैं वर्तमान से निकल कर इतिहास में चला जाता हूँ और उन पात्रों को ढूँढ़ कर उनके साथ एकात्म हो जाता हूँ, जिनकी मन:स्थिति, गाथाएँ और अपराध भाव अथवा पीड़ाएँ मेरी आंतरिक दुनिया के समानांतर होती है। कभी वह मुझे अंगुलिमाल में मिल जाता है, जो दुनिया को सुंदर बनाने के सपने के साथ ज़िंदगी शुरू कर के अंतत: अंतहीन हत्याओं की घाटियों में भटकने लगता है। कभी वह ठगों की दुनिया में मिल जाता है, जहाँ किसी को पूर्ण विश्वास में ले कर एक पीले रूमाल से गला कस कर उसका क़त्ल कर दिया जाता है। कभी दारा शिकोह में मिल जाता है जिसके उच्च आदर्शों को एक धर्मांध की सत्तालोलुपता ने नष्ट कर दिया। कभी स्वयं कृष्ण में मिल जाता है, जो ज़िंदगी भर ईश्वर रहने के बाद अंत में एक निराश सामान्य जन की तरह शिकारी के तीर का शिकार हो कर देह मुक्त हो गए।

मेरे पात्रों में अगर अक्सर ऐसे पात्र होते हैं जिनके द्वारा ज़िंदगी में किए गए बड़े कार्यों का श्रेय कोई और ले गए, तो उनमें मेरे ही अक्स थे। अगर ऐसे पात्र होते है जिन्होंने वक़्त रहते अपनी भौतिक सम्पन्नता के इंतज़ाम नहीं किए और जब आँख खुली तब देर हो चुकी थी, तो उनमें मैं ही था। अगर ऐसे पात्र मिले जो जानबूझ कर मौके खोते रहे और अंत में कुछ भी नहीं हो पाने की कसक झेलते रहे, तो वे मेरे ही अक्स थे। अर्थात् बाहरी दुनिया और अपने बीच सतत संघर्ष के चलते, अपने भीतर के अपने ही साथ चल रहे अविराम संघर्ष के चलते जो भी यातना बिम्ब बने, वे सब पात्रों कि शक्ल में कहानी उपन्यासों में बिखरते चले गए। यहाँ तक कि नितांत बाहरी और सामाजिक विषयों पर भी मैंने वही कथानक बुने जिनके पात्रों और स्थितियों में अपनी संवेदनाओं के अक्स हों।

मेरी कहानियों और उपन्यासों के पात्र अक्सर पूरे दौर में नकारात्मक खेल खेलते हुए भी अंत के करीब कहीं बदल जाते है। अथवा पूरे दौर में नकारात्मक ही रहते हैं, लेकिन उनका उस वृत्तांत को गहन अपराध बोध के साथ प्रस्तुत करना ही उनके सकारात्मक हो जाने का बोध कराता है। वह अपने उन तमाम ग़लत कार्यों को सहजता के साथ स्वीकार करता चला जाता है, जिनकी सामान्य कहानियों के नायकों से अपेक्षा नहीं की जाती। 'हाउस ऑफ लस्ट' कहानी का कुलीन नायक एक वैश्या का उद्धार करने के बहाने अपनी दैहिक लिप्सा शांत करने के लिए वैश्यालय जाता है और उस सब की बेलाग स्वीकारोक्ति करता है। उसकी स्वीकारोक्ति ही कहानी का सकारात्मक सन्देश है। एक तरह से मेरी अनेक कहानियाँ और उपन्यास किसी दुष्ट खलनायक की आत्मस्वीकृति जैसे लगते है। लेकिन ये नायक की आत्मस्वीकृति क्यों नहीं हो सकते? सच तो यह है कि मेरी कहानियाँ साहित्य में स्थापित नायक की सदाबहार अच्छी छवि को तोड़ते हुए भी उसकी अच्छा हो पाने की इच्छा का सम्मान करती हैं।

मेरी रचना प्रक्रिया पर मेरे व्यवसाय का प्रभाव अवश्य ही पड़ा होगा ऐसा मैं मानता हूँ।

आर्किटेक्चर में एक बार ड्राइंग बोर्ड पर पूरी तरह से नक्शा फाइनल हो जाने के बाद ही आगे साइट पर निर्माण कार्य आरंभ हो सकता है। शायद इसीलिए कागज़ पर कहानी उतारने के पहले मैं अपने मन में उसकी स्पष्ट रूपरेखा निर्धारित कर लेता हूँ। उसका अंत तो तय होना ही चाहिए, तभी मैं उसे लिख सकता हूँ। एक बार यह सब तय हो जाने के बाद कहानी लगभग धाराप्रवाह लिख लेता हूँ। लिखने के बाद उसमें बहुत फेरबदल करने की गुंजाइश भी नहीं रखता। बाद में जो फेरबदल होते हैं वे कथ्य में कम और प्रस्तुतिकरण में ही अधिक होते हैं। एक और बात यह है कि आर्किटेक्चर में अनावश्यक कुछ भी नहीं होता। जो भी होता है वह सिर्फ आवश्यक ही होता है। इसी तरह मैं अपनी कहानियों में भी कथावस्तु से कभी दूर हटकर नहीं भटकता। कहीं भी अनावश्यक विस्तार अथवा संवाद नहीं देता। कहानी में पात्र गिनती के होते हैं जो कथा वस्तु को मुकाम तक पहुँचाने के लिए आवश्यक हो। इसलिए एक तरह का कसाव बना रहता है।

कहानियों पर मेरे भीतर के कलाकार का भी अप्रत्यक्ष असर होता ही है। मेरी कहानियों में एक तरह का सुनियोजित स्ट्रक्चर होता है। लिखते-लिखते आँखों के आगे तस्वीरें उभरती है, जिन्हें मैं वैसा ही लिख देता हूँ। परिणाम यह होता है कि वर्णन में चित्रात्मकता होती है। जैसा कि मैंने ऊपर उल्लेख किया भी है, मेरे एकाधिक उपन्यासों पर मुझे इस तरह की प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं कि इसे पढ़ते हुए आँखों के आगे पूरी फिल्म चलती लगती है। अथवा अगर इस पर फिल्म बनाई जाए तो अलग से स्क्रिप्ट लिखने की आवश्यकता ही नहीं है। अगर मैं कहता हूँ की मेरी रचनाएँ मानवीय मूल्यों के ध्वंस की रचनाएँ हैं तो इसमें कुछ भी नया नहीं है, क्यों कि साहित्य का मूल स्वर हमेशा से यही रहता आया है और भविष्य में भी रहेगा ही। अगर मैं कहता हूँ कि मेरी रचनाएँ आज के दौर में पारस्परिक स्नेह संबंधों के विघटन की कहानियाँ है, तो भी ऐसा होना स्वाभाविक ही है और समकालीन साहित्य की यही सार्वभौमिक चिंता भी है। अगर मैं इसमें अपनी तरफ से कुछ अलग करने की विनम्र कोशिश कर रहा हूँ, तो वह महज इतनी है कि मेरे पात्र इन तमाम नकारात्मक स्थितियों के ही प्रणेता भी होते हैं और पोषक भी। लेकिन साथ ही वे ऐसा करते रहने के अपराध बोध के नीचे दबे होते हैं और छटपटा कर बाहर निकल आने की चाहत रखते हैं।

मैं स्वीकार करता हूँ की स्मृतियाँ मेरी सृजन प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। मैं उनसे बच नहीं सकता। न ही बचने की कोई इच्छा रखता हूँ। मेरे बचपन का वह अपना-सा मोहल्ला, उसकी धूल भरी कच्ची गलियाँ, टीन टप्पर के छोटे-छोटे घर, बारिश के मौसम, कागज़ की नावें और इन दृश्यों के साथ-साथ जुड़ी शरारतें, अपनत्व, प्यार - मेरे वर्तमान की कश्ती में यही सब असबाब रखा है। मैं जो वर्तमान की गहमा-गहमी में अपना अस्तित्व खो देता हूँ, उसे बार-बार पाने के लिए अतीत में लौटता हूँ। मैं अपनी ज़िंदगी की मुश्किल राहों पर बचपन की स्मृतियों का गुलाब जल छिड़कते चले जाना चाहता हूँ। वह मेरे लिए अपने होने का आश्वासन है। स्मृतियाँ अक्सर वर्तमान के लिए बेंच मार्क का काम करने लगती है। इसलिए मेरी रचनाएँ निरंतर वर्तमान और अतीत के बीच झूलती सी चलती है।

मैं यह भी जानता हूँ कि रचनाओं में मेरा वैयक्तिक स्पर्श बहुत प्रखरता के साथ आ जाता है। कभी-कभी इस हद तक कि किसी रचना को मेरा आत्मकथ्य ही मान लिया जाता है। जैसे 'खंभों पर टिकी ख़ुशबू' उपन्यास को। क्या करें ? अगर उसमें प्रस्तुत घटनाएँ सीधी अपने ही ज़िंदगी के अनुभवों से ली गई हो और संवेदनाएँ अपने ही मन से, तो ऐसा एहसास तो होगा ही। मेरी अनेक रचनाओं में, कहानियों में ही नहीं, उपन्यासों में भी, एक 'मैं' होता है। वह एक नेरेटर होता है। वह जैसे अपनी कहानी सुनाते चलता है। सारा आख्यान प्रथम पुरुष में होता है। वही रचना का प्रमुख पात्र होता है। इसलिए पढ़ते हुए पाठक को लगता है जैसे वह घटना के पात्र से ही सीधे उसकी आपबीती सुन रहा है। यह उसे घटना से सीधे जोड़ता है। इसकी शुरुआत तब से हुई थी, जब मैंने अल्बेयर कामू के एक उपन्यास का हिन्दी अनुवाद 'पतन' पढ़ा था। तब मैं साहित्य में दूर तक नहीं गया था। उसके प्रस्तुतिकरण ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला। प्रस्तुतिकरण में अगला प्रभाव निर्मल वर्मा के 'एक चीथड़ा सुख' का पड़ा था। वह भी दूरगामी था और उसके प्रभाव से बाहर आने में मुझे अरसा लग गया था। अक्सर मेरी रचनाओं को ले कर जब बात होती है, तो कहीं न कहीं प्रस्तुतिकरण पर चर्चा अवश्य होती है। मुझे प्रस्तुतिकरण को विशेष रूप से साधने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किसी भी घटना और पृष्ठभूमि पर लिखते समय जो भाव मन में उमड़ते हैं और जो उनका आवेग होता है, उसी से आप से आप उसका प्रस्तुतिकरण रूप लेने लगता है। यह अवश्य है कि कई दशकों तक लिखते रहने से उसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ अवश्य आ जाती हैं, जो पाठक की नज़र में आपकी अपनी विशेषताएँ मान ली जाती हैं। मेरी रचनाओं में संवाद अपेक्षाकृत कम होते हैं। लेकिन मेरी भरसक कोशिश होती है कि दृश्य के वातावरण के साथ पाठक को एकात्म किया जा सके।

हाँ मेरी रचनाओं में, चाहे वे कहानियाँ हों अथवा उपन्यास, फेंटेसी का एक एलिमेंट अवश्य आ जाता है। कोई एक ऐसा चरित्र जो वास्तविक जगत् का नहीं होता। अथवा कोई ऐसा घटनाक्रम जो परीकथाओं में ही संभव है। मैं जो पेंटिंग्स करता हूँ उनमें भी यही स्टाइल होती है। वहाँ यह surrealistic अथवा अति यथार्थवाद के नाम से जानी जाती है। कुछ यथार्थ और सपनों के बीच की स्थिति, जैसी सल्वाडोर डाली के पेंटिंग्स में होती है। संभव है कि मेरे साहित्य में यह रुझान मेरे पेंटिंग्स के प्रभाव में ही आया हो। लेकिन मैं मानता हूँ कि यह अतियथार्थ, किसी यथार्थ को ही और सघन रूप में प्रस्तुत करने का एक तरीका है। जैसे पिकासो ने महायुद्ध की विभीषिका चित्रित करने के लिए अपने पेंटिंग्स में मानवाकृतियों को पशुओं की आकृतियों के साथ मिला दिया था। अथवा जैसे काफ़्का ने किसी की निरिहता को प्रदर्शित करने के लिए व्यक्ति को काक्रोच में बदल दिया था। मैंने तो भोपाल गैस त्रासदी जैसे खालिस तकनीकी विषय पर लिखे गए उपन्यास में भी एक मुख्य पात्र को फेंटेसी के रूप में ही प्रस्तुत कर दिया था। हाल ही में 'फाँसी बाग' उपन्यास का एक पात्र एक पालतू शेर है, जो कुछ ताक़तवरों के साथ बाक़ायदा मीटिंग में भी शामिल होता है। यह उनकी शक्ति और नृशंसता का प्रतीक है। मुझे इस स्टाइल को अपनी सिग्नेचर स्टाइल कहने में कोई संकोच नहीं है। जैसे मेरा साहित्य वर्तमान और अतीत के बीच झूलता है, वैसे ही वह रियलिटी और फेंटेसी के बीच भी झूलता है।

एक तरह से देखा जाए तो यह भी किसी अति यथार्थवादी बिम्ब अथवा फेंटेसी से कुछ कम है क्या कि मेरे जैसा शख्स साहित्य में जगह बनाने की कोशिश करता रहा। और वह भी बाकायदा दशकों तक। कहाँ तक पहुँचे इस प्रश्न का भला क्या उत्तर हो सकता है ? बस इतना कहा जा सकता है कि जहाँ तक कदम आ सके आ गए हैं।

000

कौन ज़िम्मेदार

शेर सिंह

जिसने भी सुना, हैरान हुए बिना नहीं रह सका था। यह ख़बर पहले उड़ते-उड़ते कानाफूसी के रूप में, और फिर धीरे- धीरे सभी साथियों, स्टाफ में फैल गई थी।

"अरे लक्ष्मण... ओ रमैया ! आपने भी सुना क्या ?" प्रकाश राव धीरे से अपने साथ के टेबल पर कागज़ों को डेस्क टॉप के सामने फैलाए, उन पर माथापच्ची करते हुए लक्ष्मण और रमैया से पूछ रहा था। पूछ क्या, बल्कि जानना चाह रहा था।

"सुना तो है... यह ख़बर ग़लत नहीं होगी। हो भी नहीं सकती है। मनहूस ख़बरें हमेशा सच होती हैं।" लक्ष्मण ने जैसे अपुष्ट ख़बरों की पुष्टि कर ली थी।

"यार ! यह तो बहुत बुरा हुआ !" प्रकाश राव की आवाज़ अविश्वास और अफसोस से भरी हुई थी।

"अभी श्रीराज को आरपी रोड से किसी कुलीग ने फ़ोन करके बताया है।" लक्ष्मण भी हैरान और दुखी लग रहा था। उसके चेहरे पर भी आश्चर्य, अविश्वास और अफसोस के मिले -जुले भाव एक साथ दिख रहे थे।

आज पूर्ण कार्य दिवस था। बैंक का प्रशासनिक कार्यालय प्रतिदिन की तरह अपने कामकाज में मगन था। यह कार्यालय बैंक की दूर- दूर स्थित शाखाओं में कार्य और उनकी सभी प्रकार की गतिविधियों की जानकारी रखता था। दरअसल ये शाखाएँ इस प्रशासनिक कार्यालय के अन्तर्गत ही कार्य करती थीं। बैंक का हैदराबाद स्थित यह कार्यालय अपने अधीन शाखाओं का मार्गदर्शन, नवीन जानकारियों, प्रक्रियाओं, लेन-देन, ग्राहक बैंक संबंध और प्रधान कार्यालय के मध्य एक संपर्क सूत्र यानी मध्यस्थता का पुल था। लेकिन आज सुबह से ही इस ऑफिस का पूरा माहौल एक अनहोनी और अविश्वसनीय ख़बर से तनावपूर्ण हो उठा था। ख़बर ही ऐसी थी, जिसने सबको गमगीन तथा कार्यालय के सभी स्टाफ के दिलो-दिमाग़ को हिला कर रख दिया था। ऑफिस में अजीब सी ख़ामोशी छाई हुई थी। पूरा माहौल दुख और उदासी भरा हो गया था। परन्तु यह ख़ामोशी, चुप्पी के बावजूद बहुत कुछ कहती लग रही थी।

प्रकाश राव और लक्ष्मण वरिष्ठ अधिकारी थे। यह ख़बर सुनने के बाद दोनों कार्यालय प्रमुख वेंकटेश्वरन के केबिन में दाखिल हुए। भीतर वेंकटेश्वरन जी और सीनियर कार्यपालक

शेर सिंह
नाग मंदिर कालोनी, शमशी
कुल्लू, हिमाचल प्रदेश 175126
मोबाइल- 8447037777
ईमेल- shersingh52@gmail.com

मिस्टर पै बैठे हुए थे। वेंकटेश्वरन साहब सेल फ़ोन पर गंभीर मुद्रा बनाए बातों में व्यस्त थे। पै साहब चुपचाप उनकी टेबल के सामने बैठे उन्हें फ़ोन पर बातें करते हुए देख, उनके चेहरे पर उभरते विभिन्न भावों को समझने का प्रयास कर रहे थे। प्रकाश राव और लक्ष्मण भीतर जा कर खड़े हुए ही थे, कि वेंकटेश्वरन साहब ने दोनों को कुर्सियों पर बैठ जाने का इशारा किया। वे दोनों इशारा पाकर साहब की बड़ी सी टेबल के सामने पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए। उनके बैठ जाने पर साहब ने फ़ोन पर बातचीत ख़त्म की। मोबाइल फ़ोन को टेबल के ऊपर रख दिया।

"सर ! करीम नगर या आरपी रोड से किसी स्टाफ का फ़ोन आया ?" प्रकाश राव ने साहब से जानना चाहा।

"हाँ... फ़ोन तो आया... मगर बहुत बुरी ख़बर है। फॉरमर ब्रांच मैनेजर अजीत महापात्रा ने सुसाइड कर लिया है। उसने अपने घर में फाँसी लगा लिया।" वेंकटेश्वरन साहब की आवाज़ में दुख कम, लेकिन चिंता अधिक उभर आई थी।

"सर ! फ़ोन तो हमें भी आ गया था... लेकिन विश्वास नहीं हो रहा।" लक्ष्मण ने कहा। इस बार प्रकाश राव चुप रहा। मिस्टर पै भी चुपचाप बैठे हुए थे। उन्होंने अब तक कोई बात ही नहीं की थी।

"वह हमारा सबसे सीनियर मैनेजर था... ऑफ़िसर्स एसोसिएशन का स्टेट प्रेजीडेंट भी था। उससे ऐसी बेवक़ूफ़ी... मूर्खता... कायरों वाले काम की उम्मीद नहीं थी। लेकिन लगता है... वह बहुत डर गया था। शायद संभावित कार्रवाई को ध्यान में रख... सबके सामने शर्मिंदा नहीं होने के विचार से उसने यह कदम उठाया।" वेंकटेश्वरन साहब अन्यमनस्क सा होते हुए बोले। संभवत: उन्हें सही स्थिति का कुछ- कुछ अंदेशा- अन्दाज़ा पहले से ही था। वेंकटेश्वरन साहब मलयायम भाषी थे। पै साहब कोंकणी बोलने वाले। प्रकाश राव और लक्ष्मण तेलुगु भाषी थे। सभी दिल्ली, यूपी में बहुत वर्षों तक काम कर चुके थे। अपनी युवावस्था के दौरान उन सबने अपनी प्रारंभिक समय की नौकरी कई वर्षों तक इन्हीं राज्यों और क्षेत्रों में की थी। वैसे भी, तेलुगु में एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है। यदि तेलुगु भाषी दो या अधिक लोग आपस में बहस करने, लड़ने-झगड़ने लगें, तो वे हिन्दी में बोलना शुरू कर देते हैं। जैसे हिन्दी भाषी बहस-मुबाहिसा करते, अथवा नाराज़, ग़ुस्से में होने पर अपनी भाषा छोड़, अंग्रेज़ी में बोलने लगते हैं। यहाँ तो सभी अलग-अलग मातृभाषा बोलने वाले थे। इसलिए बातचीत में हिन्दी का ही अधिकतर प्रयोग करते थे। वैसे भी, वेंकटेश्वरन साहब तथा पै साहब को तेलुगु नहीं आती थी, और प्रकाश राव तथा लक्ष्मण मलयालम या कोंकणी नहीं जानते थे।

"करीम नगर ब्रांच के सैंकेंड ऑफ़िसर... या आरपी रोड से डिटेल मालूम करो। सुसाइड का केस है... हमें कहीं जाने की ज़रूरत नहीं।" साहब अपने स्टेंड और अपनी स्थिति की समझ पर स्पष्ट थे। पै साहब चुप थे। प्रकाश राव और लक्ष्मण भी कुछ नहीं बोले। दोनों के होंठ जैसे सिल गए थे।

दोनों साहब के सामने कुर्सियों पर बैठे हुए, क्या कहें ? क्या बोलें, की स्थिति में थे। लेकिन उन सबके दिल और दिमाग़ तेज़ी से इधर-उधर दौड़-भाग रहे थे। संभावित छिद्रों में ताक- झाँक करने का प्रयास कर रहे थे। वजह जानने को बेताब, बेचैन थे। कारण या वजह का मुख, सूत्र खोजने-समझने की कोशिश में उलझे पड़े थे। सब अपने-अपने हिसाब से मानसिक उधेड़बुन में लग पड़े थे।

प्रकाश राव को फरवरी महीने का वह दिन बरबस ही याद आ गया, जब वह अपने ऑफ़िस के सीनियर कार्यपालक मिस्टर पै के साथ करीम नगर ब्रांच में रूटीन शाखा के दौरे पर यानी औपचारिक निरीक्षण के प्रयोजन से गए थे। वे आपस में हिन्दी और कभी-कभी अंग्रेज़ी में बात करते थे। हैदराबाद से करीम नगर की दूरी लगभग दो सौ किलोमीटर है। ड्राइवर कार को ख़ूब तेज़ चलाता रहा था। लेकिन सुबह हैदराबाद से देरी से चलने के कारण करीम नगर ब्रांच में दोपहर बाद ही देर से पहुँच पाए थे। इस बीच कुछ समय के लिए रास्ते में पड़ने वाली पेद्दापेठ ब्रांच में भी गए थे।

शाखा में पहुँचने पर अजीत महापात्र ने जिस प्रकार से उन दोनों की आवभगत की थी, उससे दोनों हैरान कम मगर प्रभावित अधिक हुए थे। ऐसा स्वागत-सत्कार पाकर दोनों मन ही मन ख़ुशी से फूल उठे थे। परन्तु प्रकट में दोनों ने अपने हाव-भाव से इस भावना को ज़ाहिर होने नहीं दिया था। शाखा की विभिन्न पोर्टफोलियो को सरसरी तौर पर देखने, जाँचने पर लोन से संबंधित कागज़-पत्रों, अभिलेखों, दस्तावेज़ों में कई ख़ामियाँ-कमियाँ निकल आई थीं। आधे-अधूरे कागज़-पत्रों के आधार पर ग्राहकों को बैंक से लोन दे दिये गए थे। लोन की किश्तें अब जमा नहीं हो पा रही थीं। ब्याज की राशि बढ़ती ही जा रही थी।

"महापात्रा जी... लोन की रिकवरी नहीं हो रही है... खाते कहीं एनपीए न हो जाएँ ? आप इस पर ध्यान दें। इस काम के लिए आप किसी ऑफ़िसर को केवल रिकवरी की ड्यूटी पर लगा दें। लगातार फॉलोअप करते रहें।" सीनियर कार्यपालक मिस्टर पै ने बहुत आवभगत के बावजूद, अजीत महापात्र को स्पष्ट निर्देश दे दिये थे। इसे उन्होंने निरीक्षण लॉगबुक में भी साफ-साफ लिख दिया था। लॉगबुक में इन बिंदुओं को लिख दिये जाने पर, वरिष्ठ प्रबंधक महापात्र के माथे पर पसीना उभर आया था। चेहरे का रंग बदल गया। थोड़ी देर तो उससे कुछ बोला न गया। लेकिन फिर कहा-

"सर ! ये जितने लोन दिए गए हैं... रिलीज़ किये हैं... मुझसे पहले वाले मैनेजर ने दिये हैं। कागज़ पत्र भी उसी के तैयार किये हुए हैं। मैं लोन को रिकवर करने की पूरी कोशिश कर रहा हूँ। जहाँ डॉक्यूमेंट्स आधे अधूरे हैं... ऐसे मामलों में सही और पूरे डॉक्यूमेंट्स प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ। डिफाल्टर्स से कांटेक्ट में हूँ ही।" महापात्र ने अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाही। वह इस ब्रांच में पिछले लगभग दो वर्ष से था। दो वर्ष का समय बैंक के काम-काज, अपने ग्राहकों को जानने-समझने के लिए काफी होता है।

"महापात्रा जी ! यह तो ठीक है... आप रिकवरी करने में कोई ढिलाई न करें। आपका

डिपॉजिट पोर्टफोलियो बेशक बहुत अच्छा है... लेकिन एडवांसेस में बहुत दिक्कतें हैं।" पै साहब ने शांत, मगर बहुत सधे शब्दों में एक प्रकार से परामर्श के रूप में चेतावनी ही दे दी थी।

"ओ के सर... अई विल डू माई बेस्ट।" त्रुटियों को सही करने तथा नियमानुसार कार्रवाई का महापात्र ने आश्वासन दिया था। शाखा में एडवांसेस पोर्टफोलियो की जाँच-पड़ताल करने में बहुत समय लग गया था। अब तक शाम के लगभग सात बजे से अधिक का समय हो चुका था। दिन छोटे थे। इसलिए समय कुछ अधिक ही लग रहा था।

"सर ! आप रात को यहीं रुकेंगे... होटल श्वेता में दो रूम बुक करा दिये हैं। रात की यात्रा के लिए यह एरिया ठीक नहीं है। क्यों रिस्क उठाना।" नक्सली समस्या और नक्सलियों की गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए, अजीत महापात्र ने उन्हें नेक सलाह दी थी। उन्होंने फिर रात को वहीं करीम नगर में होटल श्वेता में स्टे किया।

रात को वरिष्ठ शाखा प्रबंधक अजीत महापात्र द्वारा होटल में मस्त शाही दावत का इंतज़ाम किया गया था। रात के भोजन में होटल के डाइनिंग हॉल में बैंक की शाखा के सारे अधिकारी शामिल थे। खाने में तरह-तरह के आइटमों का ऑर्डर दिया गया। वैज, नॉन वैज और पीने वालों के लिए हार्ड ड्रिंक्स भी। शाखा में दिन भर के तनावपूर्ण माहौल, ग्राहकों की किचकिच, वर्कमेन स्टाफ की अपने काम के प्रति लापरवाही को देखने-झेलने के बाद, यह एक अलग ही प्रकार का खुला-खुला और अनौपचारिक गेट टुगेदर सरीखा मिलन था। सब ख़ुश थे। अपने-अपने हिसाब से चहक रहे थे। ठहाके लगा रहे थे। आपस में हँसी-मज़ाक कर रहे थे। मिस्टर पै ने भी पेग चढ़ा लिये थे। मिस्टर पै और प्रकाश राव महापात्र के द्वारा ऐसी मेज़बानी पर अचंभित थे। परन्तु उन्हें अच्छा भी लग रहा था। प्रकाश राव को समझ नहीं आ रहा था कि ये ताम-झाम अपना इमेज बनाने की चाहत थी, अथवा ब्रांच के आंतरिक ख़ामियों से ध्यान भटकाने का प्रयास ? खाने-पीने और पीने-पिलाने का यह दौर रात के लगभग ग्यारह बजे से अधिक समय तक चलता रहा। खाने-पीने के बिल का सारा भुगतान बैंक की शाखा के कंटीजेंसीज फंड्स से किया गया था शायद। अजीत महापात्र ने बहुत अच्छी तरह से एंटरटेन किया था। उसने उन्हें या अपने स्टाफ के किसी भी अधिकारी को, एक पैसा भी ख़र्च करने का मौका नहीं दिया था।

दूसरे दिन मिस्टर पै और प्रकाश राव सुबह कुछ देर से उठे थे। अब यहाँ उनका कोई काम नहीं था। आज उनका किसी और ब्रांच में विजिट करने का कार्यक्रम था। नहा-धो कर नाश्ता-पानी करने के पश्चात् वे चलने के लिए तैयार ही थे, कि वरिष्ठ शाखा प्रबंधक अजीत महापात्र फिर उनके सामने खड़े थे। उसके हाथों में उन दोनों के लिए गिफ्ट के पैकेट्स थे।

"सर सेफ़ जर्नी... अई विल डू माई बेस्ट टु आब्टेन ऑल दी रिक्वायर्ड डॉक्यूमेंट्स... और... ट्राई टु रिकवर द लोन्स... विल रेक्टीफाई द डेफीशेंसीस।" महापात्र ने अपने दोनों हाथ पै साहब के सामने जोड़ते हुए कहा। मिस्टर पै और प्रकाश राव दोनों ने उससे हाथ मिलाए। तीनों होटल के बाहर गाड़ी के पास आए। फिर उनके ड्राइवर रहमान ने गाड़ी आगे बढ़ा दी। अजीत महापात्र वहीं खड़े रहे।

"सर ! एडवांसेस पोर्टफोलियो बहुत बुरी हालत में है... बहुत ख़राब कहें... तो ग़लत नहीं होगा। सही से डॉक्यूमेंट्स... पेपर भी नहीं हैं। जो हैं भी... वे भी ठीक से नहीं भरे हुए हैं। लोन भी एनपीए हो रहे हैं। क्या होगा ?" प्रकाश राव ने एकांत मिलते ही अपनी आशंका पै साहब के सामने व्यक्त कर दी थी। गाड़ी में इस समय केवल वे दोनों और उनका ड्राइवर ही था। इसलिए उनकी बात फैलने की संभावना नहीं थी।

"हाँ, बहुत सारे मामलों में पूरे डॉक्यूमेंट्स नहीं हैं... शायद गुडफेथ और भाईबंदी में लोन दिये गए हैं। अजीत महापात्र तो ऑफ़िसर्स एसोसिएशन का नेता भी है। लगता है... ग्राऊंड वर्क में बहुत लापरवाही बरती गई है। शायद जल्दी की वजह... या हो सकता है किसी प्रेशर ... गाइडलाइन्स को नज़रअन्दाज़ करके ऐसा किया गया हो ? सही जानकारी की अज्ञानता भी हो ? लेकिन लगता है ...बैंक के पैसे टारगेट पूरा करने के लिए ऐसे ही बाँट दिये हैं ? ग़लत है न...?" पै साहब का अपना आकलन था। उनका का अपना नज़रिया था।

"सर... इनकी पारिवारिक स्थिति भी कुछ अजीब है। परिवार में केवल इनकी पत्नी है। कोई संतान नहीं है... किसी अनाथ लड़की को एडॉप्ट किया हुआ है। लड़की अभी बहुत छोटी है। ये ख़ुद तो पचास से ऊपर के हैं। इनकी पत्नी बड़ी भली...सीधी-सादी सी है। मैंने इनके साथ भुवनेश्वर में काम किया है। एक व्यक्ति के रूप में महापात्र जी बहुत अच्छे हैं। बैंक के प्रति समर्पित भी हैं। परन्तु यूनियन के कामों की वजह से लेटेस्ट प्रक्रियाओं... काम या सूचनाओं का प्रेक्टिकल अनुभव नहीं है... इसीलिए लोन को ऐसे ही बाँट दिये हैं। कस्टमर्स को डॉक्यूमेंट्स आधे-अधूरे होने की जानकारी है शायद ? वैसे भी... कस्टमर अब बहुत स्मार्ट हैं। आजकल के कस्टमर बैंक के स्टाफ से भी अधिक बैंकिंग को जानते... समझते हैं। इसलिए वे लोन की किश्तें शायद ही भरें ?" प्रकाश राव का जैसा अनुभव था, और उसने अपने पुराने कुलीग के कार्यों को इस ब्रांच में जैसा देखा था, उसी के आधार पर उसने अपने मन की बात को कह दिया था।

यह सब बताते हुए प्रकाश राव के सामने अजीत महापात्र का गोरा- चिट्टा मुखमण्डल जैसे अचानक झलक उठा। अजीत महापात्र लगभग साढ़े पाँच फीट की हाइट का भरा-भरा शरीर वाला युवक था उन दिनों। काले, घुँघराले बाल उसके दमकते गोरे मुख पर बहुत फबते थे। मोटी और चौड़ी मूँछें तराश कर रखने से, उसके चेहरे का आकर्षण बढ़ाती लगती थी। मोटी-मोटी आँखों के ऊपर घनी, काली भौंहें उसके व्यक्तित्व को बहुत आकर्षक बनाती थी। वह ज़्यादातर सफारी सूट ही पहनता था। जहाँ भी जाता, एक ब्रीफ़केस हमेशा साथ होता। ब्रीफ़केस में पेन और एसोसिएशन से संबंधित पत्र-परिपत्र इत्यादि हमेशा पड़े होते। वह वाकपटु और काफी तेज़-तर्रार सा था। कभी-कभी तीन-चार दिन ऑफ़िस में दिखता ही नहीं था। पता

चलता, यूनियन की बैठकों में शिरकत करने, उनमें शामिल होने के लिए कभी कोलकाता, कभी मुंबई, तो कभी चेन्नई, कभी दिल्ली, कभी हैदराबाद गया हुआ है। उन दिनों वह अफ़सर था। ब्रांच मैनेजर नहीं बना था। प्रकाश राव को ये सब बरबस ही स्मरण हो आया। कैसे छोटी-छोटी माँगों, बातों को लेकर धरने, प्रदर्शन करते हुए अजीत महापात्र बाकी साथियों, स्टाफ की अगुवाई करते हुए नारे लगाता था, "अवर डिमांड... दूसरे उत्तर देते... जस्ट डिमांड... जस्ट डिमांड।"

"वी वांट जस्टिस... दूसरे उत्तर देते, जस्टिस... जस्टिस।"

अजीत महापात्र ऊँची आवाज़ में कहता, "अमरो दावी... दूसरे उत्तर देते, न्जयो दावी... न्जयो दावी !" वह ऐसा समय था, न तो कार्यालय में, ना ही किसी शाखा में स्टाफ पर अधिक दबाव या प्रेशर डाला जाता था। उच्च अधिकारी भी उतने हृदयहीन और कठोर नहीं थे। वह स्वयं तो किसी न किसी काम से टूर पर ही घूमता रहता था। परन्तु उसकी पत्नी घर में अकेली पड़ जाती। पास- पड़ोस का थोड़ा सहारा था। नाते-रिश्तेदार दूर गाँव में रहते थे। अपनी सामर्थ्य और उपलब्ध जानकारी के अनुसार डॉक्टरों के चक्कर, मेडिकल सलाह, इलाज के बावजूद उनकी अपनी कोई संतान नहीं हुई थी। अपने और यूनियन के काम से अक्सर घर से बाहर रहने के कारण, पत्नी के एकाकीपन को दूर करने के विचार, इरादे और शायद बुढ़ापे में सहारा सोचकर, पति-पत्नी ने एक छोटी सी अबोध बच्ची को एक एनजीओ से सारी औपचारिकताएँ पूरी करते हुए गोद ले ली थी।

"मैं इंस्पेक्शन रिपोर्ट की कॉपी ब्रांच को मार्क करते हुए प्रधान कार्यालय को भेज दूँगा। हम केवल कुछ ग़लतियों को नजरअन्दाज़ कर सकते हैं... सभी को कैसे छिपाएँ ? हम यदि रिपोर्ट न भी करें... रिकॉर्ड... कागज़ तो सच बता ही देंगे... हालाँकि उन्होंने हमारी बहुत ख़ातिरदारी की। लेकिन... अब हम ग़लत को सही कैसे करें ? करना तो ब्रांच को ही है। हम केवल सलाह और सुझाव ही दे सकते हैं।"

मिस्टर पै ने अपने मन की बात को स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट अपने कार्यालय के माध्यम से प्रधान कार्यालय को भेज दी थी। शायद बैंक के सरोकारों से बाहर भी अनावश्यक कार्य हुए थे। लोन देते समय संभवत: इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था कि बाद में इसका ख़ामियाज़ा क्या होगा ? इस बारे अब कोई कुछ कहना नहीं चाहता था। ऊपर-ऊपर से सब ख़ामोश लग रहे थे। परन्तु भीतर ही भीतर, सब अपने-अपने हिसाब से मंथन-मनन में लगे थे। और बाद में बैंक के निरीक्षण विभाग के अधिकारियों ने भी शाखा का गहन निरीक्षण किया था। पता नहीं उन्होंने प्रधान कार्यालय को क्या रिपोर्ट भेजी थी ? क्या सिफारिश की थी ? इसका भी पता नहीं चला। परन्तु अजीत महापात्र को प्रधान कार्यालय से स्पष्टीकरण माँगते हुए बहुत सख्त किस्म के पत्र आने शुरू हो गए थे। "लोन की रिकवरी तेज़ करो। अधूरे डॉक्यूमेंट्स को सही करो..." इत्यादि-इत्यादि निर्देशों और स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने सहित।

समय गुज़रता रहा। अजीत महापात्र का करीम नगर शाखा से हैदराबाद की अत्यधिक व्यस्त और बड़ी शाखा आरपी रोड स्थित ब्रांच में सेंकेंड मेन के तौर पर ट्रांसफ़र कर दिया गया था। करीम नगर के नए वरिष्ठ प्रबंधक ने ख़राब लोन पोर्टफोलियो के लिए अजीत महापात्र को पूरा ज़िम्मेदार ठहराया था। अपनी लंबी रिपोर्ट में उसने अजीत महापात्र के द्वारा की गई ग़लतियों के बारे में सब कुछ स्पष्ट लिखा था। समय के साथ एसोसिएशन भी कमज़ोर पड़ गया था। जिनको उसने अपना गॉडफादर समझा था, वे शायद बहुत चतुर-चालाक थे। दूसरों को केवल यूज़ करना जानते थे, अच्छा सोचना और करना नहीं।

जून-जुलाई का महीना शुरू हुआ ही था, कि कुछ दिनों की छुट्टी पर अपने घर भुवनेश्वर में गए अजीत महापात्र के द्वारा वहीं पर अपने ही घर में सीलिंग फैन से लटक कर आत्महत्या करने का दुखद समाचार मिला था। प्रधान कार्यालय से कड़े और चेतावनी भरे पत्रों से आहत होकर और लगातार पड़ते दबाव को झेल न पाने के कारण, उसने अपने जीवन से निजात पाने का यह आसान उपाय अपना लिया था। शायद उसे सस्पेंशन-टर्मीनेशन का डर भी हो गया था। वैसे, उसका डर निर्मूल नहीं था।

उस दिन आसमान में घोर, काले बादल छाए हुए थे। लगता था, आसमान कभी भी बरस पड़ेगा। देखते ही देखते साफ आकाश अचानक ही बादलों से घिर आया था। अब बरसे कि तब ! शर्मिंदगी, अपमान, बेइज़्ज़ती होने के विचार और मैनेजमेंट, अपने साथियों की नज़रों से गिर जाने की मानसिक कशमकश के फलस्वरूप उसने यह रास्ता चुन लिया था। लेकिन जिसने भी उसकी आत्महत्या के बारे में यह दुखद समाचार सुना, वह सन्न रह गया था। बैंक का एक वरिष्ठ अधिकारी और वह भी यूनियन का नेता, बैंक ऋणों की रिकवरी करने में नाकाम रहने के कारण आत्महत्या कर लेगा, इस पर कोई विश्वास नहीं कर रहा था ! लेकिन अनहोनी तो हो चुकी थी। एक ज़िंदगी ख़त्म हो गई थी। शायद कोई तारनहार नहीं होने के कारण उसने ऐसा अतिवादी कदम उठा लिया था। लेकिन एक फलता-फूलता परिवार बिखर गया था। उसने सादगी की प्रतिमूर्ति अपनी पत्नी और गोद ली हुई छोटी सी मासूम बेटी के बारे, पता नहीं सोचा था या नहीं ? लेकिन प्रकाश राव अब महापात्र की अर्धशिक्षित पत्नी, छोटी सी बच्ची के बारे ही सोच रहा था। वे दोनों तो अब बिलखने पर मजबूर थीं। परन्तु अचानक ही घटे इस हादसे से लगे आघात से, श्रीमती अजीत महापात्र गहरे सदमे में थी। वह रोना भूल गई थी। उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा था। वह अब भी विश्वास नहीं कर रही थी कि उसका पति उसे, और अभागी बच्ची को छोड़कर अनजान लोक के सफ़र पर चला गया है। अब दोनों इस बेरहम दुनिया में अपने आप को कैसे व्यवस्थित, स्थापित कर पाएँगी ? यही सब सोच-सोच कर, प्रकाश राव का दिल उन दोनों के लिए सहानुभूति और दया से द्रवित हो रहा था।

000

इक वादा था ख़्वाब का पूरा हुआ अभी-अभी

विमलेश शर्मा

दो आँखें आँखों को बहुत कुछ कह जाती हैं। एक संवाद जो भीतर उपजता है अक्सर आँखों के रास्ते सारे ताले तोड़ बह जाता है। यही, ठीक यही तो हुआ था उसके साथ। जाने वह क्या था जो उन चंद घड़ियों में बरबस उसे खींचता था, वह कौन सी साज़िश थी जिसके आगे वह चुपचाप खड़ी थी, वह क्या था जो एकाएक उसे घड़ी की सुइयों की ओर चुम्बक-सा खींच लेता था। ऐसा नहीं है कि वह उस खिंचाव को समझी न हो या कि उसने मन को समझाया नहीं था पर यह स्थिति अवश थी। भावनाओं के सोतों पर बाँध बनाना वह ख़ूब जानती थी पर इस बार जाने क्यों बात हाथ से फिसलती नज़र आ रही थी। उसकी यह स्थिति या तो वह ख़ुद जानती थी जिसके साथ वह हर घड़ी मान-मनौव्वल किया करती थी, एक जिरह में उलझी रहती थी... हाँ कि नहीं... नहीं कि हाँ...या कि शाख़ पर बैठे उल्लुओं का वह जोड़ा जो हर शाम उसके उस इंतज़ार में चुपचाप शामिल हो जाता या कि चौक पर खड़ा वह घना बरगद जो पतझड़ में पीला पड़ जाता था और मौसम के फिरते ही हरा-कच हो जाता था...जिसकी छाँव से वह अक्सर उस माँ की कल्पना करती जो उसने वैसी नहीं पाई थी, जो उसके उस दरख़्त जैसे हरे होने और खिलने का हुनर जानती। उल्लुओं का वह जोड़ा ठीक समय पर वहाँ होता था और बात करने पर जवाब देता था, उनका टुकुर-टुकुर देखना उसे भाता था। उनमें से एक तो नीम की ओट में तार पर बैठा हुआ पूरे साठ डिग्री के कोण पर टेढ़ा होकर, तार पर चलता हुआ उसे ताकता था। दो या तीन मिनट की उनसे गुफ़्तगू लगभग रोज़ होती थी। उसे लगता था कि वे जिस उत्सुकता से वे उसे ताकते हैं उसके भीतर के अकेलेपन से शायद परिचित रहे होंगे। इस साथ ही इंसानी दुनिया से नहीं थी शुरू-शुरू में वह इंसानों से आस रखती थी। वह सोचती थी कि उसकी हर कश्मकश में आस-पास के लोग शामिल हों, लोग उसे उसी तरह समझें जैसे कि वह ख़ुद अपने लिए महसूस करती हो; परन्तु उम्र को टुकड़ा-टुकड़ा भोगने के बाद उसने जाना कि नहीं भोगना ख़ुद ही होता है, उस तकलीफ़ के कुहासे से अकेले गुज़रना होता है, जो जीवन के हर चौराहे पर पूरी गर्मजोशी से मिलती है। पर यह सब अकेले ही तो देखना होता है, पराई आँखों से चीज़ें उतनी साफ नहीं दिखाई देती। आस रखना और यह सोचना कि बचपन की सुनी परियों वाली कहानियों जैसा कुछ होता है, तो यह कोरी नादानी की ही बात है पर ऐसी नादानियों की सीख भी तो धीरे-धीरे ही मिला करती है। अब वह सीखने लगी थी कि सपनों का बंजर भयावह होता है, कि उन सभी बातों, घटनाओं, लोगों से अलग कैसे हुआ जाता है

जो सिर्फ़ और सिर्फ़ दु:ख ही देते हैं, जिन्हें आपके भावों से कोई सरोकार नहीं होता ...जिनके साथ रहते हुए भी आप नितांत अकेले छूट जाते हो।

पीठ पर पसीने की कुछ बूँदें रेंगी तो उसे उसके होने का एहसास हुआ। बैंच पर बैठे-बैठे ही एकाएक उसे अपने बरामदे में रखे बुलबुल के अंडे याद हो आए...बुलबुल नहीं लौटी थी न कल शाम से...यह चिंता भी चिंता के गुंजलक में फँसी एक चिंता थी। चिंताओं के इसी अनमने

डॉ. विमलेश शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान 305001
मोबाइल– 9414777259
ईमेल– vimlesh27@gmail.com

झुटपुटे और ऊभ-चूभ होती मन:स्थिति में ही वह उस अनजान रहबर को देखने के लिए निकल आई थी। पर क्यों वह तो अनजान था। कोविड के इस समय मॉस्क के पीछे छिपे चेहरों में से एक चेहरा उसके भीगे उच्छ्वासों ने उसे सतर्क किया और अचानक घिर आई डूब से वो फिर बाहर निकली। यह बैंच कितना सहारा देती है यों किसी उलझे मन को...उससे पहले जाने कितने मन यहाँ बैठ तरतीब पाएँ होंगे और कितने बाद में पाएँगे नहीं मालूम पर एक कृतज्ञता उमड़ पड़ी उसके भीतर; यों भी यह शब्द अभी चलन में था। वह घर से बाहर थी पर क्या वह वाक़ई बाहर आ पाई थी। दरअसल वह एक दृश्य में क़ैद थी जिससे बाहर आने की कोशिश वह लगभग रोज़ करती है। किसी दृश्य में ख़ुद को रोपना आसान होता है पर बाहर निकालना लगभग जबरन खींचे जाने जैसा होता है ये शब्द उभरे थे।

और मन को वे आँखें याद हो आई थीं जिनसे उसे छूटना है, जिनकी ओर जाने वह क्यों आकर्षित हो गई थी। वह कौन था, क्या रिश्ता था नहीं मालूम पर कोई तो था पर क्या वह भी उसी तरह छल सौंप कर जाएगा या उसे उसी तरह समझेगा...ऐसे जाने कितने प्रश्न उसके सामने उसी का भेष धरे आ खड़े हुए थे। वह अपनी ही छवियों के बीच घिरी हुई शेष रह गई थी और भय का स्याह उसे लीलने लगा था।

कॉलेज का वह पहला दिन ...यों पहला दिन नहीं पर रिसर्च करते हुए उस बड़े कॉलेज में नज़रें नीची करते हुए और अपनी धड़कनों को सँभालते हुए जाना एक बड़ी बात थी, सो सब कुछ वैसा ही था जैसे स्कूल का या कॉलेज का पहला दिन। प्रोफ़ेसर्स और आदमी से दिखते उन बड़े लड़कों के बीच वह ख़ुद को आज भी प्रथम वर्ष की छात्रा ही समझ रही थी। वह उस वक़्त उस भयभीत पंछी-सी थी जो ज़रा सी आहट पर चौंक कर उड़ जाता है। पंछी जो अपने अण्डों को सेह रहा होता है पर औचक आहट से उन्हें छोड़ कर एकाएक उड़ जाता है। कैसी रहती होगी उसके मन की दशा उस वक्त एक ओर बचने का भय दूसरी और छूट जाने का भय; पर वह उड़ना चुनता है क्योंकि बचेगा तो ही तो बचा भी पाएगा।

हर कस्बाई लड़की के मन-आँगन में ऐसे भय अब भी पला करते हैं। कॉलेज के उस बड़े से प्रांगण में बस आसमाँ ही अपना-सा लग रहा था और वह भी जाने कितने भेष बदल रहा था। पल में वहाँ चटख धूप थी तो पल में बादलों का रैला; कभी वह किसी तथागत का चोगा पहन सुरंगी हो जाता तो कभी स्याह आँचल ओढ़ कनुप्रिया का वीतरागी कृष्ण। पल-पल बदलते रंग यों पहले तो इन महीनों में नहीं दिखाई दिए थे, हाँ बचपन के आँगन में टहलते हुए ये दृश्य उसे ज़रूर दीख पड़ते। ऋतुएँ भी मन की तरह होती हैं कभी बारिशगर तो कभी धूपित। वह अब जब इस तरह बाहर निकलती तो इन सब के बीच घर पीछे छूट जाता था और वह कुछ हल्की हो जाती पर ज़माने का भार उस पर जस-का-तस कायम रहता। यह भार भी उसे आख़िर घर से ही भेंट मिला था।

कलसी जब कुइयाँ में गिरती है न तो डूब को देख आशंकित हो जाती है, ऊभ-चूभ हो वह डूप-डूप का शोर करती है जैसे कि कोई तैराकी सीखने के लिए पानी में उतरा हो और साँस की कमी और डूब के भय से गाफ़िल हो... फिर धीरे-धीरे उसमें जल भरने लगता है। ठीक वैसे ही दिन और माह बीतते-बीतते अब तक सब अजीब होते हुए भी धीरे-धीरे कुछ सामान्य होने लगा था। उसके कुछ दोस्त बन गए थे, जिनसे वह अपने शोध विषय पर बात कर सकती थी, क्या ज़रूरी क्या ग़ैर ज़रूरी उसकी समझ में अब दर्ज़ होता जा रहा था। कॉलेज में शोध-छात्रों को नियमित आने-जाने की बाध्यता नहीं थी, यह भी शोध-छात्रों के उस समूह से उसे विदित हो गया था। अब इस भीड़ का सामना करने वाले आवेग से उसे तभी गुज़रना होता जब वह दिन सामने आता जिसे कॉलेज के लिए सभी मिलकर तय करते थे; परन्तु अब वह आवेग कुछ थम गया था क्योंकि ज्वार की तीव्रता के साथ-साथ एक राहत का उतार भी वहाँ शामिल हो गया था। जीवन की प्रमेय बहुत जटिल होती है। शांत से दिखने वाले जीवन के भी कितने घटनाक्रम होते हैं और इसी नियम का अनुसरण करती हुई उसके जीवन में भी घटनाएँ मोड़ लेने लगीं।

अचानक एक दिन कॉलेज में लोग अलग-अलग धड़ों में बँटे दिखाई देने लगे जैसे कि पक्ष-विपक्ष। एक तनाव और बेचैनी हर ओर व्याप्त हो गई और कॉलेज का वह शज़र जो हरा था गिरगिटिया-सा नज़र आने लगा। सुनने में आया कि वर्तमान प्राचार्या को एपीओ कर दिया गया है और नए प्राचार्य इस कॉलेज में आ रहे हैं। कॉलेज में लोगों और डिपार्टमेंट के उन प्रोफ़ेसर्स के मुँह पर आज किसी रेसिपी की चर्चा नहीं थी, न ही वे टाइम-टेबल या साड़ियों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे थे वरन् एक ख़ौफ़, एक भय और एक राह खोजने की जद्दोजहद थी कि कैसे सत्तारूढ़ दल के नुमाइंदों के करीब नज़र आया जाए। सत्ता का भय उसके मन के भय के रंग जैसा ही था जिसकी गिरफ़्त में आज पूरा महाविद्यालय आ चुका था।

पिता के साथ न होने का भय, गली से निकलने का भय, बस में बैठने का भय, ज़बरदस्ती की छुअन से बचने का भय, अधखुले कपड़ों में से झाँकते पौरुष का भय और अब यह सत्ता का भय... पर एकाएक उसने सोचा कि उसे सत्ता का भय भला क्यों हो, वह अभी नौकरी में थोड़ी आई है, उसकी नौकरी तो याचिकाओं की भेंट चढ़ी है और कोर्ट की हाज़रियों और बहसों से भी उसका सीधा वास्ता नहीं; पर उसकी यह दलील झूठी साबित हुई जब वह अगले दिन प्राचार्य के कमरे में दाखिल हुई। उस दृष्टि ने जिस तरह उसे ऊपर से नीचे निहारा था भय के जाने कितने अँधेरे कुँए उसके भीतर दाखिल हो गए थे। टेबल पर उपस्थिति-पंजिका नदारद थी। उसने कुछ पंजिकाओं को ऊपर-नीचे करके टटोला पर वह कहीं नहीं थी। वह उसे ऐसे खोज रही थी जैसे दीदी की रखी कोई चीज़ हो जो उसे हर वक्त ठीक उसी जगह मिलती हो पर नहीं वह पंजिका तो इरादतन हटा ली गई थी और इस बात को पुख्ता करता पीठ पर दनदनाता वह स्वर था कि-"रजिस्टर यहाँ नहीं

है...तुम तीन बजे आना और ग्यारह बजे हैं अभी यह कौन सा आने का समय है, आज से तुम सभी को चार बजे तक रुकना होगा। तुम लोग सिर्फ़ स्कॉलरशिप पर मौज उड़ाना जानते हो।"

उसने पीठ सीधी किए बग़ैर ही यह बातें सुनी और ठीक वैसे ही उन्हें कानों के रास्ते भीतर ले उस कक्ष से बाहर निकल आई। यों वह बाहर तो निकल आई थी पर कक्ष अब भी उसके भीतर था। आज उस कक्ष में रखे फूल महक नहीं रहे थे, बड़ी सी दीवार-घड़ी हुलस नहीं रहती थी इसके विपरीत वह अधिक बेदार हुई-सी जान पड़ती थी। उस कक्ष की बड़ी-सी टेबल पर रखे चाय के जार और समोसे अपना भौंडा परिचय आप दे रहे थे और चार पुरुषों के बीच एक दंभी की आवाज़ उसे सिर से पैर निहारती हुई उसका परिचय पूछ रही थी और कह रही थी कि अच्छा तो तुम हो चित्रा ...चित्रा भटनागर।

उस कक्ष की एसी की हवा अभी भी उसके माथे पर थी और ताकती पाँच जोड़ी निगाहें अब भी उससे उसका परिचय सुनने को बेताब-सी जान पड़ती थीं...संगीता, सहायक कर्मचारी की वह नीची, झुकी नज़र अब भी उसके साथ थी जो किसी निरीह खरगोश को हिंसक पशु से बचा लेना चाहती हो... इस तरह वे क़हक़हे और अपरिचित आवाज़ें जिनसे वह अभी-अभी मुखातिब हुई थी, देर तक उसके साथ बने रहे। वह जैसे ही सिर ऊँचा कर आसमाँ को ताकती तो वे कहीं छिप जाते पर अपने चुप में लौटते ही वे फिर हावी हो जाते। तीन बजे तक वे आवाज़ें और वह कमरा उसे जकड़े रहा और तीन बजे वह स्वयं उसी में दाखिल हो गई। उस कमरे में सब चीज़ें यथावत् थीं पर वे नज़रें नहीं थीं...अब टेबल पर वह पंजिका रखी थी, उसने दस्तख़त किए और वहाँ से यों निकली मानों कह रही हो कि मुझे चार बजे तक नहीं रुकना।

आज यह चलना इतना भारी क्यों लग रहा था उसे...जैसे सदियों नंगे पैरों चल कर आई हो और अब जो वह एक क़दम और चली तो निढाल होकर धरा पर लोट जाएगी। वह जाने कितने देर तक बैठी रही कॉलेज के बाहर के बरगद की छाँव में कि वे आवाज़ें उसे सुनाई देना बंद हो जाएँ, पर वे उन भीतर उग आए कुँओं में धँस गई जहाँ उन्हीं की सहोदरा और आवाज़ें थी, जो गाहे-ब-गाहे उसे अपने पाश में कस लेती थीं। आज माँ बेतहाशा याद आ रही थीं...पर माँ...माँ अब माँ कहाँ है।

स्मृति के दरवाज़े पर ठिठका एक घर है। कुछ चुप-सा, कुछ ख़ुश-सा, ख़ुश इसलिए कि बाहर जो रंग उस पर डले हैं वे मुखर हैं, बड़े-बड़े अशोक के पेड़ हैं और एक सुन्दर बगिया...जिसमें एक सुन्दर-सा झूला लगा है। वहाँ गुलमोहर भी है, तो अमलतास भी और उसका प्रिय कचनार भी। गुलमोहर अधिक वसन्त नहीं रहा, उस आँगन में उसकी जड़ें फैल कर आँगन उखाड़ने लगी थीं, तो राधा के रुँआसे मन के बावजूद उसे कटवा दिया था। उसके तने और कुछ बची-शाखाओं पर अब पक्षियों के अनाज के लिए रखे जाने वाले कुण्डे और बोतल आ गई थीं। गर्मियों में जब गुलमोहर फूटता तो उसका चटख रंग आँखों में घुल जाता और वह उस रंग को आँखों में देख चुनड़ी को याद करती। राजस्थानी चुनड़ी के प्रिय होने की एक वज़ह यह गुलमोहर भी रहा पर वह ही अब वहाँ नहीं रहा था। यह सुना था कि उस बगीचे में राधा ने स्वयं तगारियाँ उठाकर काली मिट्टी डाली थी और देखने वालों ने उसे एक अच्छी बहू का तमगा दे दिया था। उस बहू को जो सर्वगुण सम्पन्न होने के बावजूद बेचारी है, दो बेटियाँ होने के कारण।

राधा ने अपनी बच्चियों को पूरे मन से पाला और उन्हें पढ़ाने के साथ-ही-साथ ख़ुद भी पढ़ती रहीं। उसे पता था पढ़ना और नौकरी मिलना मुश्किल है पर उसने अपनी कश्ती को सँभाला क्योंकि अब उसे अपनी बच्चियों के लिए जीना था। पैसे वाले पर सनकी पति के साथ जीना मुश्किल था और ताड़नाएँ सह-सहकर वह अधमरी हो गई थी। जाने कैसे बरस पर बरस बीतते रहे और राधा हर तरह से प्रताड़ित होती रही।

अब उसका अफीमची पति उसकी छोटी बेटी को उसके साथ नहीं सोने देता और वह सारी रात उस चार साल की बच्ची के लिए तड़पती रहती जिसे उसके आँचल की गोली बनाते-बनाते सोने की आदत थी। रात जब गहरा जाती और तमाम बिजलियाँ उस पर कड़क चुकीं होती वह उस डर के पास जाती जिसमें डूबी वह बच्ची अपने ही पेट में सिर छिपाए सोती रहती। इस प्रकार उसकी रात एक लंबे जाग में बीतती, पहले वह स्वयं को एक हैवान को सुपुर्द करती जो उससे पैर दबवाता, अज़ीब-अज़ीब फ़रमाइश करता और फिर देह नोचता। उस कमरे की सिसकियाँ किसी को सुनाई नहीं देती पर जब वह देर रात अपनी छुटकी के पास आती तो उस पर जमकर बरस जाती। छुटकी अपने आँचल को पा निश्चिंत हो जाती और कुछ घंटों के लिए डर नाग पहाड़ी के पीछे छिप जाता। उसे उस समय माँ शेरनी-सी लगती जो उसे उस डर से बचा लेती। वह बच्ची जानती थी कि रात का स्याह क्या होता है, वह जानती थी कि जब रात को माँ को शहर के बाहर अकेले चौराहे पर छोड़ दिया गया था, पिता के भीतर जो पुरुष था उसे उससे तभी से नफ़रत हो गई थी। रेलगाड़ी की वे आवाज़ें तब से उसके साथ है। राधा जानती है उस छोटी बच्ची को ऑटिज्म नहीं है उसके भीतर एक भय बैठा है जिसकी ज़िम्मेदार वह स्वयं रही है। उसकी चिंता बड़ी बेटी दीप्ति समझती थी और वह बस माँ का टेक लिए रहती, वह माँ की हर वह मदद करती जो उसके नन्हें हाथ कर सकते थे।

राधा सुन्दर और ज़हीन थी। एक करीबी सुन्दरता थी उसमें जो उसके करीब जाता उससे प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रहता पर सौन्दर्य भी दुश्मन हुआ करता है। उसके तैयार होने पर सिगरेट से गोद दिया जाता और उसकी पीड़ा उस छोटी बेटी में उतरती और उतने गहरे उतरती कि पार्लर में भी स्ट्रिप खींचे जाने पर वह माँ के गालों पर थपकी देती और सिहर उठती। दूसरे को दिलासा देना ख़ुद को हौसला देना भी होता है। यह ठीक वैसा ही होता है जैसे तपती जेठ की दुपहरी पर शाम की एक श्यामल नम चादर आकर ठहर गई हो। सुबह होती और राधा स्कूल निकल जाती।

राधा को सरकारी नौकरी मिल गई थी जिसका ख़ूब मज़ाक उड़ाया गया था। पर राधा ज़ल्दी उठकर सब काम करती और अपनी राजकुमारियों को तैयार कर वह उस घर से ऐसे निकलती जैसे कि वह घर उसका कभी रहा ही न हो, पर लौटना उसकी नियति थी और उसे छह घंटों बाद लौटना ही होता।

इस तरह आठ वर्ष कैसे कटे या काटे गए नहीं पता पर फिर एक दिन राधा अपनी बच्चियों के साथ निकल पड़ी और तबसे वह अपनी बेटियों के लिए दो जून की रोटी की जुगत में दिन-रात खटती रहती है। अब राधा पहले जैसी नहीं रही, उसका उछाह अब इन्द्रधनु-सा नहीं खिलता। कम हँसती है, कम खाती है पर आँख में अपनी बेटियों के लिए एक हरा-भरा सपना पालती है...वह सपना उसकी पथराई आँखों में हर कोई देख सकता था। वह राधा उसकी माँ है। चित्रा आज माँ को देर तक निहारती रही। वह साड़ियों के ऑर्डर निबटा रही थी, पर चित्रा उसके उन बीस सालों को खोज रही थी जिसे उसने रेगिस्तान की तपन में गुज़ारे हैं और उस तपन को महसूस करते हुए वह अपने भय की कंदराओं में उजास देख रही थी। वह चकित थी कि माँ ने यह सब कैसे सँभाला होगा। उसे एक बाबा याद आते हैं जो मिनी की काबुली वाले जैसे थे। पर वे झक्क सफेद दाढ़ी वाले जिनकी उम्र 70 के आस-पास रही होगी अब कई सालों से नहीं दिखे। उनके पास अपना बोलता हुआ हुनर था, जिससे वे सुन्दर-सुन्दर साड़ियाँ बनाते थे। बाबा से ही माँ ने डिज़ाइनर साड़ी बुनना सीखा। जैसे मौसम फिरता है न वैसी ही स्मृतियाँ भी फिर जाती हैं। कभी माँ थोड़ी टूटती हैं ना तो बाबा को याद करती हुई कहने लगती हैं कि, "वे धुन के पक्के थे, दो दिन में एक साड़ी बुन लेते थे। तसर, भागलपुरी सिल्क, ताँत सभी प्रकार की साड़ियाँ जो वे बुनते थे अलग ही होती थीं। ताँत की सफेद साड़ियों की भी बहुत माँग आती थी और वे एक दिन में पाँच से छह बना लेते थे। मशीन आने के बाद काम और आसान हो गया। भागलपुरी सूती साड़ी में वे इतने प्रयोग करते कि नौकरीपेशा युवतियाँ देखती रह जातीं। तुम दोनों के लिए मैंने उनके हाथ की बुनी सुंदर-सुंदर साड़ियाँ सहेजकर रखी हैं।" दीदी ने और मैंने माँ से ही साड़ी करीने से पहनने का सलीक़ा सीखा। उसके साथ कैसा ब्लाउज होगा यह माँ ही तय करती थी। माँ का चयन वाकई रंगधनु-सा होता, यही कारण है कि उनका बुटीक चल निकला। माँ और ज़ाकिर मियाँ अब यह काम मिलकर करते हैं। माँ के भीतर वह कौनसा सैलाब है जिसे दबाकर रखने पर भी वह इतनी ही थिर हैं। नियति के इन क्रूर क़दमों ने माँ की सहजता छीन ली थी, उन पर एक असुरक्षा भाव सदा तारी रहता। वे पल में रुआँसी हो जाती और पल में पत्थर। माँ अब माँ नहीं थी। वह जूझते-जूझते बुत बन गई थीं। शाम को खाने के वक्त तीनों एक साथ होतीं-दीदी, चित्रा और माँ...

दीदी ने माँ को बताया था नए प्राचार्य के बारे में और माँ ने एक ही वाक्य कहा था-

"छोरी लड़नो सीख, ख़ुद री बात केवणो सीख, तू सही है और थारी आँख्या में आग है तो कोई थने छूवण की हिम्मत भी न कर सके है।'

उनका यह वाक्य भय की ही तरह उसके साथ रहता है...मायड़ भाषा की यह स्मृति उसे माँ की गोद में ले जाती। यह बात सुनते हुए आज माँ के आँचल की वो बुँदियाँ याद आ रहीं थी, जिनसे खेलते-खेलते वह सो जाया करती थी। उसके भीतर का शोर अब चुप था। वह उसे दुबके देख शांत थी। वह जानती थी कि उसके भय उसके इतने क़रीब क्यों हैं। माँ जिन परिस्थितियों में रोज़ लड़ रही थी, वह उसने क़रीब से देखे थे, वे ही धीरे-धीरे उसके भीतर परत-दर-परत जमा होते गए थे। बात माँ के तल्लीन होकर साड़ी बुनने जैसी सीधी नहीं थी पर बात तो थी। बात रात गहराते उसके भीतर उठती आवाज़ों की थीं। बात घर लौटने में देरी हो जाने पर उसके हाव-भाव में आ जाने वाले बदलाव की थी। बात किसी भी पुरुष के उसकी ओर देखने पर थी। बात थी कि क्यों मोटरसाइकिल उसे देखकर अक्सर फिर एक चक्कर लगा देती है। बात पर बातें थी और ख़ूब थीं और ये बातें उसके व्यक्तित्व को दिन-ब-दिन लील रही थीं। पर ये बातें वह माँ से नहीं साझा कर सकती थी। दीदी से भी नहीं क्योंकि दीदी माँ को सब कुछ बता देती थी और यही वह नहीं कर पाती थी। माँ की आँखों में यों ही बहुत कँटीली झाड़ियाँ थीं वह नहीं चाहती थी कि कुछ और अब उनमें उलझे। माँ की पकी उम्र और चुप्पा चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम गया। जिस पर खिंची लकीरें उस कहानी की याद दिलाती थी जिसमें कहा गया था कि नींद में उम्र का घोड़ा हम पर से गुज़रता है, तो अपने निशान छोड़ जाता है। ये लकीरें वहीं पद-चिह्न होते हैं। या वह सोचने लगी कि ये वसंत का घूमर और पतझड़ की फेरियाँ होती हैं जिन के गुज़रने पर ये जमी हुई तरंगें चेहरे पर दिखाई देती है। यह सोचते हुए उसके कानों में एकाएक वासंती हवाएँ चलने लगीं और दूसरी ओर पतझड़ के अनमने पत्ते खड़कने लगे।

दीदी का आईएएस में चयन हो गया था और वह प्रशिक्षण के लिए मसूरी चली गई। वह इतनी मसरूफ़ हुई कि भूल गई कि पीछे माँ हैं और उसकी छोटी बहन भी। निन्नी सदा से ही ऐसी रही। ज़हनी तौर पर परिपक्व, कच्ची उम्र में अडिग रहने वाली। चित्रा में जितना आत्मविश्वास का लोप था, निन्नी उतनी ही आत्मविश्वास से लबरेज़। उसका बस एक ख़्वाब था कि अपने पैरों पर खड़े होना। निन्नी से कभी एक बहनापा नहीं मिला पर वह उसका ख़याल रखती थी। उसे सही-ग़लत उसी तरह बताती थी जैसे कोई सच्ची सहेली बात करती है।

लंबे क़द, गौर वर्ण और सुनहरे कुंतलों वाली निन्नी पर गली के लड़के भी अपनी नज़र रखते थे, पर वह सबको जूते की नोंक पर रखती। पर वे नज़रें चित्रा दूनी तीव्रता से अपने इर्द-गिर्द महसूस करती...ठीक वैसे जैसे जेठ की धूप नंगी पीठ पर पड़ रही हो। वह भीतर-ही-भीतर चिहुँक उठती। उसके मन का स्याह फिर उठता और गिर जाता और वह हाँफ उठती। दीदी की मसरूफ़ियत के पीछे एक प्रेम था पर वह प्रेम कैसा था यह नहीं समझ आ रहा था। वे मसूरी जाने के बाद बदल सी गईं थीं। उनसे सच और प्रेम बाँटने के अवसर अब नहीं मिल पाते थे। उनसे बात

करते ही मन अबूझ भावों से भर जाता। कभी बात करते हुए लगता कि वह उनके मन के सम्पूर्ण ताने-बाने से परिचित है, कभी लगता कि नहीं वह सिमट कर बंद हो रही हैं। वह इस द्वंद्व से रोज़ गुज़रती। औऱ एक दिन जब सुबह से पानी बरस रहा था, उसके पास एक फ़ोन आया जिसने उस बारिश की आवाज़ को चुप कर दिया। अब उस फ़ोन का अक्षर-अक्षर उसके मन पर बरस रहा था। उसकी साँसें हल्की भी थीं और भारी भी। व्हाट्सएप खोला तो वहाँ भेजी गई पीडीएफ फाइल एक अख़बार की थी, जिसमें उसी प्रेम की बिखरन की तसवीर थी।

माँ को वह रुआँसी हो इतना ही कह पाई थी कि- "माँ दीदी को मर्डर हो गयो, मसूरी चालनो पडसी।" पूरे रास्ते बरसात थी जैसे कि वह उनके हिस्से का रोना रो रही थी। माँ चुप थीं उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा था। वह माँ के चेहरे को देख रही थी पर उनका भेद नहीं पा रही थी। माँ और वह तलब हुए थे वहाँ, जाने कितनी तरह के सवाल-जवाब, किस-किस तरह से सवाल-जवाब। हमें बताया गया कि एक बड़ी सी गाड़ी में दो लाशें खून सनी मिली थीं और पुरुष अधिकारी ने अपने प्रेम पर गोली तानकर स्वयं को भी मार लिया था। माँ वहीं अस्पताल में बेहोश हो गई थीं। दीदी का पोस्टमार्टम हुआ ही नहीं था कि माँ को अटैक आ गया था। सालों से बुत बनी माँ के भीतर भीतर कुछ धड़क रहा था उसे एकाएक अहसास हुआ। और यों उसका जीवन जो रुका-रुका सा ही था भले, पर था, वह समाप्त हो गया।

वह फिर अपने डर के साथ अकेली रह गई और अनेक प्रश्नचिह्न, अनेक भय उसके जीवन में शामिल हो गए।

शहर छूटे बरसों हुए, अब वह एक कॉलेज में पढ़ाती थी पर उस डर को जो उसे जब चाहे अपने आग़ोश में ले लेता उसके साथ जीती थी। ध्यान करती, योग करती पर वह उसे हर आँख के रास्ते भीतर उतरता दिखता। माँ फिर दीदी सबके जीवन के पीछे एक पुरुष था...और थी उसकी कुछ वे क्रूर बातें जो जीवन को जीने लायक नहीं रहने दे रही थी। उसकी आँखों में पापा, वह प्राचार्य, कॉलेज के घूरते प्रोफ़ेसर्स, नुक्कड़ के वे आवारा लड़के सब एक साथ आकर खड़े हो जाते। उसने जैसे-तैसे आँखें मूँदीं और बारिश की टुपुर-टुपुर के साथ सोने की कोशिश की थी। पर आँखें मूँदते ही उसके भीतर फिर दो आँखें उभर आईं। अब वे उसके भीतर थीं जैसे वहीं की जमान तलाश रहीं थी और अनुकूल ऋतु देख उग आई थीं।

उसे एक ख़लिश-सी महसूस हुई और उसने अपना मोबाइल खँगाला। मोबाइल पर उसने एक गाड़ी नंबर सहेजा हुआ था। गाड़ी नंबर से डिटेल्स मिल जाती है उसे पता था। उसने उठकर लैपटॉप खोला और नंबर गूगल किया। कुछ ही देर में परिवहन विभाग की सूचनाएँ ऑनलाइन थीं और नाम सामने था। पर गाड़ी तो किसी के भी नाम हो सकती है मसलन पिता या भाई के नाम ...या कि परिवार के किसी भी सदस्य के नाम, सो उसने वह नाम गूगल किया...और फिर स्क्रीन पर कुछ तसवीरें तैर आईं, जो उसे सही सिद्ध कर रही थीं। यह सब करते हुए भय के वे काले बादल ठिठक कर उसे टुकुर-टुकुर देख रहे थे। उसे एक नंबर भी मिला...जिस पर उसने उस अनजान रहबर के नाम एक संदेश छोड़ दिया। रात के बारह बजे थे औऱ इस तरह संदेश छोड़ना ग़लत हो सकता था, पर कुछ था जो निर्देशित कर रहा था।

जीवन में लोग तरंगों के समस्तर से आते-जाते हैं। जीवन कहाँ फैलता है कहाँ सिकुड़ता है, यह कोई नहीं जान पाता। जाने कब कोई किसी चूनर पर मन्नत बाँध कर चला जाता है और कोई बैठे-बैठे ही सब कुछ छीन लेता है। यह सोचते-सोचते वह उस अजनबी रहनुमा के ख़यालों की गिरफ़्त में थी। वह उसे रहनुमा क्यों कह रही थी, उसके पीछे उसे इस तरह कई महीनों से देखना था। वह लगभग डेढ़ साल से उसके प्रकृति प्रेम और पशु प्रेम को देख रही थी। पर अभी जाने क्यों जैसे उसे फिर-फिर देखा उस तरह से जैसे कि वह यह सब करता हुआ आत्मा के अक्षर पढ़ता है, उसके भीतर के शोर को सुनता है और मॉस्क के पीछे से ही एक मुस्कराहट फेंकता है जो क्रिया की प्रतिक्रिया की तरह उसकी आँखों में तैर जाती है। यह सब सोचते हुए उसे याद आया जाने वह कौन है, कैसा है, परिवार के साथ है या कि है ही नहीं जैसा वह सोचती है...उसका भय फिर झूम कर फन उठाए खड़ा था। उसने मोबाइल उठाया और बंद कर दिया कि कोई उसे फिलहाल वापस फ़ोन न कर सके। अपने ही को सँभालती वह लेट गई। उसका वह भय जो उसके मन में नाना आशंकाएँ जगा रहा था उसके सामने की कुर्सी पर बैठा था। उसकी आँखों में भीतर की आँखें घुलती गई और कुर्सी पर बैठा वह स्याह भी डूब गया। बरसती बूँदों और ठण्डी हवा ने जैसे माँ की लोरी का काम किया था।

सपने में वह उन आँखों वाले चेहरे से मिली जिसने उसे उसके गालों पर एक बोसा दिया, उसके भीतर की सिरहनों को अपने आगोश से रफू किया और उसकी हँसी खिड़की पर उस बैंजनी चिड़िया की आवाज़ में बदल गई, जो सुबह-सुबह कनेर पर चहकती हुई बिस्तर के पास वाली खिड़की से अपनी ओर भोर की उपस्थिति दे देती थी। एकाएक लेटे-लेटे ही उसे मुर्गे की बाँग से सुबहों का ध्यान आया ...वैसी सुबहें अब बस गाँवों में ही होती हैं। उसने भी नानी के गाँव में ही वह सब सुना था। नानी का गाँव उसकी स्मृतियों में अब भी हरा था। चरी का बोझ अब भी वह माथे पर महसूस करती है, इतना ही नहीं ध्यान करते हुए जब सबसे प्यारे पल की स्मृति को याद करने को वह एप्प कहता है तब भी वह मोरों के बीच उन खेतों में पहुँच जाती है जहाँ कुछ दूरी पर एक कच्चा मकान था, नीम और पीपल के घने पेड़ और उन पर टँगा लकड़ी के बड़े से पट्टे का वह झूला था। आँख खुलते ही वह कहाँ पहुँच गई थी। सामने की कुर्सी खाली पड़ी थी और मन कुछ शांत था। उसने फ़ोन उठाया तो वह रात की उस उधेड़बुन में पहुँच गई। फ़ोन खोलते ही स्क्रीन पर दो संदेश थे-

12.15 पर

"माफ़ कीजिएगा साहब, मैंने पहचाना नहीं आपको।"

12.18 पर...

"नमस्ते! कैसी हैं आप? माफ़ कीजिएगा मैंने आपकी तसवीर आपकी डीपी में देखी। हम लगभग हर शाम एक-दूसरे के समीप से गुज़रते हैं। दरअसल मैं जानना चाहता हूँ कि यह शुक्रिया किस लिए?"

इन संदेशों ने उसे एक भार से मुक्त कर दिया था। किसी को अनजाने में इस तरह ढूँढ़ना और फिर रात के सुस्ताते पलों में संदेश भेजने का काम जो समाज की नीति-रेखा में विरुद्ध जान पड़ता है, उसने किया था।

बालकनी एक ताज़गी से भरी थी और भोर आज अधिक कोमल जान पड़ती थी मानों वह उसके हर जख़्म को भर देना चाह रही थी। वह मन ही मन बुदबुदाने लगी और मोबाइल पर नोट्सनुमा कुछ लिखने लगी-"नहाई हुई-सी सुबहें मन को कितनी तो भली लगती हैं सो वे जब देखने को मिलें, उन्हें जी भर निहारिए...यों मान सकते हैं कि इस समय मन और जीवन का व्यापार थमा-सा होता है मानों प्रकृति स्वयं कह रही हो कि ठहरो कुछ सोच-विचार करो। पंछी आकाश से धरती के बीच झूल रहे हैं; हाँ बिलकुल स्काई डाइविंग कर रहे हैं ठीक वैसे जैसे लोलक एक छोर से दूजे छोर पर डोलता है भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में। बारहवीं की वह प्रयोगशाला जाने क्यों रह-रहकर याद आ जाती है, जिस समय एक रीडिंग सही आ जाना सबसे बड़ा संघर्ष था। हालाँकि समाज की द्वितीयक छब के उपहार तब भी मिल रहे थे; पर सुबह-सुबह भली बात हो तो ही ठीक। सबसे ऊँची फुनगी पर बैठी चिड़िया क्या सोचती होगी ...नम और नरम सुबहें उसे भी भली ही लगती होंगी। मन से मन की बात करती होगी या कि दिन के ताप से लड़ने के लिए ओस की बूँदों को चुगने की बात मन में होगी या उस बात पर विचार कर रही होगी जो उसे किसी ने बीती रात कान में कहा था कि -

"कुछ रिश्ते हम जन्म से साथ लेकर आते हैं और कुछ यहाँ से साथ ले जाते हैं; मसला और बात बस इतनी-सी है।"

फाइल सेव करते ही वह अपने में उतर आई। रात ख़्वाब में मिला बोसा उसे फिर याद आ गया। दिन इसी ताज़गी में बीतने लगा और शाम घिरते-घिरते एक अज़ीब सा अनमनापन उस पर तारी होने लगा। उसे लगा कि वह आज उसका सामना कैसे करेगी। आँखों से आँखें मिलतीं थी पर एक फ़ासला था पर अब तो एक पहचान से फ़ासले की उस दीवार के कुछ हिस्से ढह चुके थे। अनेक आशंकाएँ थी उसके मन में कि, वह जाने कैसी मानसिकता रखता हो, जाने उसे पसंद करता हो न करता हो। वह भय के हाँ और ना को ठेंगा दिखाती हुई उसी समय गई जब वह आता था। पूरे तीस मिनट बीते पर वह वहाँ नहीं था। सड़क पर मॉस्क पहने रोज़ के साथी थे। वे दो अंकल जो उसे रोज़ जय श्री कृष्णा कहते, वह उल्लुओं का जोड़ा और वे पंछी जो तार पर बैठ उसे तकते रहते थे। दूध पकड़ाने वाली वह दो छोटी लड़कियाँ जो अपनी छोटी सी साइकिल पर एक साथ टँगी थीं, वे भी उसे हाथ हिलाकर हैलो दीदी कहती हुई निकल गईं पर दिल की धड़कनों को उनके बढ़ने-घटने का कारण नहीं ही मिला।

एक तरफ़ वह सोच रही थी कि ठीक ही हुआ...यह सब यों ही तो होना था। उसकी बेवक़ूफ़ी थी कि वह जाने क्या-क्या सोच लेती है। उसके भीतर का भय रेत के बवंडर के रूप में उसके पीछे-पीछे चलता जा रहा था। वह तेज़ चल रही थी और वह था कि पीछे चलता-चलता उसे धप्पा देने का प्रयास कर रहा था। घर आकर वह सोफे में धँस गई। हर काम करते हुए वह अपने को ही बरज रही थी। उस टू बीएचके फ्लैट में वह नितांत अकेली महसूस कर रही थी। लिखने-पढ़ने में अरुचि-सी लग रही थी और मन बस कल का इतंज़ार कर रहा था। फ़ैज़ के "सारे सुखन हमारे" पढ़ते हुए वह सोने लगी तो एक मैसेज स्क्रीन पर चमक रहा था-

"आज के लिए माफ़ कीजिएगा, क्या आप आईं थी वॉक पर। आप पढ़ाती हैं न? मैं कल आप से बात करता हूँ।"

और फिर संदेशों का जो सिलसिला शुरू हुआ वह सावन की झड़ी-सा था जिसमें भय का सारा स्याह घुल गया था और उस नन्हीं धूप कनी से एक इन्द्रधनु खिल गया था।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

एक अपने लिए

अंजना वर्मा

कृष्ण मोहन सदमे में था जब से उसने जाना था कि किरण के गर्भ में बेटी पल रही है। इस बार भी बेटी ही जन्म लेगी- तीसरी बेटी ! किरण की अल्ट्रासोनोग्राफ़ी के बाद वह बेटा होने का कोई भ्रम नहीं पाल सकता था। पर इच्छा तो इच्छा ही होती है। एक छोटी-सी इच्छा का भी गला घोंटना आसान नहीं होता है। इसीलिए एक बार उसने किरण को कहा था, "ना हो तो यह बच्चा गिरवा दो। हो सकता है इसके बाद बेटा हो। हम बेटे की उम्मीद क्यों छोड़ दें?"

इस बात पर किरण भड़क गई थी और साफ-साफ बोली थी, "नहीं -नहीं... मैं पेट में पल रहे एक मासूम की हत्या नहीं करवा सकती। अब जो होना है- हो। अगर हमारी क़िस्मत में बेटा नहीं लिखा है, तो नहीं होगा। हमें यह समझ लेना चाहिए।"

कितना पछताते हुए वह किरण को नर्सिंग होम लेकर आया था- यह तो वही जानता था! लगता था कि कोई शक्ति घर लौटने के लिए पीछे से खींच रही है। क्या करेगा अस्पताल जाकर? जब फिर एक बेटी ही मिलनी है उसे ? दो-दो बेटियाँ पहले से ही हैं।

अस्पताल में प्रसूति गृह के सामने बेंच पर इंतज़ार कर रहे कृष्ण मोहन को नर्स ने बाहर आकर बताया, "लड़की हुई है।" कृष्ण मोहन ने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। लेकिन यह सुनकर उसके चेहरे पर एक काली छाया उतर आई। चाहकर भी नहीं पूछ सका कि बच्ची की माँ कैसी है ?

नर्स से बेटी होने की ख़बर सुनकर कृष्ण मोहन वहीं बेंच पर बैठा हुआ जैसे पत्थर बन गया था। अब उसकी तबीयत वहाँ से उठने की भी नहीं हो रही थी। लगा कि अब कैसे उठे ? उठे भी तो कहाँ जाए? उसी घर में, जहाँ दिन-रात बच्चियाँ डोलती हुई दिखाई देती हैं ? एकाएक जीने की सारी ताक़त ख़त्म होती महसूस हुई। बेटे का पिता बनने का उसका सपना अब इस जन्म में पूरा होने वाला नहीं था। उसकी यह चाहत आज पूरी तरह कुचली जा चुकी थी। उसने अपने मन को तसल्ली दी- जैसी ऊपर वाले की मर्ज़ी! ऐसा लिखा है तो यही सही ! उसके निर्णय के आगे किसकी चलती है ?

कृष्ण मोहन और किरण नर्सिंग होम से उस निर्दोष नवजात को लेकर लौटे तो बिल्कुल चुप्पी साधे, दबे-दबे पैरों से घर में घुसे। उसके बाद घर में सबके रहते हुए भी मातमी सन्नाटा व्याप्त हो गया, जैसे वे नवजात को लेकर नहीं, बल्कि खोकर आए हों। घर में इस चुप्पी को तोड़ती थी तो उस शिशु बेटी की रुलाई ही, जैसे वह रो-रोकर अपने माता-पिता को, जिनके दिल में उसके लिए बूँद-भर भी स्नेह नहीं था, समझाना चाहती थी। वह रोकर ही उनके सदमे की अटूट ख़ामोशी को तोड़ देना चाहती थी।

इस तीसरी बेटी का गर्भ गिराने से किरण ने मना तो ज़रूर कर दिया था, लेकिन उसे जन्म देना एक बहुत बड़ा प्रहार झेलने जैसा था, जिसे बर्दाश्त करना पड़ा उसे। अब तीसरी बेटी को जन्म देने के बाद बस माँ होने का फ़र्ज़ निभा रही थी वह ! दोनों बेटियाँ भी सहमी-सहमी रहने लगी थीं, जैसे इसमें इनका भी कुछ दोष था। दोनों इतना तो सोच ही रही थीं कि इस बिचारी की क्या ग़लती है ? अब शायद ही इसका कोई जन्म-समारोह मनाया जाएगा। इसे भी हमारी तरह ही उपेक्षा मिलेगी। दोनों कभी-कभी उस मासूम के पास जाकर बैठतीं और उसे देर तक निहारतीं।

अंजना वर्मा
ई-102, रोहन इच्छा अपार्टमेंट,
भोगनहल्ली, विद्या मंदिर स्कूल के पास,
बेंगलुरु - 560102
मोबाइल– 8210777500
ईमेल– anjanaverma03@gmail.com

आपस में अर्थ-भरी नज़रों से एक-दूसरे को देखतीं। इतना सुंदर रूप-रंग, पर कोई पूछ नहीं रहा है। रोती रहे... चीखती रहे! इसी तरह की बातें होतीं-

"सुंदर है ना?"

दूसरी सिर हिलाकर हामी भरती-"हाँ, पर उससे क्या? मम्मी-पापा ख़ुश नहीं है इससे।"

"बिचारी.. कैसे टुकुर-टुकुर देख रही है!"

कृष्ण मोहन और किरण के कई महीने मायूसी में बीत गए। एक दिन बड़ी वाली बेटी पायल को याद आया कि उसका जन्मदिन आने वाला है। उत्साहित होकर माँ के पास दौड़ी हुई गई और बोली, "मम्मी... मम्मी ! अगले हफ्ते मेरा जन्मदिन है। एक सुंदर-सी फ्रॉक ख़रीद दोगी ना?"

किरण ने बासी मुँह बनाकर उसकी ओर देखा और कहा, " अब किस-किसकी फ्रॉक ख़रीदूँ ? अभी तो इस छोटी वाली के लिए ही ढेर-सारी चीज़ें ख़रीदनी हैं, जो अब तक ख़रीदी नहीं गईं।"

पायल एक पल के लिए माँ को देखती रही, फिर मुँह बनाकर चली गई।

कृष्ण मोहन के चेहरे पर उदासी की छाया देखकर मुहल्ले वाले पूछते, "इधर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं लग रहा है। आपकी तबीयत ठीक रहती है न?"

इस पर कृष्ण मोहन बोलता, "हाँ- हाँ, मैं बिल्कुल ठीक हूँ। बस, ऐसे ही थोड़ी व्यस्तता अधिक हो गई है।"

"ओह...!" लेकिन समाज में इसी मानसिकता से ग्रस्त लोग कृष्ण मोहन की निराशा को अपने दिल में महसूस कर लेते। बेचारा! तीसरी बेटी हो गई है, इसका बोझ तो बढ़ ही गया ? क्या करेगा ?

बच्ची बड़ी होती गई और समय के साथ-साथ अपनी खिलखिलाहटों और शैतानियों से सबका मन जीतती चली गई। घर में फैली चुप्पी का कुहासा उसकी नटखटी से धीरे-धीरे फटता चला गया। कृष्ण मोहन और किरण के उदासीन मन में उस नन्ही अनचाही के प्रति प्यार जन्म लेने लगा। न जाने कैसे किरण के भीतर एक नई भावना अंकुरित हो गई। अब कोई पर्व-त्योहार आता तो वह बाकी दोनों बेटियों के लिए लड़की वाले कपड़े खरीदती और इसके लिए लड़के वाले कपड़े। इसका नाम भी रख दिया संतोष। कम-से-कम उसको संतोष कहकर खेलाती या पुकारती तो मन में इतना संतोष ज़रूर होता कि यह बेटी भी बेटे जैसी ही है। उसके मन में यह संकल्प जगने लगा कि इसकी परवरिश बेटे की तरह करेगी। बेटे की तरह उसे पढ़ाएगी-लिखाएगी और आगे बढ़ने के सारे मौके देगी। यह पढ़-लिखकर नौकरी करेगी। बेटे की तरह रोब से रहेगी।

कृष्ण मोहन ने एक दिन पूछा, "क्या करती हो, किरण ? इसको क्यों लड़के वाले कपड़े पहनाती हो ? और तुमने तो लड़कों जैसा नाम भी रख दिया - संतोष !"

इस पर वह बोली, "तो मैं अपनी इच्छाएँ कैसे पूरी करूँ ? तुम ही बताओ। मुझे बेटा चाहिए था। पर भगवान् ने दिया नहीं। तो अब इसीको बेटा मानूँगी। और यह मेरी बेटी किसी बेटे से कम है क्या? इसको हम बेटी नहीं, अपना बेटा ही समझेंगे। और संतोष नाम इसलिए रखा है कि यह नाम लड़की और लड़का दोनों के लिए चलता है। सच्चाई भी यही है कि इसको पाकर हमें संतोष तो करना ही पड़ा है; केवल संतोष ही नहीं, इसको बेटा मानने से हमें कुछ -न-कुछ सुख तो मिल ही जाता है। यही हमारा बेटा है और यही हमारा सुख-संतोष।"

कृष्ण मोहन ने कहा, "वाह! क्या सोचा है तुमने? सही सोचा है।"

किरण बोली, "मैं तो हमेशा सही सोचती हूँ और सही बोलती हूँ। अब अपना शौक तो इसी बेटी से पूरा करना पड़ेगा!"

कृष्ण मोहन उस बच्ची को देखता हुआ कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला, "ठीक है। हम भी दुनिया को दिखा देंगे। इसे बेटे की तरह पढ़ा-लिखाकर ऊँचे पद पर पहुँचाने के लिए अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। यही हमारा बेटा बनकर रहेगी! हमारे बुढ़ापे का सहारा बनेगी। इसको हम संतोष कहकर बुलाएँगे।" यह कहने के बाद कृष्ण मोहन के चेहरे पर भी हँसी फैल गई। उसने पहली बार अपनी तिरस्कृत बेटी को प्यार-भरी दृष्टि से देखा और उसके गालों को छूकर उसे हँस दिया। इस तरह दोनों मियाँ-बीवी के बीच यह समझौता हो गया कि अब उनकी तीन बेटियाँ नहीं, दो बेटियाँ और एक बेटा है। इस निर्णय से उनकी बेटा न होने की कसक बहुत कम हो गई।

उसके बाद उसे संतोष ही पुकारा जाने लगा। संतोष भी अपने को बचपन से ही लड़का समझने लगी। बाकी दोनों बहनें उसे बड़े प्यार से संतोष भाई बोलतीं, जैसे उनका भी भाई का सपना पूरा हो गया था। लेकिन जब संतोष को बेटे की तरह हर बात में प्राथमिकता दी जाती, तो यह बात दोनों बहनों को खल जाती। कोई लड़ाई-झगड़ा उन सब के बीच होता, तो माता-पिता दोनों संतोष का ही पक्ष लेते। पायल और संचिता को यह महसूस होने लगा कि लड़की होते हुए भी संतोष लड़के जैसा लाड़-प्यार और मान पा रही है। उनके दिलों में एक तरह की जलन भी जन्म लेने लगी। परंतु सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा। संतोष एक लड़के की तरह बड़ी होने लगी। वह स्वयं भी भूली रहती कि वह लड़की है। जो उसे नहीं जानता था वह तो उसे लड़का ही समझता था।

इन दोनों की योजना भले ही अपनी बेटी को बेटा बनाने की हो, परंतु जैसे ही यौवन ने उसकी देह पर दस्तक दी, प्रकृति उसकी काया में स्त्री-चिह्नों को निखारने और सँवारने में लग गई। युवा होती हुई संतोष के लिए बड़ी मुश्किल हो गई कि अब उभारों को कैसे छुपाया जाए ? वह अपने शरीर से ही शरमाने लगी। यदि वह लड़का दिखना चाहती है तो यह सब क्या हो रहा है ? कैसे छुपाए ? किरण भी इस मामले को लेकर कोफ्त हो रही थी। अब उपाय यही था कि दुपट्टा नहीं तो बंडी पहनाई जा सकती थी। तो संतोष ने पैजामा-कुर्ता या पैंट-कमीज़ के साथ बंडी पहनने लगी। अपने बाल भी लड़कों की तरह बिल्कुल छोटे-छोटे कटवा लिये। कृष्ण मोहन और किरण को लगने लगा कि संतोष तो सचमुच ही अपने आपको बेटा सिद्ध कर रही है। उनकी बोझिल रातें हल्की हो गईं। दुख और चिंता का भार दिल पर से हट गया। मन में

यह विश्वास पलने लगा कि यह बेटे की तरह ही उनके जीवन की शाम में उनके लड़खड़ाते हुए वजूद को थामने के लिए अपनी बाँहों का सहारा देगी।

राखी आती तो दोनों बड़ी बहनें थाल में राखी और अक्षत-रोली रखकर संतोष को तिलक लगातीं और उसी को छोटा भैया कहकर राखी बाँधतीं। तब संतोष बड़ी शान से अपनी जेब से पैसे निकालकर दोनों बहनों को थमाती। माँ-बाप दोनों यह देखकर कितना ख़ुश होते कि ऊपर वाले ने नहीं दिया, लेकिन उन्होंने तो अपनी युक्ति से बेटा पा ही लिया!

उसकी दोनों बड़ी बहनों की सहेलियाँ भी उसे संतोष भाई ही बोलती थीं, जिसके कारण उसके मन में लड़कियों की रक्षा करने का भी भाव आ जाया करता था।

बाकी दोनों बेटियाँ माँ के साथ रसोई में हाथ बँटाती होतीं, पर संतोष या तो पढ़ती या पिता के साथ बैठी घर के मसले पर विचार - विमर्श करती रहती। किरण स्वयं उससे कहती, "अरे, नून-तेल-हल्दी में तुमको कूदने की ज़रूरत नहीं है। तुम अपनी पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान दो। इन घरेलू कामों के लिए हम तीन-तीन हैं यहाँ बैठी हुई।"

एक-एक कर उसकी दोनों बहनों- पायल और संचिता की शादी हो गई। उन्हें दुल्हन बनी देखकर भी संतोष के दिल में कभी दुल्हन बनने की तमन्ना नहीं उठी। दोनों शादियों में वह सारे इंतज़ाम करते हुए एक भाई की तरह ही दौड़-धूप करती रही। शादी की भीड़ में अधिकतर लोग उसे दुल्हन का भाई ही समझते रहे।

पढ़ाई ख़त्म करने के बाद उसे तुरंत ही नौकरी भी मिल गई। माँ- बाप के साथ रहते हुए संतोष अपनी नौकरी में मस्त रहती थी। बाहर का जो भी काम होता, संतोष ही करती। कृष्ण मोहन और किरण, दोनों उस पर पूरी तरह निर्भर हो गए थे। ऑफ़िस-दफ्तर में जाकर किसी से मिलना हो, माता-पिता को अस्पताल ले जाना हो या रात-आधी रात, दिन -दुपहर किसी भी समय किसीकी तबीयत बिगड़ने पर दवाएँ लानी हों तो वह सड़ाक् से अपनी बाइक लेकर निकल जाती।

स्थिति यह हो गई थी कि वे सोच नहीं पाते थे कि यदि संतोष की शादी कर देंगे तो उनका जीवन कैसे चलेगा ? दोनों बेटियों के घर बस चुके थे और दोनों अपने-अपने परिवार में मस्त और व्यस्त थीं। अपनी इसी छोटी बेटी को उन्होंने अपने लिए बचा रखा था जो अपनी सीमा से आगे बढ़कर अपना फ़र्ज़ निभा रही थी। संतोष ने सोच लिया था कि उसे शादी नहीं करनी है।

कभी-कभार जब उसकी शादी की बात बहनों ने उठाई तो वह हत्थे से उखड़ गई। बोली, "नहीं करनी है मुझे शादी। मैं बहुत ख़ुश हूँ अपनी ज़िंदगी से। मुझे किसी बात का मलाल नहीं। तुम लोग जाओ और करो अपने पति की सेवा।" कभी-कभी हँसने के लिए बोल देती, "मैं लड़का हूँ ना? तो ऐसा करो तुम दोनों मेरे लिए एक लड़की ढूँढ़ दो तो उसी से शादी कर लूँ।"

उसके लिए शादी की बात भले ही मज़ाक हो, परंतु बहनों को उस पर तरस आ जाता। माँ-बाप के लिए तो यह अपने को न्योछावर कर रही है। पर अपनी ज़िंदगी में अकेली हो जाएगी। बाकी दोनों बहनों ने माँ-बाप को समझाया।

पायल बोली, "आप लोग उसकी शादी क्यों नहीं कर देते ? संतोष भाई शादी करने के बाद भी तो आप लोगों के साथ रहकर आप लोगों की देख-रेख कर सकता है? यह तो और भी अच्छा हो जाएगा कि विवाह के बाद संतोष का पति भी आप सभी का ख़याल रखेगा। शादी के बाद भी वह आपका बेटा बनकर रह सकता है ? कम-से-कम उसका परिवार तो बन जाए ? फिर उसकी ख़ुशी और उसकी ज़िंदगी के बारे में भी सोचिए ? वह शादी के बाद आप लोगों को छोड़कर नहीं जाएगा। इस बात का इत्मीनान रखिए।"

संचिता बोली, "हम दोनों ने तो शुरू से अपने को बेटी ही समझा; क्योंकि आपने हमें बेटी की तरह ही पाला। पर संतोष भाई को तो बेटे की तरह आपने पाला है? वह अपने को आपका बेटा ही समझता है। शादी के बाद कैसे बदल जाएगा?"

यह सुनकर किरण ने सोचा कि दोनों बेटियाँ तो ठीक ही कह रही है ! शादी के बाद भी संतोष रह सकती है उनके यहाँ। ऐसा वह क्यों नहीं सोच पाई? बेटा बनने के बाहरी तामझाम की ज़रूरत न थी। अब किरण और कृष्ण मोहन को संतोष की शादी करने में कोई नुकसान नहीं दिख रहा था। पर संतोष विरोध करती रही।

संतोष ने कहा, "माँ! मुझे नहीं करनी शादी। यही मेरा फ़ैसला है। और शायद ही कोई मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करेगा, जब उसे मालूम होगा कि मैं लड़का बन कर घूमती रही हूँ। तुम जानती हो न कि मुझे तुम लोगों को छोड़कर नहीं जाना कहीं? यह सब मत करो मेरे साथ।"

इस पर माँ समझाती, "बेटा! बस दो दिनों तक लड़की बनकर रहना पड़ेगा तुझे ! उसके बाद तो तू यहाँ चली आएगी। फिर बेटा ही बन कर रहेगी? कौन रोक लेगा तुझे ? यहाँ अपने पति के साथ ही रहेगी।"

वह मान नहीं रही थी, पर बड़ी मुश्किल से माता-पिता और दोनों बहनों ने मिलकर उसे शादी के लिए राज़ी किया। बड़ी ख़ुशामद के बाद उसे लड़की की वेश-भूषा में सजाकर लड़के वालों को दिखाया जा सका। लड़के वालों ने पसंद कर भी लिया। यह सुनकर वे और ख़ुश हुए कि लड़की नौकरी करती है। कुछ लोगों ने उनके कान भरे कि लड़की मर्दानी है। परंतु इसका कुछ ख़ास असर उन लोगों पर नहीं हुआ; क्योंकि वे जान रहे थे कि होने वाली दुल्हन सोने की मुर्गी है। वे तो लक्ष्मी के आगमन की ख़ुशी में आँखें मूँदे, हाथ जोड़े बैठे थे। उनका सोचना था कि यदि लड़की नौकरीपेशा है तो वेश-भूषा और चाल-ढाल से मर्दानी होगी ही। यह कोई ऐब नहीं है।

कृष्ण मोहन को इस जानकारी से राहत मिली कि उनकी बेटी के लड़का बनकर रहने का सकारात्मक प्रभाव ही पड़ा है। ऊपर वाले की मेहरबानी ! और मेहरबानी क्या ? यदि संतोष की शादी नहीं भी होती, तो संतोष उन पर भार बनती क्या? अपनी ज़िंदगी जी लेती, साथ-साथ उन्हें भी निभा देती। शादी के बाद भी निभाएगी। उनके दोनो हाथों में लड्डू हैं।

शादी में लाल जोड़ा पहनकर संतोष परेशान हो गई। दुल्हन की तरह सजा दिए जाने के बाद उसने अपने आपको आईने में देखा- कैसी लग रही थी वह? बिल्कुल औरतों की तरह ! जैसा वह नहीं लगना चाहती थी। उसके रंगे हुए लाल ओठ, आँखों में गहरा काजल, भाल पर बिंदी और माँग पर सजा हुआ माँग टीका। उसे लगा कि वह रंगमंच पर अभिनय करने जा रही है। मज़ाक हो रहा है उसके साथ! और इसका नतीजा क्या होगा?

उसने अपनी दोनों मेहंदी सजी हथेलियों को जोड़कर देखा। क्या ये उसकी हथेलियाँ थीं ? या किसी और की? आज वह यह सोचने पर मजबूर हो गई थी कि स्त्रियों के गहने-कपड़े उन्हें घर के भीतर क़ैद करके रखने के लिए ही बनाए गए थे। चूड़ियों और पायलों की खनखनाहट से उनके घर में होने का एहसास मिलता रहे। वह घर से बाहर जाए तो पता चले कि कहाँ जा रही है? जैसे गाय गोरू के गले में बँधी घंटी उनकी उपस्थिति और उनके इधर-उधर डोलने की सूचना देती रहती है।

सारी रस्में निभाते हुए अपने को जाल में फँसी मछली-सी महसूस कर रही थी। आज उसकी सारी हिम्मत जवाब दे रही थी। उसे लग रहा था कि वह किसी मुसीबत में फँस गई है। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ? भाग जाए ? तो कैसे भागे? वह तो बार-बार इस शादी का विरोध कर रही थी, परंतु सब ने मिलकर उसके लिए जाल बुन दिया।

संतोष सोच रही थी कि आज से जिसे पति कहलाने का अधिकार मिल जाएगा, वह उसे बता देगा कि पुरुष किसको कहते है? वह आकर उसके तन को अपने नियंत्रण में कर लेगा। आज तक जो वह अपने को पुरुष समझती आई, वह सब आज झूठा सिद्ध होने वाला था। आज तक लड़का के रूप में उसे जो इतना मान-सम्मान उसके परिवार से मिलता रहा, वह सब ख़त्म हो जाने वाला था। अब उसे भी अपनी बहनों की तरह मिमियाना सीखना होगा। उसे दबकर स्त्री बनकर रहना पड़ेगा। सबकी जी हुजूरी करनी पड़ेगी। कैसे रहेगी वह औरत बनकर? उसकी माँ जिस तरह गृहस्थी की चक्की में पिसती रही है, उसे भी उसी तरह पिसना पड़ेगा। भात-दाल पकाते हुए, रोटी सेंकते हुए, सब को खाना खिलाते हुए उसके दिन बीतेंगे। वह एक ऐसी चाकरी में जोत दी जाएगी, जो चौबीसों घंटे की होती है, जिसमें कोई छुट्टी नहीं होती। कहीं उसकी नौकरी न छुड़वा दें सब ? न भी छुड़वाएँ तो हज़ार ज़िम्मेवारियाँ आ जाएँगी सिर पर। नौकरी भी करो, और घर भी देखो। उसे बच्चे भी पैदा करने होंगे। क्या कर पाएगी वह यह सब?

उसे बहुत शिद्दत से महसूस हो रहा था कि शादी जैसी चीज़ उसके लिए बनी ही नहीं है। और आज तक जो पोशाक उसने नहीं पहनी, वह पोशाक उसे पहननी पड़ी। आज तक तो उसने फ्रॉक भी नहीं पहनी। सलवार-कुर्ता भी नहीं- साड़ी की बात तो दूर। और औरतों ने मिलकर आज उसे पहना दिया भारी कामदार लहँगा, चोली और दुपट्टा। चोली पहनने का अनुभव उसे किसी सज़ा से कम नहीं लग रहा था।

विवाह की रस्में पूरी होने के बाद उसे वर के साथ एक कमरे में बैठा दिया गया। सभी हँसते-मुस्कराते उन दोनों को अकेला छोड़कर चल दिये। कमरे में संतोष और शिशिर थे। शिशिर जिस रोमांटिक मूड में था, संतोष का मूड उससे छत्तीस का रिश्ता बना रहा था। उसे घूँघट में घुटन हो रही थी। उसने दुपट्टा सिर पर से हटाकर बिस्तर पर फेंक दिया। वर दुल्हन की इस अदा पर फिदा हो गया। उधर दिल में तूफ़ान लिए हुए वह यह सोच रही थी कि इसके बाद क्या होने वाला है ? वह पति को कैसे स्वीकार करे ? शिशिर कुछ और ही सोच रहा था। उसने अपनी दुल्हन के मेंहदी लगे हाथों को अपने हाथों में जैसे ही लिया संतोष ने अपना हाथ छुड़ा लिया। शिशिर को लगा कि वह शरमा रही है। उसने दोबारा कोशिश की। संतोष ने फिर हाथ छुड़ा लिया। इस बार शिशिर ने यह कहते हुए उसे अपने आलिंगन में बाँधने की कोशिश की-"तुम बहुत शर्मीली हो।" जैसे ही शिशिर ने उसे अपनी ओर खींचा, वह बाँहों का घेरा तोड़ती हुई दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आई। वर अवाक् होकर देखता रह गया। यह क्या हुआ?

उसके माता-पिता दिन-भर के थके-हारे अब सोने जा रहे थे कि सामने सद्य:विवाहिता बेटी को हाँफते हुए आते देख हक्का-बक्का रह गए।

कृष्ण मोहन ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ बेटा ?... तू यहाँ ? सब ठीक तो है ?"

"यह क्या हुआ संतोष?...तू..तू.. ?" माँ बोली। अचरज में उसकी तर्जनी उँगली अनायास ही उठकर उसकी ठुड्ढी पर चली गई।

संतोष हाँफ रही थी। कुछ पलों के लिए तो वह कुछ बोल ही नहीं पाई। खड़ी-खड़ी माँ-पिता को घूरती रही।

फिर बोली, "आपने क्या किया मेरे साथ? आपने मुझे बेटा बनाया और बेटा बनाकर ही पाला। तो फिर आप लोग यह नहीं समझते कि मेरे लिए पत्नी बनना कितना मुश्किल है ? अब मैं किसी की पत्नी नहीं बन सकती हूँ। मैं नहीं रहूँगी किसी की बीवी बनकर। सुन लीजिए आप लोग। मैंने अपने को बेटा माना है तो अब बेटी तो नहीं बन सकती।"

उसे इस हालत में देखकर उसकी बड़ी बहन पायल दौड़कर किचन में गई और उसके लिए पानी लेकर आई। मँझली बहन संचिता ने उसे बाहों में थामकर बैठाया, "बैठो, संतोष भाई !... बैठो। देखो, शांत हो जाओ।"

संतोष की आँखें भर आईं। वह पिता की ओर देखती हुई बोली, "आप दोनों की बात मानकर मैं अपने आपको दुल्हन समझने की कोशिश कर रही थी। लेकिन मैं क्या करूँ? मेरा मन किसी की दुल्हन बनना स्वीकार ही नहीं कर रहा है ? अभी तक तो मर्द बनकर जीती रही, अब औरत बनकर कैसे जी पाऊँगी? जब इसी तरह किसी पुरुष के पल्ले से बाँध देना था, तो मुझे लड़का बनाकर क्यों पाला ? बेटा बनाया मुझे कि मैं इसी घर में रहूँ ? ...मैं भी सपने देखती रही कि मैं आप लोगों के बुढ़ापे का सहारा बनूँगी और अचानक आपने मुझको एक अबला नारी समझ लिया कि मैं अपने जीवन की बागडोर किसी पुरुष

के हाथों में दे दूँ ...?" थोड़ी देर के लिए चुप होकर अपने माता-पिता की ओर देखती रही फिर बोली, "तब भी मैंने बहुत कोशिश की पापा ! ...पर बिल्कुल संभव नहीं है यह ! आप स्वयं सोचिए... पापा..! मुझसे नहीं होगा यह नाटक ...! सबकुछ उलझ गया है अचानक !" कहते-कहते वह रोने लगी।

लहँगे के ऊपर ब्लाउज पहने संतोष अपनी आँखें पोंछ रही थी। अपनी चुनरी सुहाग-सेज पर छोड़ आई थी। चेहरे पर आँसू और पसीने के कारण मेकअप की लीपा-पोती हो गई थी।

थोड़ी देर बाद दूल्हे के पिता आए और कृष्ण मोहन के साथ उनकी कहासुनी हुई कि उन लोगों ने उन्हें धोखा दिया। लड़की का पहले से कहीं अफेयर चल रहा था तो उसकी शादी नहीं करनी चाहिए थी। शिशिर के पिता यही बात बार-बार बोल रहे थे, जिस पर ख़ूब तनातनी हुई।

इस घटना के बाद से संतोष अनमनी-सी रहने लगी। उसकी दिनचर्या पहले जैसी हो करके भी पहले की तरह नहीं रही। लगता था जैसे उसके शरीर की सारी ताक़त ख़त्म हो गई है और वह सारे कार्य स्वचालित मशीन की तरह करती चली जाती थी। दोनों ओर से संवाद पूर्णत: बंद हो चुके थे और दोनों पक्ष एक दूसरे से कटकर अनजान बन गए थे। शिशिर के पिता शहर के एक छोर पर रहते थे और कृष्ण मोहन दूसरे छोर पर, जिसके कारण एक शहर में रहते हुए भी रोज़-रोज़ आमना-सामना होने की संभावना कम थी। शिशिर और संतोष का भी आपस में टकराना संभव नहीं था; क्योंकि दोनों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग थे।

कृष्ण मोहन और किरण इसे एक दुर्घटना समझ कर भुला देने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन संतोष के लिए भूल पाना बहुत मुश्किल हो रहा था। एक दिन ऑफ़िस से लौटते हुए संतोष को अकस्मात् सड़क पर शिशिर दिखाई पड़ गया, जो बाइक से उसकी विपरीत दिशा में चला जा रहा था। दोनों की आँखें मिलीं, पर शिशिर ने शायद उसे पैंट-शर्ट और बंडी में देखकर नहीं पहचाना या उसने जान-बूझकर अनदेखा कर दिया, वह आगे बढ़ गया। संतोष कोशिश करती रह गई कि शिशिर एक बार उसकी ओर देख लेता ! उसे बाद में याद आया कि उसका तो पूरा हुलिया ही बदला हुआ था। वह कैसे पहचानता ? वह भी भीड़ -भरी सड़क पर ? यह प्रश्न भी मन में उठा कि क्या वह उससे दूर हो जाना चाहता है?

उस दिन घर में आने के बाद अकारण वह अपने आप को बहुत हल्का महसूस करने लगी। उसे लगा कि वह फिर पहले की तरह ऊर्जावान हो उठी है। आज उसका मन बहुत-कुछ करने का हो रहा था। वह घूमना चाहती थी, गाना चाहती थी, नाचना चाहती थी। मन का कहा मानते हुए उसने अपने कमरे में जाकर भीतर से दरवाज़ा बंद कर लिया, जैसे चोरी करने जा रही हो।

महीनों बाद आज उसने उस सूटकेस को खोला जिसमें उसकी शादी में दिये गए कपड़े उसी तरह से सँभले-सजे रखे हुए थे- बिल्कुल अनछुए। रंग-बिरंगी ज़रीदार साड़ियाँ, रंग-बिरंगे सलवार सूट, चूड़ियाँ, बिंदियों के पत्तर। जिन कपड़ों को देखकर उसने सोचा था कि ये सारे कपड़े फ़िज़ूल के हैं, उन्हीं कपड़ों को देखकर आज उसका मन पहनने के लिए मचल गया। उसने उसमें से एक सुंदर सलवार सूट निकाला और उसे पहनकर अपने को आईने में देखा। कितनी मोहक लग रही थी उसकी स्त्री-काया! एक कोमल कविता की तरह ! जैसे वर्षों से दबे हुए शब्द कविता बनकर फूट पड़े हों ! उसके भीतर छुपी एक पूरी औरत आज निकलकर बाहर आ गई थी ! फिर उसने बिंदियों वाला पत्तर निकाला। उसमें से एक लाल बिंदी लेकर ललाट पर चिपकाई और आईने में अपने को ही देखकर शरमा गई !

उसे क्या हो गया है ? वह क्यों ऐसे कर रही है? वह स्वयं भी नहीं समझ पा रही थी। वह बिस्तर पर बैठ गई और मुस्कराते हुए अपनी सेल्फी ली। मोबाइल से अपनी फ़ोटो शिशिर को भेजते हुए संदेश भेजा -- "हाय ! कैसे हो ?"

000

लघुकथा

अपनेपन की डोर

प्रगति त्रिपाठी

रत्ना जीजी वर्षों बाद मायके आई थी। घर में ख़ुशी का माहौल था लेकिन चाचा के घर सभी के मन में बस यही सवाल कौंध रहा था कि क्या रत्ना जीजी अपने चाचा के घर सबसे मिलने आएँगी! अब दोनों घर बँट चुके थे। एक-दूसरे से बातचीत हुए महीने हो गए थे।

रत्ना की चचेरी बहन मंजू को पूरा यक़ीन था कि जीजी उससे मिलने ज़रूर आएँगी इसलिए वह बार-बार दरवाज़े पर टकटकी लगाए थी। थोड़ी सी हलचल सुनाई देती तो उसे लगता रत्ना जीजी आ गई। चाचा-चाची सब रत्ना को बहुत प्यार करते थे लेकिन चाहकर भी उसे मिल नहीं पा रहे थे। रत्ना को आए काफी समय हो गया था। चाचा-चाची ने मान लिया कि रत्ना उनसे मिलने नहीं आएगी।

उन्होंने मंजू से कहा "बेटा ! रत्ना हमारे घर नहीं आएगी। तू इतनी उम्मीद मत लगा वरना तकलीफ़ होगी।"

तभी दरवाज़े की घंटी बजी। मंजू ने दौड़कर दरवाज़ा खोला और चिल्लाते हुए बोली "माँ रत्ना जीजी आ गई। मैंने कहा था ना वे ज़रूर आएँगी।" मंजू ख़ुशी से फूले न समायी। "घर बँटे हैं लेकिन दिल नहीं।" मंजू को गले लगाते हुए रत्ना ने कहा।

000

प्रगति त्रिपाठी, बी-222, जी.आर.सी. सुभीक्षा, एम.जे. नगर रोड, चूड़ासन्द्रा, बैंगलूरु, कर्नाटक 56099
मोबाइल- 9902188600
ईमेल- kumaripragati1988@gmail.com

मन्दिर वाला घर

किसलय पंचोली

उनको मुझसे और छोटी-बड़ी जो भी शिकायतें हों या न हों एक शिकायत स्थाई रूप से है। वे हमेशा डाइनिंग रूम के ख़ाली कार्नर की ओर इशारा करते हुए यह कहती आई हैं।

"घर में मंदिर होना अच्छा होत है। तुमार घर में एक ठो मंदिर नाही। कम-से-कम इक छोटी मंदिरी ठुक्वाई लो इहा कोना में। घर अला-बला से बच रहत है।"

उनसे मुझे और छोटी-बड़ी जो भी असहमतियाँ हों या न हों, एक असहमति स्थाई रूप से है। मैं हमेशा से सोचती आई हूँ घर में मंदिर होने-न-होने से क्या होता है? मुझे पूजा पाठ का ढोंग कतई पसंद नहीं। मेरे लिए कर्म ही पूजा है। मन लगा कर काम करना ही मेरी आराधना है। मैं काम को ही अर्चना की तरह करने में विश्वास रखती हूँ। वे मुझसे दिनों तक रुठीं। घंटों नाराज़ हुईं। पर घर में मन्दिर या एक कोने में उसका लघुतर रूप, जिसे वे मंदिरी पुकारती हैं, बनवाने के लिए मुझे सहमत न करवा पाईं। मेरे पति समीर ने इस मामले में कभी मुझ पर दबाव नहीं डाला। अलबत्ता वे अक्सर अपनी माँ को ही समझाते पाए गए।

"माँ, कालोनी के प्रवेश द्वार पर है मंदिर। आप वहाँ जाकर आराम से पूजा अर्चना कर सकती हैं।" वैसे वे सास के रूप में बहुत स्नेहिल हैं। साक्षात् माँ। किन्ही-किन्ही बातों में माँ से भी बढ़कर। उनके चार बेटे हैं। प्रज्ज्वल, नीरज, आकाश और समीर। सभी शादीशुदा। फिलहाल प्रज्ज्वल भाई साहब कोलकाता एयरपोर्ट में निदेशक हैं। नीरज भाई मुंबई आई.आई.टी. में एडमिनिस्ट्रेटर। आकाश भाई इंफोसिस बेंगलुरु में सी.ई.ओ. और समीर दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं। ससुरजी शिक्षा विभाग से रिटायर हो चुके हैं और पत्नी की चारों बेटों में से जितने दिन जिसके भी यहाँ रहने की इच्छा हो वहाँ सहर्ष लाते ले जाते रहते हैं। अचानक ही सासू माँ का मन करता अब इस बेटे के घर चलो और ये दोनों वहीं चल पड़ते। जब जिस वक्त जिस भी बेटे के यहाँ वे रुके हों, उसकी ड्यूटी बनती कि वह अगली यात्रा के लिए सीनियर सिटीज़न के एअर टिकट तत्काल में बुक करा दे।

हम भाग्यशाली हैं कि माँ-पापा बाकी भाईयों के बनिस्बत हमारे घर अधिक रुकते रहे हैं। ऐसा हमेशा होता रहा। अन्य भाईयों के घर चार दिन, हमारे यहाँ चार महीने। जब भी रहते हैं माँ का दैनिक रूटीन बिल्कुल तयशुदा होता है। सुबह 5:30 पर उठना। गुनगुने पानी में शहद नींबू पीना। नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्राणायाम करना। फिर नहाना। नहाकर घंटा भर बालकनी में बैठकर ध्यान करना। आज हमारी तबीयत ऐसी है या वैसी है। बहू, हम यह खाएँगे या वह नहीं खाएँगे की इत्तला देना। फिर नाश्ते और खाने की तैयारी के लिए सदैव आतुर रहना।

"बचवा, (यानी समीर) को पराँठा पसंद है। बहू शुद्ध घी में सेंकना। लाओ हम सेंक दें।" मनुहार के साथ खिलाना। फिर स्वयं आख़िर में खाना। मैं कितना भी कहूँ "माँजी, पहले आप खा लीजिए गरम-गरम।" पर बच्चन को खिलाए बगैर वे एक ग्रास मुँह में नहीं लेतीं। यह कहते हुए "नहीं हम ठीक हैं। सुबह नींबू पानी पिए हैं न।" दोपहर में दूरदर्शन पर थोड़ी देर क्षेत्रीय कार्यकम देखना या कोई आस्था पूजा से भरपूर प्रवचनकारी चैनल पर टिकना उनकी दिनचर्या होती। "बहू, अब हम ज़रा आराम करेंगे।" कह दो तीन घंटे सोने के लिए जाना। इसका अर्थ है जब वे सोने जाएँ मुझे भी कुछ देर उनके साथ कमरे में जाना होगा। जब तक उन्हें नींद न आ जाए उनके पैर दबाना होंगे। अतीत की घटनाएँ, जो भी उनके ज़ेहन में आएँ, सुनना होंगी। और ढेर सारे आशीष के साथ आख़िरी हिदायत सुनते हुए बाहर आना होगा।

"बहू हम कहें सब अच्छा है। पर तुमार घर में एक ठो मंदिर नाही। पूर्वोत्तर कोने में मंदिरी बनवाई लो। अच्छा रहेगा।" उन्हें पता है उनकी बहू सब करेगी पर इस सलाह को नहीं मानेगी। फिर भी वे रोज़ दोपहर की झपकी के पहले एक बार इस आग्रह को दुहरा, तिहरा कर ही रहेंगी। जितनी देर वे सोती हैं, उतनी देर मुझे मेरा समय मेरे अनुसार बिताने की पूरी छूट है। इस समय मैं अपनी पसंद की किताबें पढ़ती हूँ। नेट सर्फिंग करती हूँ। या आइल पेंटिंग करती हूँ। समीर आते हैं। हम दोनों खाना खाते हैं। ये माँ-पापा के हाल चाल पूछते हैं। देखते हैं कि दोनों सो रहे हैं। फिर ड्यूटी पर चले जाते हैं। मैं थोड़ा गाने सुनते हुए आराम फरमाती हूँ। शाम को माँ के कमरे से गुहार

किसलय पंचोली
एफ 8, रेडियो कालोनी,
इंदौर (म.प्र.) 452001
मोबाइल- 9926560144
ईमेल- kislayapancholi@gmail.com

आतीं "बहू, अदरक डाल कर चाय बना लो।" मैं उन्हें चाय का कप देती हूँ और वे मुझे आशीष।

पिताजी अपनी दुनिया में जीते हैं। सुबह मार्निंग वॉक करने वालों के साथ उनकी मित्र मण्डली बन गई है।

बुज़ुर्गों के एक से सुख-दुख। प्रात: गोष्ठियों में, जो पुलियाओं पर होती हैं, प्राय: अतीत की घटनाओं का आदान-प्रदान चलता रहता है। वे घर आकर जो नाश्ता बना है, खा लेते हैं। खाने के बाद विस्तार से पेपर पढ़ते हैं। मतलब की ख़बरों को हाईलाइट करके जो विचार या सूक्ति उन्हें अच्छी लगे डायरी में उतारते हैं। उनकी तरफ से कोई हिदायत या सलाह मुझे आज तक नहीं मिली। मैं कुछ पूछूँ भी "पापाजी, खाने में यह बना लें या वह?"

"जो तुम ठीक समझो बहू।" स्लेहिल मुस्कान में सिक्त एक ही उत्तर मिलता है उनसे। समीर बताते हैं पापा घर के किसी मामले में कभी कोई दखल नहीं देते थे। घर के सारे निर्णय माँ के पास सर्वाधिकार सुरक्षित रख निश्चिंतता से नौकरी करते थे और अभी भी उनका वही ढर्रा है। माँ का दिल जितने दिन जिस बेटे के यहाँ रहने का है उतने ही दिन वहाँ रहते हैं। अन्यथा फिर महीनों के लिए हमारे घर आ जाते हैं। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी पापा के कहने से उन दोनों का अन्य बेटों के यहाँ जाना-आना बाधित, लंबित या परिवर्तित हुआ हो।

"समीर बेटा, प्रज्ज्वल की बहू कह रही थी उसने अपने बंगले पर मन्दिर बनवाया है। कृष्ण भगवान् की श्याम संगमरमर की मूरत भी मँगवाई है। कहती है प्राण प्रतिष्ठा तब्बे करवाएगी जब हम उहाँ पहुँच जाएँ। तुम हमरा और पापाजी का टिकट करवाई दो।" माँ ने कहा। मुझे छोड़कर माँ की बाकी बहुएँ सजातीय और उनके अपने प्रांत के कस्बों से हैं। क्षेत्रवार रीति रिवाज, पूजा-पाठ की सहधर्मिता उनमें और माँ में निस्संदेह मेरे और माँ से ज़्यादा अच्छी बैठती है। मैं ठहरी दूसरे प्रान्त के महानगर से आई इकलौती विजातीय बहू। माँ बहुत ख़ुश हैं कि प्रज्ज्वल के घर भी मंदिर बन गया है।

"बहू, हम चलत हैं। समीर बचवा का ख़याल रखना। हम एक महिना वहीं कलकत्ते रहेंगी। बेटन के घर भली प्रकार प्राण प्रतिष्ठा हो जाए और हम का चाहि। और हाँ बहू, तुम भी विचार कर लो। एक ठो मंदिर, छोटा ही सही, बनवाय लो। शुभ होगा।" जाते-जाते वे फिर अपनी स्थाई सलाह देना न भूलीं। मुझे पता है वे क्यों बार-बार यह बात दोहराती हैं। उन्हें लगता है हमारे बच्चे न हो पाने की वजह घर में मन्दिर का न होना है। उनका भोला विश्वास भगवान् से शुरू होकर मंदिर पर ख़त्म होता है या मंदिर से शुरू होकर भगवान् पर। समीर का स्पर्म काउंट कम है इसलिए हमें बच्चा नहीं हो पा रहा, यह बात उन्हें बताई नहीं जा सकती। इस सच को वे आत्मसात् नहीं कर पाएँगी। उनके अनुसार- "लड़कन में का खोट होत? खोट होत कोख मा। आख़िर कोख भगवान् ने लड़कीउन को दी है लड़कों को नहीं न।" उन्हें लगता है हमारी शादी को दस साल हो गए और मैं उनके कहे अनुसार कहीं मत्था टेकने नहीं गई इसलिए घर में किलकारी नहीं गूँजी। ऐसा उनका दृढ़ विश्वास है। मैं इतनी नास्तिक हूँ कि मैं मंदिर नहीं बनवाती इसलिए संतान सुख से वंचित हूँ। उनके अनुसार यह मेरे पिछले जन्म के कुछ पुण्य रहे होंगे कि मुझे समीर जैसा पति प्राप्त हुआ।

मैं उनके अटूट विश्वासों को ज़रा भी आहत नहीं करती। न ही उनसे बहस करती हूँ। जबकि तर्क करना मेरी प्रवृत्ति में सम्मिलित है। फितरत में शुमार है। हाँ पर मैं उनके कहे अनुसार कोई टोना-टोटका भी नहीं करती। छुआछूत नहीं मानती। मत्था नहीं टेकती। कोई पूजा-पाठ, व्रत-उपवास भी नहीं करती। समीर का पूरा समर्थन जो मुझे प्राप्त है। इनका मानना है कि "हर व्यक्ति को अपने हिसाब से जीने का पूरा हक है। माँ को भी है। तुम्हें भी है। वे करती हैं। उनकी आस्था है। उन्हें करने दो। तुम्हें नहीं करना। तुम्हारे अपने तर्क और विचार हैं। तुम मत करो। मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। हम अपनों से अपेक्षाएँ कम-से-कम रख कर ही अधिक से अधिक ख़ुश रह सकते हैं।" एक महीने का कह कर गई थी माँ पर पाँच दिन में ही लौट आईं। बहुत तारीफ़ कर रही हैं प्रज्ज्वल भाई साहब के घरेलू मंदिर की।

"भई वाह! बहुतै पैसा डारा है प्रज्जू ने मंदिर मा। कित्ते-कित्ते काँच लगवाए हैं! जिधर देखो उधर किशन भगवान् मुस्कात दिखत हैं। एक मा एक मा एक मा एक! पंडित भी जानकार बुलवाई रहत। बहुत बढ़िया हवन, पूजन, श्लोक, मंत्रोच्चार के बाद मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की गई। प्रज्ज्वल बेटू सजला और बहू निर्जला उपवास रखे थे। जब पूजा पर बैठे दोनों की जोड़ी बहुत जम रही थी।" वे धारा प्रवाह बतियाती जा रही थीं।

"कितने सारे लोगों को न्योता गया था। रसोई में क्या-क्या बना था। पंचामृत का कितना बढ़िया स्वाद था कि पंडित को सीधे में क्या-क्या नहीं दिया और आख़िर में सत्यनारायण की कथा भी कराई।" मैं सोच रही हूँ पूछूँ "माँ, जब सब कुछ इतना अच्छा था आप और रुकतीं न मंदिर वाले घर में! हमेशा की तरह कहे से बहुत जल्दी समय पर क्यों लौट आईं? जब भी आप किसी और बेटे के घर जाती हैं कभी दो तीन दिन से ज़्यादा नहीं रुकतीं। और इस बिना मन्दिर वाले घर में महीनों के लिए लौट आती हैं। आप ऐसा क्यों करती हो माँ?" ख़ैर ऐसी बातें पूछने की नहीं होतीं। मैंने उनसे कुछ नहीं पूछा, उन्होंने जो प्रसाद दिया सिर झुका कर ग्रहण कर लिया।

अगले दिन से वही तय शुदा रुटीन पुन: शुरू हो गया। जैसा पहले चल रहा था। पाँच दिन के मंदिर ब्रेक के बाद ज़िंदगी फिर पुरानी पटरी पर दौड़ने लगी। छह महीने किधर निकल गए पता ही नहीं चला। अगले ब्रेक का कारण बना नीरज भाई साहब वाली भाभी द्वारा गुरुवार उद्यापन का महाकार्यक्रम करना। माँ-पापा को अब मुम्बई जाना था। सदा की तरह टिकट करा दिए गए। उन्हीं दिनों समीर को बीस दिन के लिए काठमांडू जाना था। सो मैं मुम्बई गई। वहाँ खार के एक हाल में उद्यापन का कार्यक्रम भव्य तरीके से सम्पन्न हुआ। बहुत लोगों को बुलाया गया था। मैं लगी रही काम काज में। माँ किसी पड़ोसन को कह रही थीं।

"अब का बतावें समीर की बहू बड़ी ज़िद्दी है। कछु नहीं मानत। तभी कोई बच्चा नहीं।" मुझे बुरा लगा पर मैं इनको याद कर के चुप रह गई। तीनों जिठानियों के चेहरों पर मेरे लिए एक तरस का भाव था। बेचारी, अभागी, निसंतान। सूनी कोख वाली। यहाँ भी माँ ने तीसरे दिन ही दिल्ली जाने की बात कही। किसी ने रुकने का मनुहार नहीं किया। जेठजी ने जल्द ही तत्काल के टिकट बुक करा दिए और मैं माँ-पापा को साथ लेकर वापस घर आ गई। वही बिन मंदिर वाले घर में! सब कुछ पूर्ववत् चलता रहा। न माँ बदली न मैं बदली। हालाँकि अब मैंने और समीर ने तय कर लिया है कि हम बच्चा गोद लेंगे। यह निर्णय माँ को नहीं बताया है। उनकी राय ऐसा करने की कभी बन नहीं सकती। वे चाहेंगी हम ननद सुमन के बच्चों में से किसी एक को गोद ले लें। जिनके छह बच्चे हैं। दो साल से दस साल तक की रेंज के। वे पहले भी यह बात बहुत बार कह चुकी हैं। पर हम दोनों रिश्तेदारी में गोद नहीं लेना चाहते। हम सोच रहे हैं अगली बार जब माँ किन्हीं भाई साहब के घर जाएँगी हम एक अनाथ बच्ची को घर ले आएँगे।

गोद लेने की सारी औपचारिकताएँ हम पूरी कर चुके हैं। जिसे गोद लेना है वह दो साल की बड़ी प्यारी बच्ची है। मैंने उसका नाम भी सोच लिया है अपूर्वा। विंडो शापिंग करके उसके लिए ड्रेसेस भी छाँट ली हैं। गोद लेने के विचार मात्र से ही जीवन में एक नया स्पंदन जाग गया है। थ्रिल आ गया है। अतीव आंतरिक सुख मैं महसूस कर रही हूँ। सचमुच कितना अच्छा होगा। अपूर्वा ठुमुक-ठुमुक कर घर भर में माँ-पापा, दादा-दादी बोलेगी। मैंने यह भी सोच रखा है उसकी तोतली बोली पर ख़ुश नहीं होऊँगी। उसे शुरू से शुद्ध उच्चारण करना सिखाऊँगी। मेरे घर एक नन्हीं परी आ रही है। उसके आगमन की सूचना से ही मैं कितनी रोमांचित हूँ। घर आ जाने पर कितनी होऊँगी समझ ही नहीं आ रहा। मेरी इच्छा हो रही है कि उसका कमरा अभी से जमा दूँ। पर समीर ने मना कर रखा है। माँ के अगले प्रवास में हम दोनों एक साथ जमा लेंगे। फिर फ़ोन पर उनके आने के पहले बता भी देंगे कि हमने अपूर्वा को गोद ले लिया है। वे कुछ दिन शायद हमसे नाराज़ रहें। फिर मान जाएँ। वैसे भी बच्चे सभी का दिल जीत लेते हैं।

लेकिन यूँ ही आठ महीने निकल गए। इस बार माँ ने कहीं जाना है ऐसा बोला ही नहीं। अनाथालय से फ़ोन आ रहे हैं- "आप बच्ची को क्यों नहीं ले जा रहे? क़ानूनी औपचारिकताएँ पूरी होने के छह महीने तक बच्ची यहाँ रह सकती है उसके बाद नहीं। दो महीने ऊपर हो गए हैं।"

समीर जैसे-तैसे उन्हें मोबाइल पर विश्वास दिलाते रहे- "आप निश्चित रहें। हम जल्दी ही ले जाएँगे।"

आख़िर वह सूरज भी उगा जब माँ ने आकाश भाई साहब के यहाँ बेंगलुरु जाने की इच्छा ज़ाहिर की। अंधा क्या चाहे दो आँख। इन्होंने तुरंत एयर टिकट बुक करा दिये। आकाश के बेटे का अन्नप्राशन संस्कार कार्यक्रम जो था। माँ के बग़ैर विधि-विधान से कैसे होता? वे दोनों जाने की तैयारी में लग गए। हाँ, सदा की तरह जाते समय इस बार भी माँ घर में एक मंदिर बनवाने की हिदायत देना न भूलीं- "बहू, अबकी वापस आऊँ तब तक मंदिर बनवा लेना।"

माँ और पापा के जाते ही मेरा मन बल्लियों उछलने लगा। हम लोग अपूर्वा को उसी दिन घर ले आए। उसका पूरा कमरा सजा दिया। वह इतनी प्यारी बच्ची है कि दो ही दिन में हम से हिल गई। उसकी हर अदा को फ़ोटो और विडियो में क़ैद करने की जैसे हमारे बीच प्रतियोगिता सी चल पड़ी। हमें लगा ही नहीं कि हम उसे बाल अनाथ आश्रम से लाए हैं। लगा जैसे हमारे पास ही वह बढ़ी हुई है। मैंने उसके पैरो में एक-एक घुँघरू वाली पायल पहना दी। और जब वह रुनझुन, रुनझुन कर घर भर में चलने लगी तो जैसे पूरा घर वाद्य बन गया। निहाल हो गई मैं। मुझे लगा मुझसे ख़ुशक़िस्मत पूरी दुनिया में कोई है ही नहीं। उसकी किलकारियाँ, उसकी अदाएँ, भंगिमाएँ, उसका चहकना, इतराना, रूठना, मान जाना, गोदी चढ़ घोड़ा बना पैरों में झूला झुलवाना, नहाना, खाना, सोना, उठना-बैठना, खेल-खेलना सब कुछ मुझे व्यस्त, मस्त और अति प्रसन्न रखने लगा।

बेंगलुरु से फ़ोन आया कि माँ-पापा के टिकट करा दिये हैं। वे वापस दिल्ली आ रहे हैं। हम सोचने लगे अपूर्वा के बारे में नाप-तौल कर क्या, कितना, कैसे माँ को बताना होगा। मैंने कहा-

"यह ज़िम्मेदारी आपकी। मैं यह ध्यान रखूँगी कि माँ का पुराना रूटीन बदस्तूर जारी रहे। उन्हें अपूर्वा के रहने से किसी प्रकार की उपेक्षा न महसूस हो ठीक!"

लेकिन कुछ ही घंटों बाद दुबारा फ़ोन आने के बाद घर के पूर्वोत्तर कोने में डाइनिंग रूम के उस तिकोने खाली पटिए पर मैंने कब यंत्रवत् माँ की फ़ोटो फ्रेम कर रख दी मुझे ही नहीं पता। और समीर के साथ हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। निशब्द मूक और मन से ज़ार-ज़ार रोते हुए। मशीन की तरह ही मैंने फ़ोटो के आगे अगरबत्ती लगाई और दीपक भी जलाया। मैं जानती हूँ माँ अब कभी वापस घर नहीं आएँगी। एयर पोर्ट जाते और कार के ट्रैफिक जाम में फँसे होते समय ही सीविअर हार्ट अटैक ने उन्हें हमसे छीन कर भगवान् के घर भेज दिया है। मैं समीर के कंधे पर ढह जाती हूँ जो स्वयं ढहा हुआ है। मेरे कानों में बार-बार उनके मंदिर बनवाने की हिदायतें गूँज रही हैं। ....."घर में मंदिर होना अच्छा होत है। ...तुमार घर में एक ठो मंदिर नाही। .... कम-से-कम इक छोटी मंदिरी ठुक्वाई लो इहा कोना में। .... घर अला-बला से बच रहत है। .....बहू, हम कहें सब अच्छा है। पर तुमार घर में एक ठो मंदिर नाही। .... पूर्वोत्तर कोने में मंदिरी बनवाई लो। अच्छा रहेगा। .....और हाँ बहू, तुम भी विचार कर लो। एक ठो मंदिर, छोटा ही सही, बनवाय लो। अच्छा रहेगा। ...बहू, अबकी वापस आऊ तब तक मन्दिर बनवा लेना।"

तभी अपूर्वा भी रुनझुन करती पास आ खड़ी हुई। मुझे उसकी रुनझुन में मंदिर की घण्टियाँ सुनाई देने लगीं। असीम श्रद्धा से भरा मेरा दिल कह उठा- "प्लीज़, वापस आ जाओ माँ। घर वापस आ जाओ। लो बन गया यह भी मंदिर वाला घर।"

000

कोठी मिर्ज़ा सिंह

ज्योत्सना सिंह

शहर के आख़िरी छोर पर बनी यह कोठी पंडित अलोपिदीन की है। पूरे शहर की यह सबसे बड़ी कोठी है। कोठी का नाम है 'कोठी मिर्ज़ा सिंह"। अब कोठी पंडित जी की, नाम मिर्ज़ा जी का और साथ में सिंह भी, बड़ा ही घाल-मेल है। यह कहिए कि यहाँ पर पूरा हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई वाली कहानी दिख रही थी।

पुश्तैनी कोठी होते हुए भी इसे पुश्तैनी नहीं कह सकते। मेरी बात यक़ीनन आपको बड़ी अजीब ही लग रही होगी, किंतु क्या करूँ यही सच है। चलिए पूरा सच उजागर करते हैं।

पंडित अलोपिदीन, दीन-हीन ब्राह्मण परिवार से थे। उनकी ईमानदारी और मज़बूत सेहत को देखते हुए शहर के 'ठाकुर मिर्ज़ा सिंह साहेब' ने उन्हें अपनी रियासत का ज़िल्लेदार बना दिया और दस रुपया तनख़्वाह भी निश्चित कर दी। पंडित जी के घर भी दोनों जून तवा चढ़ने लगा। महतारी-बाप को भी लगने लगा बड़ी रईसी के दिन आ गए हैं। छोटे भाई-बहन जो दिन भर सीधा इकट्ठा करते थे, उसमें भी वे सब कोताही करने लगे। काहे से कि उनके बड़के भैया अब ठाकुर साहब की कोठी में ज़िल्लेदार हैं। भैया का दबदबा ठाकुर साहब की पूरी रियासत पर था और ठाकुर साहब दो-चार शहर के जाने-माने नाम थे। रियासत इतनी थी पर उसे सँभालने वाला कोई वारिस नहीं था। जो भी कमाई आती उसे भोगने वाले मिर्ज़ा साहेब अकेले ही थे।

गाँव-घर के पुराने बुज़ुर्ग बताते हैं कि मिर्ज़ा साहेब अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे वह भी बड़ी मान-मनौवल से पैदा हुए थे। एक बार कोई पीर-फ़क़ीर कोठी पर आए थे और इनकी अम्मा के सिर पर अपनी झाड़ू नुमा झाड़न से आशीर्वाद दे गए थे, साथ ही कह गए थे-" गोद ज़रूर भरेगी ठकुराइन, चार कोस नंगे पाँव चलकर पीर मिर्ज़ा की मज़ार तक मियाँ-बीवी जाओ और जब साहेबज़ादे पैदा हों तब उनका नाम मिर्ज़ा के नाम पर ही रखना नहीं तो अनर्थ हो जाएगा।" भरे जेठ के महीने में ठकुराइन और ठाकुर नंगे पाँव चलकर मिर्ज़ा पीर बाबा की मज़ार पर माथा टेकने पहुँचे। अब पूजा तो आती थी लेकिन सदक़ा कैसे करना है इस बात से अनभिज्ञ थे। लेकिन मन में प्रार्थना के भाव बड़े सच्चे और श्रद्धा से भरे हुए थे। नंगे पाँव चलने से ठकुराइन के तलवे छालों से भर गए। अभी वे छाले पूरी तरह से सूख भी नहीं पाए थे कि उनके पाँव भारी हो गए। फिर क्या था आस्था ने विश्वास पर इतनी गहरी पैठ जमाई कि जन्म के बाद नामकरण संस्कार में पंडित जी ने कुंडली बनाकर 'स' अक्षर से नाम रखने की सलाह दी। लेकिन ठकुराइन अड़ गईं-"हम तो पीर साहब के नाम पर ही नाम धरेंगे।" ठाकुर साहब की स्थिति यह कि नाम मुसलमानी रखें तो समाज से क्या कहें और न रखें तो ठकुराइन से क्या कहें? अंत में जीत महिला शक्ति की हुई और नाम रखा गया 'मिर्ज़ा', ठाकुर साहब ने उसमें संशोधन करते हुए उसे कर दिया 'ठाकुर मिर्ज़ा साहेब' इस तरह 'स' शब्द से ठाकुर साहेब हुए मिर्ज़ा।

ठाकुर मिर्ज़ा साहेब बड़े लाड़-प्यार से पाले गए। लेकिन अमीरी के शौक़ उनमें पनप ही नहीं रहे थे। बचपन में अति स्नेह पाकर ज़िद्दी तो हो गए पर ज़िद्द भी अनोखी कभी किसी तिनके भर के लिए, तो कभी किसी रत्ती भर के लिए ज़िद्दिया जाया करते। सात्विक भोजन का स्वाद रखते मांस-मछली के नाम से भी उन्हें उबकाई आने लगती। इतनी एड़ियाँ रगड़ने के बाद की औलाद के ऐसे हालात देखकर बड़े ठाकुर साहब का दिल बैठा जा रहा था। इतनी बड़ी रियासत आख़िर कौन सँभालेगा? जब तक आवाज़ में वज़न न हो और स्वभाव में रौब न हो तब तक कहाँ सँभल पाती हैं रियासत और ठकुराई।

ज्योत्सना सिंह
एम्ब्रोसिया बी-1701, ओमेक्स रेसीडेंसी II,
सेक्टर 7, गोमती नगर एक्सटेंशन,
लखनऊ, यू पी- 226010
मोबाइल- 9838600046
ईमेल- singhjyotsana1968@gmail.com

किंतु ठकुराइन बहुत ख़ुश रहतीं, कहती- "पीर-फ़क़ीर के आशीर्वाद से मिले हैं हमें मिर्ज़ा तो वैसे ही फ़क़ीरी है स्वभाव में।" ठाकुर साहब यह सुनते तो उनके तन-बदन में आग लग जाती। कहते तो न किसी से मगर सोचते ज़रूर कि इससे तो कोई न होता तो हम कोई रौबेला ठाकुर गोद ही ले लेते। इसी सोच में उन्होंने एक जुगत भिड़ाई और मिर्ज़ा की मूँछों की रेंके फूटते ही उन्होंने उनकी लगन पत्रिका बनवा ली। अबकि बार लगन पत्रिका बनाने वाले पंडित ने ठाकुर साहब की सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। पंडित जी ने कहा-"मिर्ज़ा साहब की कुंडली में तो विवाह का योग ही नहीं है।" बड़े ठाकुर ने उन्हें तगड़ी दान दक्षिणा दी और मुँह बंद रखने की कड़क सलाह दी। फिर ख़ुद ही बहु की तलाश शुरू कर दी। इधर उनकी तलाश पूरी हुई उधर ठकुराइन की इहलीला समाप्त हो गई। ठकुराइन के जाने का तेरह दिन का शोक जैसे ही पूरा हुआ वैसे ही मिर्ज़ा के सिर मौरी रख दी गई। मिर्ज़ा मना करते रहे पर ठाकुर साहब भावनाओं की तुरुप चाल खेल गए-"ठाकुर मिर्ज़ा साहेब, बिन घरनी घर भूतन डेरा। अब हम तो इस उम्र में नई सेज सजा नहीं सकते इसलिए साहेब आप ही मोर्चा सँभालो।"

मिर्ज़ा मन को कुचलकर घोड़ी चढ़ गए और पहली बार तलवार पकड़कर ससुराल के लिए चल पड़े। बड़े ठाकुर साहब यह सोचकर ख़ुश कि उन्होंने बाज़ी मार ली। विवाह के तीन माह बीत गए थे। बड़े ठाकुर ख़ुश थे कि चलो देर-सबेर परिवार का नाम लेवा आ ही जाएगा। अपने मन में मंशा बना ली कि वह उसे शुरू से ख़ूँख़ार ठाकुर बनाएँगे। 'मन चेती होए नहीं, प्रभु चेती तत्काल।' वाली कथा को चरितार्थ करते हुए ठाकुर मिर्ज़ा साहेब एक दिन सब कुछ छोड़-छाड कर गौतम बुद्ध की राह पर निकल लिये। बहुत कारिंदे दौड़ाये गए; लेकिन मिर्ज़ा न जाने कौन सी राह निकल लिए थे कि वह मिले ही नहीं। बड़े ठाकुर के लिए अब उनकी बहू बंजर भूमि सी हो गई। लेकिन करते भी क्या? ख़ुद को रियासत के काम-काज में यह सोचकर उलझा दिया कि कभी तो मिर्ज़ा लौटकर आएँगे तो सब सँभाल लेंगे।

वक्त बीतने लगा किंतु मिर्ज़ा का अता-पता नहीं लग रहा था। उम्र के दौर के चलते बड़े ठाकुर भी शिथिल रहने लगे। एक दिन ख़ुद को बहुत समझाया और सुंदर विचारों के तहत मन बनाया और अच्छा-सा घर-वर देखकर अपनी बहू के हाथ पीले कर दिये। ससुर ने पिता का फ़र्ज़ निभा दिया। इधर बहू के हाथ पीले हुए उधर साल भीतर मिर्ज़ा अपने वैराग से वापस आ गए। अब बड़े ठाकुर के ऊपर वज्रपात हुआ। मिर्ज़ा के आने की ख़ुशी और बहू ब्याह देने का ग़म वे दिल से लगा बैठे। मिर्ज़ा ने पिता की हालत देखी तो पूछ बैठे कि उन्हें किस पीड़ा ने जकड़ रखा है। इस बार बड़े ठाकुर ने सिर्फ़ अपनी जायदाद की ही बात कही। मिर्ज़ा ने भी सच्चे पुत्र की तरह वचन दिया कि वह जायदाद का पूरा ख़याल रखेंगे और उन्होंने अपना वचन पूरी शिद्दत से अपने जीवन के अंत तक निभाया भी।

अरे, आप लोग क्या सोच रहे हैं कि मैं पंडित जी की कोठी की गाथा कहते हुए भटक गया हूँ। ऐसा नहीं है। कोठी के नाम की चर्चा आई तो ठाकुर साहेब तो स्वयं ही आ गए। चलिए अब पंडित अलोपीदीन की गाथा तक आपको ले चलते हैं।

पंडित का डील-डौल मज़बूत पहलवानों जैसा था। ईमान खरे सोने सा पक्का। मिर्ज़ा से जायदाद का तिनका भी न सँभाला जाता था। जिसे देखो उन्हें चूना लगाकर निकल जाता। जब तक वह अपनी ठगी को महसूस करते तब तक बात आई गई हो गई होती।

इधर एक दिन पंडित अलोपीदीन अपनी ग़रीबी और भूख से आजिज़ आकर टीले से कूदकर अपनी जान देने जा रहे थे कि उन्होंने देखा कोई है जो टीले के नीचे खाई में एक पत्थर के सहारे लटका है और अपनी जान बचाने के लिए ईश्वर से गुहार लगा रहा है। आनन-फ़ानन में अलोपीदीन ने उन्हें बचाने के लिये अपनी जान की बाज़ी लगा दी। वह तो वैसे भी जान हथेली पर लिये घूम रहे थे। कड़ी मशक़्क़त के बाद जब लटके हुए इंसान को पंडित जी बाहर लेकर आए तब उन्हें देखकर उनके हाथ-पाँव ठंडे पड़ गए, यह तो शहर के ठाकुर मिर्ज़ा साहेब थे। पंडित जी डर गए कि कहीं कोई उन्हें ही गुनहगार न समझ बैठे क्योंकि मिर्ज़ा साहेब बाहर आते-आते बेहोश हो गए थे।

डर के मारे अलोपिदीन उन्हें अपने घर ले आए जब उनकी अम्मा ने कोई पत्ती पीसकर पिलाई तब कहीं जाकर मिर्ज़ा को होश आया। हाथ जोड़कर पूरा परिवार खड़ा हो गया और राम जोहार करने लगा। अलोपीदीन की अम्मा बोली- "मालिक, हमाए लारिका ने आपको खाई में नाई गिराया वह तो आपका बचाए के लई आवा है। मुला शहर भर मा ख़बर उड़ी है कि कौनों ने आपको खाई में धक्का दे दिया है। आपके नौकर आपकी तलाशी में लगे हैं।" मिर्ज़ा तो जान रहे थे कि असल माज़रा क्या है।

हुआ यह था कि उनकी भूतपूर्व पत्नी के पतिदेव आए और बड़ी चिरौरी करके मिर्ज़ा को अपने गाँव ले जाने को तैयार कर लिया। उनका कहना था कि उनकी पत्नी माफ़ी माँगना चाहती है कि उसने बिना आप से आज्ञा लिये शादी कर ली। मिर्ज़ा को कोई मलाल ही न था लेकिन उनके दिल पर भी एक बोझ था कि उन्होंने अपना गृहस्थ धर्म सही से नहीं निभाया तो वह भी माफ़ी माँगने के लिए उनके साथ चल पड़े। उनके ख़िलाफ़ इतनी बड़ी साज़िश है वह यह जान ही नहीं पाये। आख़िर काग़ज़ी तौर पर वह अभी भी उनकी पत्नी ही थी। अब राम जाने उन पति-पत्नी में से किसके दिमाग़ की यह उपज थी। सब कुछ जानते हुए भी बिना किसी अदावत के मिर्ज़ा अपनी कोठी लौट आए और अपने राज-काज में लग गए।

हाँ, उन्होंने पंडित अलोपीदीन को अपना ज़िल्लेदार बना लिया और निश्चिंत होकर अपना जीवन यापन करने लगे। पंडित अलोपीदीन इतने ईमानदार थे कि अपनी तनख़्वाह छोड़कर बख़्शीश के तौर पर कुछ भी लेना पसंद नहीं करते थे। मिर्ज़ा साहेब चाहते थे कि उनकी जायदाद का एक टुकड़ा पंडित जी के नाम हो जाए ताकि उनके दिन भी बहुर जाएँ लेकिन पंडित जी विनम्रतापूर्वक अपनी कमाई लेते और घर का रस्ता लेते।

ठाकुर मिर्ज़ा साहेब ने उन्हें एक खेत की

खुदाई का काम सौंपा। उसमें चाँदी के सिक्कों वाला घड़ा निकल आया वह उसे लेकर मिर्ज़ा की सेवा में उपस्थित हुए। मिर्ज़ा ने कहा- "तुम्हें मिला है तुम रखो।" पंडित जी ने सपाट सा जवाब दिया-"सरकार, ज़मीन आपकी तो उसकी हर चीज़ आपकी।" मिर्ज़ा के दिल में पंडित जी का सम्मान और बढ़ गया। महीना भर बाद उन्होंने पंडित जी से कहा-"पंडित जी, आप की झोपड़ी की खुदाई करवा डालिए वहाँ एक मंदिर बनवाना है।" सरकार का हुक्म पंडित जी के लिए प्रभु वचन। घर आए तो सबने खरी-खोटी सुनाई कि जो सरकार देते हैं वह तो लेते नहीं और पुरखों की बनाई झोपड़ी भी उनकी नज़र करने को तैयार हैं। अम्मा ने बहुत रोना-पिटना मचाया पर अलोपीदीन ने एक न सुनी और झोपड़ी की खुदाई शुरू कर दी साथ ही अम्मा को वचन दिया कि कल तक वह नई झोपड़ी का इंतज़ाम कैसे भी कर लेंगे। झोपड़ी की खुदाई शुरू हुई थोड़ी ही खुदाई के बाद उसमें से ढाई किलो सोने का एक साँप निकला। घर वालों के ख़िलाफ़ जाकर अलोपीदीन उसे भी लेकर मिर्ज़ा साहेब के पास पहुँचे। मिर्ज़ा ने सब सुना और मधुर मुस्कान के साथ बोले-"पंडित जी इसे मैं कैसे ले सकता हूँ? यह तो आपकी ज़मीन से निकली हुई चीज़ है। आपके नियमानुसार यह आपकी ही अमानत है।"

अलोपीदीन नतमस्तक होकर ठाकुर मिर्ज़ा साहेब का बार-बार अभिनंदन करके घर आए और शहर के आख़िरी छोर पर अपनी सुंदर सी कोठी बनवाई और अपनी अम्मा को दिया वचन पूरा किया लेकिन कोठी का नाम उन्होंने ठाकुर मिर्ज़ा साहेब के नाम पर ही रखा। इस तरह पंडित की कोठी मिर्ज़ा और ठाकुर के नाम के साथ प्रचलित हुई।

मिर्ज़ा कोठी देखकर मुस्कराए और सोचने लगे कि- "मुझसे भी बड़ा ज़िद्दी है यह पंडित। जान बचाने की क़ीमत मैं इस तरह भी न अदा कर पाया।" वक्त के साथ न ठाकुर मिर्ज़ा साहेब रहे न पंडित अलोपीदीन! बस रह गईं तो शहर में दो कोठियाँ एक वीरान और एक दिये-बाती वाली।

000

लघुकथा

जनम जनम का साथ

सुभाष चंद्र लखेड़ा

चाँद मेरी भी फ़ेसबुक मित्र हैं। जी हाँ, वही चाँद जो चकोर जी की पत्नी हैं। पिछले कुछ दिनों से वे अपनी और चकोर जी की ख़ूबसूरत युगल तस्वीरें नियमित रूप से फ़ेसबुक की नई सुविधा स्टोरी में पोस्ट कर रही हैं। वे अपनी इन तस्वीरों के साथ जिन गानों की क्लिप लगाती हैं, उनके बोल सुनकर मुझे मित्र चकोर की क़िस्मत से ईर्ष्या होने लगी है।

चकोर जी ने पिछले ही दिनों बताया कि उन्होंने उम्र के छिहत्तरवें वर्ष में प्रवेश किया है। जीवन के उत्तरार्द्ध में भी चाँद भाभी उनको कितना दिलोजान से चाहती हैं, इसका अंदाज़ा आप उन गानों के बोल से लगा सकते हैं जिनकी ऑडियो क्लिप चाँद भाभी अभी तक चकोर जी और अपनी युगल तस्वीरों के साथ लगा चुकी हैं। एक तस्वीर में उन्होंने 'चले थे साथ मिल के चलेंगे साथ मिलकर' गाने की क्लिप लगाई थी तो उसके बाद की किसी तस्वीर में 'जनम जनम का साथ है तुम्हारा हमारा' गाने की ऑडियो क्लिप लगाई थी। इधर कल उन्होंने 'जनम जनम का साथ है निभाने को सौ-सौ बार मैंने जनम लिये' गाने की क्लिप लगाई थी।

ख़ैर, आज सुबह जब मैंने चकोर जी के प्रति चाँद जी के इस अथाह प्यार की चर्चा उनके एक क़रीबी मित्र से की तो वह बोला- "चाँद जी का इतना प्यार होना स्वाभाविक है। घर में खाना बनाने से लेकर झाड़ू-पोंछा-बर्तन आदि सभी कुछ तो कई वर्षों से चकोर ही कर रहे हैं। ख़ुद ही सोचो। चकोर जैसे पति का जनम-जनम का साथ हो- ऐसा भला कौन महिला नहीं चाहेगी ?"

000

सुभाष चंद्र लखेड़ा,
सी- 180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर- 7
प्लाट नंबर- 17, द्वारका,
नई दिल्ली - 110075
ईमेल- subhash.surendra@gmail.com

स्टील का कप

ममता त्यागी

"हेलो, लगता है तुम्हारा पहला दिन है यहाँ ? आवाज़ पर वह चौंकी।

"जी, पहला ही दिन है। तभी तो उलझ सी रही हूँ, कुछ समझ नहीं आ रहा। इधर-उधर देख रही भयग्रस्त सी हिरणी जैसी आँखों वाली सकुचाई सी, तेल लगे बालों को कसकर चोटी में बाँधे हुए, साँवली सलोनी सी लड़की ने जवाब दिया।

"अरे, कोई बात नहीं, सबके साथ ऐसा होता है। आओ मेरे साथ, मैं तुम्हें सब दिखा और समझा देती हूँ।" आँखों पर सुनहरे फ्रेम का चश्मा पहने, खुले लहराते रेशमी बाल, जींस और कुर्ता पहने, कंधे पर बैग लटकाए ग़ज़ब की आत्मविश्वासी प्रतीत होती उस लड़की ने कहा।

"बाई द वे मुझे रश्मि कहते हैं, यहाँ सेकंड इयर की स्टूडेंट हूँ।" लड़की ने तपाक से अपना परिचय दिया।

"और तुम ?"

"जी मैं दिया हूँ, मैं भी सेकंड इयर की स्टूडेंट हूँ। यहाँ आज ही मेरा दाख़िला हुआ है।"

"कहीं बाहर से आई हो ?"

"जी कानपुर से, वहाँ फ़र्स्ट इयर कम्प्लीट किया था फिर पिताजी का तबादला यहाँ देहरादून हो गया तो हम सब भी साथ आ गए।"

"रश्मि ! कहाँ रह गई हो ? जल्दी करो कैंटीन नहीं चलना क्या ?" सामने से लड़कियों के झुंड में से किसी ने पुकारा।

"तुम लोग चलो, मैं ज़रा इनकी मदद करके थोड़ी देर में आती हूँ।"

"लो भई, हो गया काम। रश्मि द ग्रेट तो अब मिलने से रही हमें।"

"आप चली जाइए, आपकी सहेलियाँ नाराज़ हो जाएँगी। हम मैनेज कर लेंगे।"

"अरे कोई नाराज़ नहीं होंगी, डोंट वरी ! इनका और हमारा तो यह रोज़ का क़िस्सा है। अब तुम यहाँ नई हो, हमारी क्लास मेट हो तो तुम्हारी मदद करना हमारी ड्यूटी बनती है।"

"आओ चलो, देखो यह जो सामने बिल्डिंग दिखाई दे रही है यह लाइब्रेरी है, उसके पीछे की तरफ़ सारी लैब्ज़ है और यह...!" रश्मि एक घंटे तक दिया को पूरा कॉलेज घुमाती रही।

"और यह रही हमारी कैंटीन, फ्री पिरीयड में यहीं जमती है महफ़िल हमारी। आओ तुम्हें बाक़ी सब से मिलवा दूँ।" सकुचाई सी दिया रश्मि के साथ साथ घूम रही थी, अब थोड़ा-थोड़ा डर भी कम हो रहा था उसका।

"गर्ल्ज़, इनसे मिलो ! यह है दिया कुमार ! आज इनका पहला दिन है।"

"हाय दिया, हेलो दिया !" सबने गर्मजोशी से स्वागत किया। और कैसे न करतीं आख़िर रश्मि जो परिचय करवा रही थी। रश्मि मिश्रा, सहेलियों की मददगार, कॉलेज की शान ! दिया भी बैठ गई, लड़कियाँ खुले दिल से ठहाके लगाती गप्पें लगाने में मस्त थी।

"अरे सुन, तुझे पता है प्रोफ़ेसर गुप्ता ने बोला प्रिया को कि आज उसे नोट्स देंगे पक्का !"

ममता त्यागी
411 ब्रायरली ड्राइव, एपेक्स, नॉर्थ कैरोलाइना- 27523, यूएसए
मोबाइल- 948 -218 -6178
ईमेल- mamta.t80@gmail.com

शमा शरारती हँसी हँस पड़ी, बाक़ी लड़कियाँ भी लोटपोट हो गईं।

दिया को उनकी बातें समझ नहीं आ रही थी, उसके चेहरे के भाव से स्पष्ट था।

"अरे, इसकी तरफ़ ध्यान न दो दिया, यह कुछ भी बोलती है। बहुत शरारती है, इसके चक्कर में मत आना, यह किसी को नहीं बख़्शती।" रश्मि ने मुस्कराते हुए कहा। धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाओगी।

तभी घंटी बजी, क्लास का समय हो गया था, सब की सब भागीं क्लास के लिए और जाकर जम गईं लेक्चर हाल में अपनी-अपनी कुर्सियों पर। रश्मि और उसकी सहेलियाँ बड़े से अर्धचंद्राकार लेक्चर हाल की पिछली पंक्ति में जा बैठीं।

दिया उनके साथ ही थी, थोड़े संकोच से उसने पूछा, "आगे की पंक्तियाँ भी तो ख़ाली हैं। आगे बैठेंगे तो ज़्यादा अच्छा समझ आएगा।"

"अभी तुम नहीं समझोगी, हमने हर एक प्रोफ़ेसर की क्लास के लिए अलग-अलग जगह तय की हुई हैं किसी ख़ास कारण से।"

तभी प्रोफ़ेसर मित्तल क्लास में आ गए, और आते ही अटेंडेंस लेकर चाक से बोर्ड पर लिखने लगे। इतिहास का एक विषय और कुछ तारीख़ें लिखी और एक नोटबुक लेकर नोट्स देने शुरू हो गए। दिया ध्यान से बोर्ड को देख रही थी कि पास बैठी रश्मि ने उसका कंधा थपथपाया, उसके हाथ में खुला टिफ़िन था जिसमें गुड़ और पराँठा था। "जल्दी से ले लो और आगे सरका दो", दिया हतप्रभ सी फुसफुसाई, "सर पढ़ा रहे हैं, क्लास में कैसे खाएँगे? ऐसे हम नहीं खा सकते।"

"इनकी क्लास में सब खाते हैं, वह तो बस बोलते रहेंगे और नोटबुक से नज़र भी ऊपर नही उठाएँगे। अब तुमने नहीं खाना तो तुम्हारी मर्ज़ी।" रश्मि ने फुसफुसा कर बोलते हुए टिफ़िन वापस खींच लिया।

क्लास ख़त्म होने पर रश्मि बोली, "दिया रानी, यह जो हमारे मित्तल सर हैं, पिछले दस सालों से इन्ही नोट्स को बोर्ड पर लिखकर और बोलकर लिखवाते चले आ रहे हैं। हमारे पास पुराने स्टूडेंट्स के नोट्स हैं ही और इतिहास में कुछ नहीं बदलता है। इनकी क्लास में तो हम सिर्फ़ अटेंडेंस के लिए आते हैं। मस्ती न करें तो पीरियड पूरा करना मुश्किल हो जाए, बस नींद ही आती रहे। इनका सब्जेक्ट रटना तो अपने आप ही पड़ेगा।"

समवेत ठहाका गूँजा और दिया हैरान सी खड़ी रह गई।

"दिया रानी ! धीरे-धीरे सब जान जाओगी कि किस प्रोफ़ेसर की क्लास में कितना ध्यान देना है।"

अगला पीरियड दूसरे लेक्चर हाल में था वहाँ जाकर पूरा समूह अगली पंक्ति में विराजमान था। साईकोलॉजी की क्लास थी, प्रोफ़ेसर एक यंग लड़का था बहुत लगन से नोट्स बनाकर लाता और पढ़ाता था। उस क्लास में सारी लड़कियों की लगन देखते ही बनती थी, ऐसा लगता था मानों आज ही कॉलेज टॉप करके मानेंगी।

कुछ ही दिनों में दिया भी पूरी तरह उस माहौल में एडजस्ट हो गई, सबके साथ ख़ूब मस्ती करती जम कर और पढ़ाई भी करती। रश्मि बहुत बुद्धिमान थी पर थोड़ी सी शरारती थी। एक दिन सब ख़ाली समय में धूप में लॉन में घेरा बनाकर बैठीं थीं, देखा सामने से अस्त-व्यस्त सा खादी का कुर्ता पजामा पहने प्रोफ़ेसर शर्मा आ रहे थे। गाँधीवादी विचारधारा के यह प्रोफ़ेसर साहब अर्थशास्त्र पढ़ाते थे, पर आधुनिकतावाद से बहुत परे थे। उन्हें सामने से आते देख शरारती रश्मि की नज़र उन पर गई और वह हँसते-हँसते लोट पोट होने लगी। किसी को कुछ समझ नहीं आया।

"अरे क्या हुआ ? पागलों की तरह क्यों हँस रही है, बता ना क्या हुआ ? "

"अरे देख ना...!" फिर ठहाका और रश्मि की आँखों से पानी।

"अब बता न क्या हुआ ?"

"बताती हूँ, बताती हूँ, सर का पजामा.... देखो ! एक और ठहाका .....!!"

"क्या हुआ सर के पजामे को ?"

इतनी देर में वह पास से गुज़रे और जैसे ही लड़कियों की नज़र पड़ी, देखा उनके सफ़ेद पजामे पर आधा चिपका एक स्टिकर लटक रहा था। बस फिर क्या था सब की सब पागल हो गईं, हँसते-हँसते। उम्र का यही दौर शायद सबसे मज़ेदार होता है, कॉलेज की लाइफ़ का भी कोई मुक़ाबला नहीं। बिना किसी बात के कभी भी हँसने का बहाना खोज लेना और फिर ठठाकर हँसना।

ये दिन ज़िंदगी के सबसे ख़ूबसूरत दिन होते हैं पर पखेरू की तरह पलक झपकते ही उड़ जाते हैं और फिर कभी लौट कर नहीं आते। ऐसे ही पंख लगाकर हँसते खिलखिलाते दिन गुज़र गए और पता ही नहीं चला, आख़री सेमेस्टर कब आ गया। ज़्यादातर सब सहेलियाँ मिलकर लाइब्रेरी या कॉलेज के लॉन में ही मिलकर पढ़ती थीं। एक दूसरे से नोट्स एक्स्चेंज किए जाते, एक दूसरे की सहायता की जाती। रश्मि को अर्थशास्त्र में कुछ समस्या आ रही थी, दिया ने उससे कहा कि वह शाम को उसके घर आकर पढ़ा देगी। शाम के समय दिया रश्मि के घर पहुँची। आई तो वह पहले भी थी उसके घर एक-दो बार पर बाहर से ही मिलकर चली गई थी। कभी भीतर नहीं गई थी। गेट खोलकर अंदर गई और दरवाज़े पर लगी घंटी बजाकर वह इधर-उधर देखने लगी।

बड़ा-सा शानदार घर, बाहर बालकनी में ख़ूब सारे गमले रखे थे, वहीं रखी एक ख़ूबसूरत सी मूर्ति पर दिया की नज़र पड़ी, जो कला का अद्भुत नमूना प्रतीत हो रही थी। तभी दरवाज़ा खुला।

"मेरे पापा के शौक़ हैं ये सब, बाग़वानी और तरह-तरह की मूर्तियाँ रखना।" रश्मि की आवाज़ पर दिया चौंक गई।

"बहुत सुंदर घर है तेरा।"

"अरे तू अंदर तो आ, बाहर ही खड़ी रहेगी क्या ?" भीतर पैर रखते ही दिया चकरा गई, बड़ा सा लिविंग रूम ग्रे कलर का लेदर का बड़ा सा सोफ़ा, उसी से मेल खाती कलात्मक मेज़ और ऊपर जगमगाता शैंडेलियर। सफ़ेद संगमरमर के फ़र्श पर ऐसा दामी क़ालीन बिछा था कि पैर रखते ही धँस जाए। खिड़कियों पर झूलते दामी सफ़ेद रेशमी पर्दे अपनी आभा दिखा रहे थे। काँच के शो केस में देश-विदेश के बेहतरीन शो पीस सजे रखे थे।

सोफ़े के दो तरफ़ की साइड टेबल्ज़ पर रखी सुंदर मूर्तियाँ, कुल मिलाकर भव्यता का प्रदर्शन लग रहा था। अपने दो कमरों के छोटे से घर के सामने तो यह घर महल सा लग रहा था दिया को।

दोनों बैठ गईं, तभी रश्मि की माँ भी आ गईं।

"माँ ! यह मेरी सहेली दिया है, दिया कुमार। आज मुझे पढ़ाएगी।"

"अच्छा-अच्छा, हाँ तुम्हारा नाम तो सुना है इससे कई बार।"

"क्या करते है तुम्हारे पिता ?"

"जी इरिगेशन में ओवेरसीयर हैं।"

रश्मि की माँ के चेहरे के भाव पल-पल परिवर्तित हो रहे थे।

"तुम बातें करो, मैं चाय मँगवाती हूँ, फिर पढ़ाई शुरू कर लेना।" कुछ ही पलों में वह फिर आकर सामने के सोफ़े पर बैठ गईं, न जाने क्यों उनकी दृष्टि से दिया बड़ी असहज सा महसूस कर रही थी। उसे लग रहा था निकल कर बाहर भाग जाए।

कुछ लोग कुछ न कहकर भी जैसे सब कुछ कह देते हैं, दृष्टि ऐसी लगती है मानों भीतर झाँककर एक्स रे उतार रहे हों। नौकर चाय लाकर रख गया, एक ट्रे में दो बोन चाइना के कप और एक स्टील का कप। रश्मि की माँ ने बड़ी सहजता से बोन चाइना का एक कप रश्मि के सामने रखकर दूसरा ख़ुद उठा लिया और बोलीं, "दिया, तुम भी चाय ले लो।" उनके इस आचरण से स्तब्ध सी दिया को कुछ समझ नहीं आया। रश्मि और उसकी माँ दोनों ने कप उठा लिए, वह बड़ा ही असहज महसूस कर रही थी।

"लो न चाय पियो", रश्मि की माँ ने पुन: कहा। उसने चुपचाप चाय पीनी शुरू कर दी पर मन।

"चलो अच्छा है थोड़ा रश्मि को पढ़ा दोगी तो कुछ अच्छे नम्बर आ जाएँगे। अब क्या है कि तुम्हारा तो कम नंबरों में भी काम चल ही जाएगा और नौकरी भी मिल जाएगी पर यह क्या करेगी? नाम के सामने मिश्रा जो लगा है, तो आसानी से नौकरी नहीं जुटेगी।

इसके पापा तो कई बार कहते हैं कि रश्मि को भला नौकरी करने की ज़रूरत ही कहाँ पड़ेगी ? इतना सब कुछ तो है हमारे पास, पर अभी तो इसे ही धुन चढ़ी है अपने पैरों पर खड़े होने की।" रश्मि चोर दृष्टि से दिया के पल-पल परिवर्तित भावों को देख रही थी।

"अब तुम जाओ माँ! हम भी कुछ पढ़ लें।" कुछ टालने की सी ग़रज़ से रश्मि बोली।

दिया भीतर ही भीतर कुछ टूटा हुआ सा महसूस कर रही थी, पर मुँह से कुछ न बोली। रश्मि के दोस्ताना व्यवहार के सामने उसने उसकी माँ के व्यवहार को उस समय नज़रंदाज़ करना ही उचित समझा। कई बार इंसान ऐसी परिस्थिति में पड़ जाता है जहाँ न भावों का उद्वेग सँभाला जाता है और न ही मुँह से शब्द निकाले जाते हैं। संस्कार परवरिश सब कुछ जैसे इस समय दिया का हाथ पकड़ कर खड़े हो गए। इतने आधुनिक रहन-सहन वाले घर में भी ऐसी मानसिकता से परिचय होना दिया के लिए एक वज्रपात की तरह था। किसी तरह ख़ून का घूँट पीकर उस पल को जैसे नकार दिया उसने। उसने तय किया कि अब इस घर में दोबारा कदम नहीं रखेगी, जहाँ आज के समय में भी व्यक्ति की पहचान उसके गुण से नहीं जन्म से परखी जा रही हो।

कुछ समय रश्मि की सहायता कर लौट तो आई दिया पर सोचने को विवश ही गई। घर आकर अनमनी सी रही, पर कहा कुछ नहीं किसी से हमेशा की तरह। ना ही कभी उसने इस बात को रश्मि के सामने रखा। रश्मि के लिए शायद बड़ा ही सामान्य था यह सब कुछ, घर में बचपन से यही देखती आई थी। ख़ुद कभी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया, पर माँ को कभी टोका भी नहीं।

दिया लौट तो आई रश्मि के घर से पर एक गहरा ज़ख़्म लेकर, और तब उसने तय किया कि वह ज़िंदगी में ऐसा कुछ कर के दिखाएगी कि इन जातिवाद का ढोल पीटने वालों के मुँह पर ताला पड़ जाए। बुद्धिमति तो दिया थी ही पहले से और उस पर कठोर परिश्रम, सत्तानवे प्रतिशत अंक लेकर अपनी ग्रेजुएशन पूरी की और जुट गई आई. ए. एस. की तैयारी में।

रश्मि ने भी सत्तर प्रतिशत अंक लिए पर अधिक मेहनत करना उसके वश में नहीं था। जल्दी ही अपने पैरों पर खड़े होने का विचार भी उसने त्याग दिया। उसे लगा कि इतनी मेहनत करके करना भी क्या था, शादी ही तो करनी थी।

पापा के इतने सारे पैसों से तो कहीं भी बढ़िया घर में शादी हो जाती। रश्मि की ऐसी सोच उसकी परवरिश का ही नतीजा थी। कुछ ही महीनों में रश्मि की एक ऊँचे पैसे वाले घराने में शादी तय हो गई और जल्दी ही वह अपनी ससुराल चली गई। रश्मि की ज़िंदगी बदल गई। वह भी अपनी माँ की तरह दिन-रात किटी पार्टी, शॉपिंग में व्यस्त हो गई। पुरानी सहेलियों से भी नाता जैसे टूट-सा ही गया, अब उसके लिए भावनाओं से स्टैंडर्ड अधिक महत्त्वपूर्ण था।

दिया की सोच तो आरम्भ से ही बहुत अलग थी, उसके लिए अपना कॅरियर बनाना अधिक महत्त्वपूर्ण था। जिसके लिए उसने बहुत मेहनत की। दिल्ली में रहकर आई. ए. एस. की कोचिंग भी की और उसकी मेहनत रंग लाई। पहली ही बार में उसने परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। मसूरी में हुई ट्रेनिंग ने तो दिया को जैसे निखार कर रख दिया। अब वह शर्मीली संकोची दिया नहीं पूर्ण आत्मविश्वास से कदम रखती दिया थी।

जब वह मसूरी में ट्रेनिंग कर रही थी तो सप्ताह में एक दिन देहरादून से ही एक महिला मिसेज़ गौड़ उनकी एकेडमी में टेबल मैनर्ज़ सिखाने की क्लास लेने आती थीं। गोरा दमकता रंग, चमकीले, सलीक़े से तराशे गए सफ़ेद केश, क़रीने से बँधी कलफ़ लगी साड़ी, यह सब उनके व्यक्तित्व को और भी आकर्षक बना देता थे। मध्यम वर्गीय परिवार की दिया के लिए एकेडमी में सब कुछ बहुत नया था। मिसेज़ गौड़ ने उसकी वहाँ बहुत मदद की। दोनों के बीच एक अपनत्व का रिश्ता बन गया था। मिसेज़ गौड़ बेहद सौम्य एवं कर्मठ महिला थी। मिलिट्री ऑफ़िसर की बेटी और मिलिट्री ऑफ़िसर की ही पत्नी। अपने पति के साथ जगह-जगह पोस्टिंग पर जाती रहीं, भारत के कोने-कोने की संस्कृति से उनका परिचय हुआ था। सीमा पर रीढ़ की हड्डी में गोली लग जाने से मिस्टर गौड़ के

शरीर का निचला हिस्सा बेकार हो गया था और अब व्हील चेयर के सहारे उनकी ज़िंदगी कट रही थी। मिसेज़ गौड़ शांत भाव से मुस्कराती अपने पति, घर और अपने काम को सँभाले हुए थीं। दिया उनसे बहुत प्रभावित थी और वह भी दिया से बहुत स्नेह करती थी।

संयोग से दिया की पोस्टिंग सहारनपुर हो गई, देहरादून से सहारनपुर का रास्ता कोई अधिक दूर भी नहीं था। दिया अक्सर वीक एंड पर उनके घर चली जाती और उनके साथ मिलकर मज़े करती। कभी मिस्टर गौड़ के साथ शतरंज की बाज़ी लगाती और कभी उनकी किचेन में उनके घर की सदस्य की तरह मिसेज़ गौड़ के साथ काम करती। ऐसे में कभी-कभी उसे रश्मि की माँ और उनका स्टील का कप ज़रूर याद आ जाता। तब उस दिन के अपमान की याद एक टीस की तरह उभर आती, पर वह मुस्कराहट के आवरण में भूल जाने की कोशिश करती। एक दिन रोज़ की तरह दिया अपने ऑफ़िस में बैठी ज़रूरी फ़ाइल देख रही थी तभी चपरासी ने आकर एक काग़ज़ उसके सामने रखा।

"मैडम जी, यह महिला आपसे मिलना चाहती हैं।"

"तुमने कहा नहीं कि अपॉइंटमेंट लेकर आएँ। अभी मैं व्यस्त हूँ।"

"जी कहा था। पर उन्होंने कहा एक बार मैडम को यह पर्चा दे दो।"

दिया ने नज़रें फ़ाइल से हटाकर एक नज़र काग़ज़ पर डाली, मिसेज़ रीमा मिश्रा। नाम कुछ परिचित सा लगा, कौन हो सकती हैं यह महिला ? उसने दिमाग़ पर ज़ोर डाला पर याद नहीं आया।

"मैडम जी क्या बोलूँ उन्हें ? जाने को बोल दूँ क्या ?"

"नहीं, आने दो अंदर।" दो मिनट के बाद दरवाज़ा खुला, व्यक्तित्व से एक दबंग सी महिला चेहरे पर संकोच और पीड़ा के से भाव लिए खड़ी नज़र आईं।

"जी कहिए, आप क्यों मिलना चाहती हैं?" दिया ने फ़ाइल दराज़ में रखते हुए पूछा।

"कैसी हो दिया बिटिया ?" बिटिया सम्बोधन से चौंक कर उसने ध्यान से महिला की तरफ़ देखा। सामने रश्मि की माँ खड़ी थीं।

"ओह आप ? आइए बैठिए।" संकुचित सी होकर वह सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गईं।

"कैसी हैं आप ?"

"तुम तो बहुत बड़ी अफ़सर बन गई हो।' स्वर में हल्की सी तल्ख़ी और व्यंग्य का पुट था।

"जी आंटी जी, कड़ी मेहनत कर यहाँ तक पहुँची हूँ कोटा लेकर नहीं।" दिया ने भी एक तीर छोड़ ही दिया रश्मि की माँ की तरफ़।

"रश्मि के क्या हाल हैं ? कहाँ है आजकल वह, क्या करती है ?"

"आगरा में है, उसे कुछ करने की क्या आवश्यकता है ? बहुत बड़े घर में शादी हुई है उसकी।" दिया पल भर को उन्हें देखती रह गई। वास्तव में कुछ लोगों की फ़ितरत कभी नहीं बदलती चाहे जो भी हो जाए। अहंकार दीप्त उनका चेहरा समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व सा कर रहा था जहाँ सिर्फ़ पैसे का बोलबाला है। गुणों की भावनाओं की शायद कोई महत्ता ही नहीं होती ऐसे लोगों की नज़रों में। पल भर को दिया विचलित सी हो गई फिर लगा नहीं वह उन जैसी कभी नहीं बन सकती। उसके संस्कार उसकी तहज़ीब उसे इस बात की इजाज़त नहीं देती। बिना कुछ कहे उसने मेज़ पर रखी घंटी बजाई। चपरासी अंदर आया।

"रामकिशन जी, चाय ले आइए। यह चाबी लीजिए और अलमारी से टी सेट निकालिए। चाय उसी में लाइएगा।"

"आंटी जी, आप बताएँ, कैसे आना हुआ?"

उनका चेहरा जो पल भर पहले अहंकार दीप्त था, बुझ-सा गया। नज़रें नीची कर साड़ी का पल्लू उँगली पर लपेटती बोलीं, "कुछ काम था तुमसे।" उनका स्वर बुझा- सा था।

"जी कहिए, मैं आपके लिये क्या कर सकती हूँ ?"

"ऐसा था बेटी कि रश्मि के पापा ने एक प्लॉट ख़रीदा था फ़ैक्टरी लगाने के लिए, उस पर कुछ लोगों ने नाजायज़ क़ब्ज़ा कर लिया है। हमने हर तरह की कोशिश कर ली पर पुलिस भी कुछ नहीं कर रही।"

"किस जगह पर है यह प्लॉट ?"

"यहीं सहारनपुर से बेहट जाने वाली सड़क पर है, साथ ही हमारा एक आम का बाग भी है। हम कुछ नहीं कर पा रहे बेटी। मुझे पता चला कि यह जगह तुम्हारे ही क्षेत्र में आती है।"

"हाँ यह मेरा ही क्षेत्र है। आप मुझे सभी ज़रूरी काग़ज़ात दीजिए। मैं देखती हूँ क्या समस्या है ? आप चिंता न करें, मेरे रहते आपको कोई परेशान नहीं कर सकता।" चपरासी इतने में कमरे में पड़े सोफ़े के सामने रखी मेज़ पर चाय लाकर रख गया। बड़ी सी ट्रे में मिठाई, नमकीन के साथ ख़ूबसूरत केतली में चाय और क़रीने से रखे सुनहरी किनारी के दो क़ीमती कप।

"आइए चाय पीते-पीते बात करते हैं।"

दोनों उठकर सोफ़े पर बैठ गईं। उन्होंने एक नज़र चाय की ट्रे पर डाली।

"बड़े ठाठ हैं तुम्हारे तो, बहुत बड़ा ऑफ़िस मिला है।"

"जी आंटी।"

"मुझे तो जब पता चला कि तुम यहाँ कलेक्टर बनकर आई हो तो बड़ी ख़ुशी हुई। वैसे बुद्धिमान तो तुम हमेशा से ही थीं।" दिया बिना कुछ बोले मुस्कराते हुए चाय कपों में डालने लगी।

चाय का एक कप उठाकर उन्हें देते हुए न जाने क्यों अपमान के दंश में वर्षों से झुलसती दिया आज स्वयं को रोक ना सकी, "आंटी जी आप इस कप में चाय पी लेंगी ना ?"

उन्होंने कुछ विस्मित सी होकर प्रश्नसूचक दृष्टि उठाई।

"मेरे पास कोई स्टील का कप नहीं होता आंटी, मेरे सभी ख़ास मेहमान मेरे साथ इन्हीं कपों में चाय पीते हैं। मुझे लगा आपको कोई एतराज़ न हो।"

सहसा उन पर वज्रपात सा हुआ और उनका चेहरा शर्म से झुक गया। उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला, कहतीं भी क्या ?

सामने बैठी आत्मविश्वासी कलेक्टर दिया की बात का कोई जवाब ही उनके पास नहीं था।

000

इन्द्रधनुष

प्रेमा श्रीवास्तव

"आषाढ़ मास की प्रथम फुहार तुम्हें मुबारक हो आकाश में उभरते इंद्र धनुष की ओर एक बार ज़रूर देख लेना। वहाँ मेरे प्रीत के ये इंद्र धनुषी रंग सिर्फ रंग नहीं हैं, ये तो मेरे मन के उमड़ते कोमल भाव हैं। वरुण जिन्हें सँभाल कर रखा है अपनी आँखों में बस एक तुम्हारे लिये। जल्दी आना।" एक छोटा सा पत्र लिख कर वह उठी। हाथ मुँह धोकर नीचे चली गई, जहाँ सारे लोग खाने पर उसका इंतज़ार कर रहे थे। प्रतिदिन इसी तरह एक पृष्ठ पर वह अपनी संग्रहित भावनाओं को कोरे कागज़ पर उतार कर अपने मन की गिरह खोल देती थी। पत्र वह अपने पास रख लेती थी कभी भेजती नहीं थी।

कुमकुम यह सब आत्मतुष्टि के लिये करती थी। प्रथम प्रेम में विभोर इस प्रकार वह हर रोज़ प्रेम पथ पर एक कदम आगे बढ़ाती चल रही थी। पत्र का ज़माना कब का बीत गया, उसकी जगह अब फ़ोन ने ले ली है, पर कुमकुम अब भी इस विधा को मान्यता देती है। वह कुछ भी लिखती तो पूरे मन से अपनी अभिव्यति में डूब कर। फ़ोन तो आधा-अधूरा व्यक्त कर पाता है। पत्र की ख़ूबसूरत विधा महसूस करने की होती थी और पत्र का इंतज़ार कितना रोमांचक कितना सुखद!

कुमकुम और वरुण के परिवार उत्तर प्रदेश के फ़ैज़ाबाद ज़िले के मूल निवासी थे। इनके पूर्वज भी एक दूसरे के परिवार के उतने ही क़रीबी थे जितनी आज की पीढ़ी है। एक दूसरे के सुख-दुख में खड़े रहने वाले आज की दुनिया में कम लोग ही देखने को मिलते हैं। कुमकुम अपने माता-पिता की एकलौती बेटी थी। वरुण अपने घर में दो बहनों के बीच एक भाई था। दोनों घरों में शिक्षा की प्रमुखता थी अर्थात् इन लोगों की गिनती उन दिनों भी शिक्षित संभ्रांतों की श्रेणी होती थी। आर्थिक रूप से भी ये ख़ानदानी रईस थे।

वरुण कुमकुम का मंगेतर था, और उसका पुराना पड़ोसी भी। दोनों परिवारों की आपसी पुरानी घनिष्ठता को सुदृढ़ करने का सर्वोत्तम तरीक़ा उनके अभिभावकों ने यह निकाला कि वरुण और कुमकुम को ही रिश्ते में बाँध दिया जाए। दोनों परिवार के लिये वह दिन अति सुखद था, जब विधिवत् उन दोनों की सगाई कर दी गई थी। उस दिन पहली बार कुमकुम ने सिर उठा वरुण को प्रत्यक्ष रूप से एक क्षण के लिये देखा था। अधिक देर तक वह देख नहीं पाई थी। पहली बार एक हलचल-सी महसूस की थी अपने अन्दर। झुक गईं थीं पलकें स्वत: स्वाभाविक नारी लज्जा के बोझ से। कुमकुम के मन में रच बस गया था वरुण उसी दिन उसी पल। एक ख़ूबसूरत नौजवान जिसे प्रतिदिन स्कूल से आते-जाते घर के बरामदे में बैठा पुस्तकों में उलझा हुआ देखा करती थी अक्सर। मन मोहक व्यक्तित्त्व जो कभी आँख उठा कर भी उसकी ओर देखता ही नहीं था। वे दोनों एक-दूसरे को ख़ूब अच्छी तरह जानते थे पर दिल कोरा कागज़-सा था; जिस पर न कोई चित्र अंकित था न कोई आड़ी- तिरछी रेखा। संभवत: उम्र अभी ऐसी नहीं

प्रेमा श्रीवास्तव
22635 सैन हुआन रोड, कूपरटीनों - कैलिफोर्निया 95014 यू.एस.ए
मोबाइल- (650)933-6627
ईमेल- prema_sris@yahoo.com

आई थी, जहाँ किताबों को छोड़ कुछ और दिखता हो। उसने घर में चर्चा सुनी थी कि यहाँ की पढ़ाई पूरी हो चुकी, अब शहर जाना ही होगा वरुण को आगे की ऊँची शिक्षा के लिये।

वरुण अपने मुहल्ले का एक शिष्ट, प्रतिभावान, होनहार तथा सुसंस्कृत नौजवान दिखने लगा था। लम्बाई लगभग छह फीट तीखे नाक नक्श, श्यामल वर्ण, उस पर घुँघराले घने काले बाल व्यक्तित्व में अनूठा खिंचाव। कितनी ही कन्याओं तथा उनके माता-पिता के बीच वह चर्चा का विषय बन चुका था। सबकी नज़र उस पर टिकी थी अपने घर में रिश्ते जोड़ने के लिए। वरुण कुमकुम के लिये कोई अजनबी नहीं था किन्तु उसके आन्तरिक व्यक्तित्व रोज़ के रहन-सहन से, मानसिकता से वह पूरी तरह अनजान थी। वह मन ही मन सोचती थी कि पढ़ने तो उसे भी एक दिन शहर ही जाना होगा। शिक्षित हो कर ही तो वरुण के सामने टिक सकेगी अन्यथा असमानता की टीस उसे ही सहनी पड़ेगी। कुमकुम पूरी मेहनत से अपनी पढ़ाई करती, ताकि शहर उसे भी भेजा जाए आगे पढ़ने के लिये। शिक्षा अथवा ज्ञान बराबर का यदि हो तब जीवन आनंदमय हो जाता है यह उसकी निजी सोच थी। पति-पत्नी के बीच ज्ञान का आदान-प्रदान स्वस्थ जीवन की शैली का परिचायक है। कुमकुम को पता था कि यह जीवन मिला है, कुछ कर दिखाने के लिये, अतएव इसे सार्थक बनाकर जीवन में कुछ सामाजिक योगदान करना भी नितान्त आवश्यक है। यह एक सामाजिक कर्त्तव्य भी है।

वरुण के मन में अपने पूज्यों के प्रति जो श्रद्धा और आदर भाव निहित था, उसके अतिरिक्त किसी अन्य चिंतन ने अपनी जगह बनाई ही नहीं थी। माँ शकुन्तला और पिता हरि प्रसाद का वह प्राण प्रिय था। अनुशासित भी कमाल का ! बड़ों का अनुसरण सुसंस्कृति का लक्षण समझ वही राह अपना लेता था बिना विरोध के। उसके व्यक्तित्व का यह कमज़ोर पक्ष था जिसे वह स्वयं भी जानता था। गुरुजनों की मर्ज़ी और ख़ुशी को अपना लेना उसके व्यक्तित्व की विचित्र सी विशेषता थी। कुमकुम के प्रति वह भावना विहीन था पर वह उसे स्वीकृत थी पूज्य जनों की ख़ुशी के लिये। दो व्यक्तित्व किन्तु सोच अलग-अलग। कुमकुम के जीवन में वरुण इन्द्रधनुषी रंग लेकर आया था। उन्ही भावनाओं से सजी थी वरुण पर कुमकुम की आस्था। एक पुरुष पर अर्पित उसकी शुद्ध भावनाएँ। वरुण का मन अब तक कोरा था। सगाई मात्र एक रिवाज था उसके लिये।

शहर जाकर वरुण अपने भविष्य निर्माण की राह पर चल पड़ा। चुनौतियाँ अनेक उसपर शहरी अंदाज़ में नवीन विचारों का फलित होना उसके अपने ही सुसंस्कारों में धीरे-धीरे परिवर्तन लाने लगे। संस्कारों की नई परिभाषा जीवन दर्शन का अपना नज़रिया पूर्ववत् नहीं रहा। बाहरी दुनिया से प्रभावित हो अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिये वरुण में बाह्य और आंतरिक बदलाव आने लगे। उसका व्यक्तित्व प्रभावित हुआ था मित्रों की संगत से। नए रंग में रंग कर वह पहले वाला वरुण न घर वालों के लिये रहा न ही कुमकुम के लिये। डॉक्टरी के अन्तिम वर्ष के समाप्त होने तक वह पूरी तरह शहरी बन गया, पूर्ण ज़िंदा दिल जो केवल अपने लिए बना हो, किसी और के हिसाब से तालमेल बैठाना उसके लिये असंभव था। शाकाहारी वरुण अब मांसाहारी था। सोच से लेकर रहन सहन तक उसने जीवन का दर्शन ही अपने अनुसार बना लिया जहाँ उसके व्यक्तित्व में "मैं" की प्रमुखता थी। कुमकुम और उसके इन्द्रधनुषी रंगों का महत्त्व उसके लिये गौण था। कुमकुम वरुण ने नाम से जीवित थी उसकी भावनाएँ वरुण नाम की धुरी पर परिक्रमा करती हुई एक परिपक्व व्यक्तित्व के रूप में उभरीं। कुमकुम अपने सारे कोरे पन्नों पर अनेकानेक उमड़े भावों को अक्षरों से कितने ही काल्पनिक चित्र सजाकर निहाल हो जाती थी। वरुण की बेरुख़ी उसे उसकी शिष्टता और लिहाज़ से पूर्ण शालीन सी लगी थी।

कॉल बेल इतनी सुबह सुबह ! किसने बजा दी ? 'कुमकुम दरवाज़ा खोलना'- पापा का आदेश सुन दरवाज़े की ओर बढ़ चली। घबराए से वरुण के पिता घर में दाखिल हुए। शर्मिन्दगी से लाचार रुंधे स्वर में मित्र को आग़ोश में भर बोले थे "मुझे माफ़ कर दे मेरे भाई, मैं तेरा मित्र नहीं तेरा क़सूरवार हूँ। मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कभी अपने वरुण का ऐसा रूप देखूँगा।" सन्नाटे में आ गई थी तब कुमकुम किसी भावी आशंका से बेचैन सी हो गई थी। एक सप्ताह से आया हुआ था वरुण, उससे मिलने तक नहीं आया। एक प्रश्न कौंध गया मन में, वरुण के लिये कुमकुम का प्रेम एकतरफा था और वह समझ न सकी? जो वरुण पिता की शान था वह एक झटके में उनकी साख मिट्टी कर दे, कैसे सहन कर पाते वे वृद्ध दम्पति! तड़प कर आए थे अपने सगे से बढ़ कर भ्राता तुल्य मित्र के पास।

कुमकुम को देख उन्हें ऐसा लगा जैसे उनकी अपनी बेटी को किसी ने बुरी तरह छला था, जिसमें कहीं न कहीं वह भी भागीदार थे। नया ज़माना नए कर्णधार जहाँ उनके लिये मात्र उनकी अपनी इच्छा सर्वोपरि थी, अन्य की संवेदनाओं के लिये कोई जगह नहीं थी नवीन परिप्रेक्ष्य में बढ़ती नई पीढ़ी के लिये। कुमकुम के पिता निर्भीक हो स्थिति की गम्भीरता और हल निकालने में कुशल थे। भावनाओं में बह किसी तरह का निर्णय ले लेना उन्हें स्वीकार नहीं था।

कुमकुम उन्हीं की बेटी थी, उन्हीं के जैसी होना भी लाज़मी था। प्राचीन युग की प्रेयसी वह नहीं थी कि किसी के ठुकराने पर भावुकता से प्रेरित हो जान कुर्बान कर दे। वह तो इक्कीसवीं सदी की सशक्त प्रेयसी थी, जो स्वाभिमानिनी थी, सहनशील थी, जो अपने बलबूते अपनी ज़िंदगी को नया स्वरूप देने में पूर्णतः सक्षम थी। वरुण से प्राप्त उपेक्षा मिश्रित अवहेलना झेल गई थी अपने फौलादी सीने पर। दुख नहीं हुआ होगा ऐसा तो हो ही नहीं सकता। प्रथम प्रेम की प्रथम शुद्ध भावों की अस्वीकृति! दर्द नहीं होगा सोचना भी एक प्रकार का अपराध होगा, किंन्तु कुमकुम का उसे अमृत समझ पी जाना आश्चर्य जनित सत्य था। ठोकर से आहत थी किन्तु दर्द के पिंजर से निकल खुले आसमान की शीतलता और ताज़गी उसे बटोरना था तो प्रयास उसने

शुरू कर दिया था। हार मानने वालों में से वह नहीं थी।

वैसे भी कुमकुम ने इन्द्र धनुषी रंगों में अपने सपने बुने थे। बरसात के बाद अक्सर आकाश में अर्ध गोलाकार सात रंगों से निर्मित इंद्र धनुष का प्रकट होना क्षणिक होता है स्थाई नहीं। भावनाओं के जिस रंग से उसने अपने सपनों के रंग देखे थे अल्पायु होंगे ही। भूल उसकी थी जो बिना दूसरे पक्ष जाने-समझे उसे पूरी जगह दे दी थी अपने जीवन में। ग़लती उसकी तो सुधारना भी उसे ही है। वह सोचती रही। कई दिनों तक कुमकुम अपने सोच विचार में डूबी रही। एक अनोखा निर्णय ले कर उसने अपने पिता को बता दिया। आधुनिक विचारधारा के उसके पिता और वरुण के पिता दोनों उसके साथ खड़े थे। वरुण से कुमकुम को कोई रंजिश नहीं। सपना उसने देखा था, प्रेम भी वरुण से उसने किया था, वरुण ने नहीं तब वह शिकवा किस से करे! प्रेम जबरन नहीं किया जाता। यह कोई बंधन नहीं जिसमें किसी को जकड़ा जाए।

कुमकुम ने ठान लिया था उसे भी मेडिकल ही करना है वरुण की तरह। कुमकुम के पापा उसे साथ ले कर लखनऊ गए। पुराना पर प्रसिद्ध मेडिकल कॉलेज था वह। दाखिले के साथ ही उसके रहने की पूर्ण व्यवस्था कर वह घर वापस लौट आए।

अवसर मिलने पर कुमकुम ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। परिश्रम और बुद्धि की युति अगर हो जाए तो परिणाम की उत्कृष्टता निश्चित है। कुमकुम ने सही समय पर अच्छे अंक से अपनी उच्च शिक्षा का अंतिम वर्ष पूरा किया। एक कुशल स्त्री विशेषज्ञ के रूप में उसको अपनी पहचान मिली। इस प्रकार लोक सेवा के इस अवसर का मान रख वह नवीन पथ पर बढ़ चली। लगन एक अनोखा शस्त्र है जिसको यह मिला उसमें क्षमता आ जाती है ऊँचाई तक पहुँचने की। कुमकुम अपनी आन्तरिक एवम् बाह्य स्थितियों पर काबू पाने का सतत् प्रयास करते हुये भी लक्ष्य पर टिकी रही। व्यक्तित्व की इस विशेषता के कारण एक विख्यात स्त्री विशेषज्ञ के रूप में चर्चित है। लोक सेवा एक धर्म है और जिसमें शान्ति मिले वह पूजा।

सालों गुज़र गए। कर्तव्य पथ पर चलते हुए। कभी न थकने वाली कुमकुम कुछ शिथिल सी दिख रही थी। अपनी पसंद की हरी प्लेन साड़ी में अद्‌भुत सौंदर्य बिखेर रही थी। करीने से सजा हुआ घर कुमकुम की विशुद्ध रचनात्मक कुशलता का परिचय दे रहा था यानी एक कुशल गृहणी होने का प्रमाण दे रह था। सोफे पर बैठी वह लगातार बरसते पानी के बाद के खुले आकाश को देख रही थी। लम्बे केश आधुनिक रूप से सँवरे किन्तु खुले हुए थे। मेघालय के प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच कुमकुम अपने छोटे से परिवार के साथ अब समय गुज़ार रही थी।

बरसात का मौसम तीन दिन से लगातार बारिश। दो घंटे पूर्व ही पानी का बरसना थमा था। आकाश भी साफ था। वह उठ कर कमरे में आ गई। बोझिल होती हुयी आँखें कब झपक गईं पता भी नहीं चला। स्वच्छ आकाश में वृहत् अर्ध गोलाकार सात रंगों से सुशोभित इन्द्रधनुष देख बच्चे फ़ोटोग्राफ़ी करते हुये चीख-चिल्ला रहे थे- कितना सुन्दर कितना प्यारा लग रहा है माँ, तुम भी देखो न!

कुमकुम ने सालों से यह दृश्य नहीं देखा था। उसके पास न तो समय था न ही प्रकृतिक दृश्यों में पहले जैसी अभिरुचि। पर उस दिन बच्चों की ख़ुशी में वह भी ख़ुश हो कर रंग बिरंगे इंद्रधनुष को निहार रही थी। शीघ्र ही उसके रंग फीके होते-होते ग़ायब होने लगे।

कुमकुम मुस्करा कर मन ही मन उन्हें विदा दे रही थी "गुड बाय" ठीक वैसे ही जैसे एक दिन वरुण के इर्द-गिर्द बुने सपनों के रंगीन इन्द्रधनुष को उसने सहजता से जाने दिया था। कहते हैं जाने वाले को कभी आवाज़ नहीं देना चाहिए।

कुमकुम एक सफल डॉक्टर थी। कितने ही सतरंगी संवेदनाओं से हारी, थकी, बिखरे लोगों के जीवन की मसीहा, पथ प्रदर्शक। "जो बीत गई वो बात गई" यह एक शंख नाद था उन साहसी लोगों के लिये जो सदा आगे की ओर देखना और बढ़ना चाहते हैं। कुमकुम ऐसे लोगों के लिये एक दृष्टांत थी।

000

लघुकथा

हेल्प

यशोधरा भटनागर

अर्द्धचेतन अवस्था! अधखुली आँखों से इधर-उधर देखा...शायद अस्पताल...हाथ-पैर सिकोड़ने की कोशिश में पूरी देह झनझना गई।

सुई की चुभन...दर्द की तरंग सी उठी...आँखें फिर मुँद गईं।

"ओह गॉड! न्यूज़ सुनी? कल रात ऑफ़िस से लौट रही युवती का गैंग..." पतली सी आवाज़ कहीं से कानों में पड़ी।

कुछ कौंधा....और कुछ तस्वीरें सामने बिखर गईं...ऑफ़िस से घर ही तो लौट रही थी वह। सुनसान सड़क...न जाने कैसे स्कूटर से गिरी और... वह काली शर्ट... बड़ी-बड़ी मूँछें... भेड़िए सी आँखें... आस-पास कोई नहीं।

तीव्र पीड़ा से छटपटाती ...ठंड से कंपकंपाती क्षत-विक्षत देह बनी वह चिल्लाई- "हेल्प! हेल्प! सड़क से गुज़रते चार लोग और आ जुटे... पर... उनमें कोई कृष्ण न था।

000

यशोधरा भटनागर
37 एच. आई. जी.
पॉयनियर पब्लिक स्कूल के सामने
मुखर्जी नगर, भीमा रोड
देवास, म. प्र- 455001
मोबाइल- 9425306554

क्वीन्स लैंड

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : आग़ाज़बीर

अनुवाद : सुभाष नीरव

आग़ाज़बीर
11906, स्ट्रीट नंबर -8/5,
आदर्श नगर
तहसील व ज़िला- भटिंडा
पंजाब 151003
मोबाइल- 94174 44202

सुभाष नीरव
78/2, शिवालिक अपार्टमेंट, फ्लैट
नंबर-12, पहली मंज़िल, के -1
एक्स्टेंशन, डी के रोड, मोहन गार्डन,
उत्तम नगर, नई दिल्ली -110059
मोबाइल- 9810534373
ईमेल- subhashneerav@gmail.com

ज़िंदगी के वे पल मैं कभी नहीं भूल सकती, जिन पलों में दुख झेलकर भी चट्टान बन खड़ी रही। इस आस और विश्वास के साथ कि एक दिन 'रानी' अवश्य बनूँगी।

"रानी... किस सोच के भँवर में पड़ गई?" सरबो यदि मुझे न झकझोरती तो मैं ख़यालों की चंपातोली में ही घूमती रहती।

"तेरा बंगाल तो अब पीछे छूट चला है... खींच ले तस्वीरें जो खींचनी हैं।" सरबो बोलती रही। शिवा खड़े रिश्तेदारों की मोबाइल पर तस्वीरें खींचता रहा और मैंने आँखों के कैमरे से समस्त खड़े परिवार को अंतर्मन में उतार लिया। इस प्रकार देखने से मेरी रूह को शांति मिलती गई। मेरी आँखें उन्हें देर तक निहारती रहीं, जब तक उनके चेहरों के अक्स मेरी आँखों से ओझल न हो गए।

ट्रेन बंगाल के स्टेशन गंगाराम पुर को पीछे छोड़ती पंजाब से मिलने के लिए एक विरहन की भाँति दौड़े जा रही थी। इंजन का हॉर्न मेरी तरह रो-रोकर अपने शहर से विदा हो रहा था। अपनों को छोड़ने का दर्द मशीनें भी प्रकट करती हैं, पर कोई समझने वाला तो हो। बारह साल का अंतराल कम तो नहीं होता। वक़्त की सुइयों पर अपनों से मिलने का कभी समय ही नहीं लिखा गया। अपनों को मिलने के लिए मैं तड़पती रही। मैं बंगाल जाने के बारे में सोचती थी, पर सब कुछ होने के बावजूद उड़ान न भर सकी। जब भी ऐसा सोचती, सभी सूखी लकड़ी की मानिंद तिड़-तिड़ कर जल उठते, उन्हें मेरा बंगाल जाना सहन न होता।

"ले, अब कौन-सा राज कुमार ढूँढ़ने चली है, अपने लिए?" सारी बूढ़ी स्त्रियाँ अजमेर कौर की सयानी बात सुनकर हँसने लगीं। किसी ने दो शब्द 'हाँ' के न कहे। स्कूल में चल रहे आँगनबाड़ी सेंटर में जहाँ मैं एक हैल्पर के तौर पर काम कर रही हूँ, वहाँ गाँव की सारी बूढ़ी स्त्रियों का जमघट लगा रहता है। जब बंगाल जाने की मेरी बात उनके कानों में पड़ी तो वे मुझे समझाने लगीं। सब ने अपने मन की बात सुनाई। इधर धन कौर अपना ही राग अलापने लगी, जिसमें उसका अपना स्वार्थ छिपा था, "रानी, जब तू बंगाल जाएगी न... मेरे चमकौर बेटे के

लिए भी ला देना कोई अपने जैसी... तेरा पूरा मान-तान करूँगी। याद रखना मेरी बात, भूलना नहीं। रंग-रूप की परवाह न करना। बस बेटी, अपने जीते-जी बहू का मुँह देख जाऊँ।" मैं 'हाँ-हूँ' करती रही। धन कौर मन में आशाएँ ले, घर को चल दी। कुछ अहसासों ने भी राहत दी।

जल कौर रब की रूह की तरह उपदेश देती कहने लगी, "बेटी रानी... मैं तो अपनों को मिलने पाकिस्तान जा आई... और तुझसे बंगाल नहीं जाया जाता। हो आ... लोग तो उड़ते पंखों को पंछियों की डार बनाते आए हैं और बनाते रहेंगे।" तड़प और डर दोनों बारी-बारी मेरे दिमाग़ में चलते रहे।

"तेरा बंगाल तो कंगाल है... और मैंने कह दिया एक बार... नहीं जाना, तो बस नहीं जाना।" सास के बोलों ने मेरे अंदर उठती सोच के पंख कतर दिए थे। मैंने कयास लगाया था कि गाँव की बूढ़ी स्त्रियों ने उसके कान कुछ अधिक ही भर दिए हैं। उसको अपने पुत्र के साथ निभाए रिश्ते पर ज़रा भी यकीन नहीं था। उसको यह चिंता सताती थी कि अगर कहीं रानी बंगाल चली गई, तो फिर शायद यह पंजाब लौटे ही न... अपने पुत्र का हँसता-बसता घर देखना हर माँ की हसरत होती है। मैं नौकरी करते हुए भयभीत-सी चलती-फिरती सोचती रहती। उन दिनों एक चुप मेरे चेहरे पर तनी रहती। यह चुप सभी ने देखी, पर इसे पढ़ा मेरे पापा जी यानी ससुर जी ने। फ़कीर बनकर दिलासा दे गए थे वे।

"अगर मेरी अपनी बेटियाँ दो चार महीने न आएँ तो मैं माथे पर हाथ धरकर इंतज़ार करने लगता हूँ। और तुझे तो भाई, यहाँ आई को बारह साल हो गए। मैं जानता हूँ सब कुछ। मैं ख़ुद समझाऊँगा सभी को। जा, तू मिल आ। तू ऐसी नहीं है, जैसा सभी सोचे बैठे हैं तेरे बारे में। और, जिन्दर को भी कहूँगा कि भेज दे रानी को।" ससुर के दिए इस हौसले के कारण ही मैं बिना पंख हवा में उड़ने लगी। अपनी धरती के सपने अब दिन में भी आने लगे थे। ढहती-बनती सोच को सौ हाथियों जितना बल उस समय मिला, जब शिवा स्कूल से लौटा और किताबें चारपाई पर पटकने के बाद धांय से मेरे गले लग एक पुत्र वाला फर्ज़ निभा गया, "मम्मी, मैं जाऊँगा तेरे साथ।" ऐसा लगा मानों मेरे स्तनों में दूध उतर आया हो। मैंने महसूस किया कि श्रवण अवश्य ही ऐसा होगा। यह बोझ मेरे दिल पर था कि वह अपनी जन्मभूमि और परिवार को देख कैसा महसूस करेगा?

शिवा का साथ होने के कारण मुझे अपने पति जिन्दर को मनाना और भी आसान हो गया। मान वह भी गया था, बग़ैर किसी आनाकानी और विरोध के। सरबो मेरी साथिन जो मेरे साथ हैल्पर के तौर पर काम करती है, वह भी मेरे साथ जाने के लिए तैयार थी।

स्कूल मास्टर द्वारा दी गई राशि और कुछ पहले से जमा करके रखे नोटों से मेरे हाथ गुलाबी-गुलाबी दिखने लगे। अपनों को याद करती, सपने ढहाती और बनाती, दिन में कितनी बार बंगाल हो आती। कभी बापू सड़कों पर बैठा भीख माँगता आँखों सामने आ खड़ा होता। माँ का चेहरा तो भुलाए भी न भूलता। माँ अँधी हुई दर-दर भटकती दिखती। खुले सफ़ेद बाल, न गले में चुन्नी और पैरों में चप्पल। बस, फटी धोती। मेरी आँखों के सामने अनायास काल दिखाई देता। यह सोच मैं घर के काम करते हुए एकाएक डर कर रुक जाती। डर पूरे शरीर को थर-थर कँपा जाता।

आख़िर, सामान बाँध लिया था उस दिन। और जब बंगाल की मिट्टी को जाकर चूमा तो कितने सारे मृत सपने एकाएक जीवित हो उठे। चलते-बैठते हर शै में अपना अतीत दिखाई देता। ...और पुराने ज़ख़्म नासूर बन बहने लगे। चंपातौली के सेठ माल्टदास की दुकान की ओर विशेष तौर पर गई। वह मेरी तरफ लालची और ग्राहकी निगाहें गड़ाकर देखता रहा। मेरे अंदर बारह साल से बदले की जो आग थी, वह अब लपटों में बदल गई थी। न चाहते हुए भी मैंने कहा, "सेठ! ये उठा तेरा उधार...।" माल्टदास बर्तन में रखे चावलों पर अपनी पारखी नज़रें दौड़ाता देखने लगा था।

"सेठ! चावल तो बेशक दो किलो और रख ले... पर इसके बदले मेरी...।" इसके आगे के शब्द 'लुटी इज़्ज़त लौटा दे' मेरे सीने में ही दफ़न होकर रह गए। मेरी आँखों की भाषा सेठ समझ गया। पहले तो शायद वह मुझे पंजाबी सूट पहना देख एक घुम्मकड़ पंजाबिन ही समझता रहा, पर जब मैं बंगला में बोली और अपना नाम अनीमा बताया, उसके चेहरे का रंग ही बदल गया। मैंने महसूस किया कि बारह साल पहले मेरे जिस्म को नोंच कर खाने वाले दृश्य उसे याद आ गए होंगे। वह हकला गया था। वह दोनों हाथ जोड़कर किए गए ज़ुल्म की माफ़ी माँग रहा था। इस इंसाफ़ की कचहरी में मैंने हार जाना ही बेहतर समझा। पाँच किलो की जगह सात किलो चावल लौटा कर मैं भार-मुक्त हो गई।

इधर ट्रेन रास्ता ख़त्म करती कोलकाता से पंजाब की तरफ बढ़ रही थी और उधर मेरी चेतना मुझे पीछे की ओर खींचे जा रही थी। हालाँकि कोलकाता स्टेशन से चलते ही बाहर का शोर बंद हो गया था, पर मन के अंदर का तूफ़ान अभी निरंतर जारी था। मैं चंपातौली के अपने मायके में सप्ताह भर बिता आई। उसका नक्शा दिलो-दिमाग़ पर घर बनाए बैठा था। तभी मेरी निगाह सामने खिड़की वाली सीट पर बैठे शिवा की जेब पर पड़ी। उसकी जेब में पाँच सौ का नोट तारे की तरह चमक रहा था। नोट से ज़्यादा कीमती इसमें छिपा मोह और प्यार था। माता-पिता के बाद यदि बच्चों से कोई दिल से प्यार करता है तो वह यक़ीनन दादा-दादी होंगे। शिवा मेरे पहले पति भार्गव की इकलौती संतान था। उसकी दादी अपने 'अंश' को देखने के लिए दौड़ी आई। औलाद की महक दादी तक भी पहुँच गई। सासू माँ मुझे अन्य सासों की तरह ही मिली। न मोह, न उतावली। उभरी हुई त्योरियाँ मेरी ओर तनी हुईं। मुझे शकी निगाहों के साथ सिर से पैर तक देखा उसने। पुत्र को देख अपने दिवंगत पुत्र भार्गव का अक्स उसमें ढूँढ़ने लगी। वह शिवा के अंगों को इस तरह चूमने और छूने में मस्त थी, ज्यों गाय अपने नवजन्मे बछड़े को जीभ से चाटती है। शिवा को देखते उसकी आँखों में चमक आ गई और चेहरे पर लाली उभर आई। चलने के लिए लाठी मिल गई हो जैसे। डूबती किश्ती को मानों सहारा मिल गया हो।

"बिलकुल भार्गव... वही आँखें...वही नाक और माथे में ज़रा भी फ़र्क़ नहीं। बोलता

बिलकुल भार्गव की तरह ही है।" पत्थर दिल औरत मोम बन पिघल रही थी। दादी का पोते के प्रति झुकाव और प्यार दर्शनीय था। दादी-पोते का मिलन देखने को जुटी भीड़ गुमसुम हो गई। चारों तरफ माहौल ग़मगीन हो गया। उसके मुँह से पहली बार मेरे लिए दो शब्द आदर और सम्मान में निकले, "आमी तोर रीन कोनोदिन शोध कोरते पारबो ना। तुई आमार छेलेर शेष सृतिटुकू जेभाबे आगले रेखेछिश।" (मैं तेरा ऋण कभी नहीं भुला सकती अनीमा...तूने मेरे पुत्र की आख़िरी निशानी सँभाल कर रखी है)। आँखों से टप-टप गिरते आँसू और चेहरे पर अपार ख़ुशी इस बात की गवाही भर रहे थे।

"चौल अनीमा, ग्रामे जाइ, जेखाने तूई भार्गव के बीए कोरे ऐशे छिलिश। (चल अनीमा, पौरी चलें, जहाँ तू भार्गव के साथ आई थी)। आज भी तुझे तेरा वह घर पुकार रहा है। बस, अब तू इंकार न करना।" सासू माँ ससुराल वाले घर पौरी गाँव चलने के लिए ज़ोर डालती रही। अपना नाम अनीमा सुन पहले तो मैं चौंक गई थी। मैंने ठान लिया, रानी से अनीमा नहीं बनना। वह मेरे आगे झोली फैलाए खड़ी थी। आज सारी बाज़ी मेरे हाथ में थी। मैं चाहती तो ठोकर मार सकती थी और चाहती तो हामी भरकर पुरानी राह पर चल सकती थी। पर मैं अपनी सीमा और मर्यादा न लाँघ सकी। भरे मेले और जुटी भीड़ में सास का निरादर न कर सकी।

"माँ गो जाके बीए कोरे ऐशेछिलाम, सेई एई संसार थेके बिदाई नियेछे, आर गीये की कोरबो?" (माँ जी... जिसके संग ब्याह कर आई थी, वह तो कब का चला गया। अब किसके आसरे जाऊँ?)। रोके हुए आँसू बह चले थे। आसमानी बिजली की तरह टीस शरीर के आर-पार हो गई, सूखे ज़ख़्म फिर हरे हो गए। सिसकियाँ भर रोती हुई का कलेजा मुट्ठी में आ गया। मुझे लगा, मैं अभी भी विधवा ही चली-फिरती हूँ।

"एक बार फिर सोच ले।" सास के स्वर में मिन्नत थी। लालची सास और शराबी पति भार्गव के तेवर मैं देख चुकी थी, वे मेरे मन-मस्तिष्क की दीवार पर से बहुत समय पहले ही उतर चुके थे। समय बीतने पर शरीर पर पड़े निशान तो मिट जाते हैं, पर मन पर पड़े निशान हमेशा गहरे और ताज़ा रहते हैं। मैंने 'न' कहकर मुँह घुमा लिया।

"माँ, बंगाली लोग कितने अच्छे होते हैं।" शिवा ने ऐसा सहज ही नहीं कहा था। यह तो उसको सप्ताह भर में मिला प्यार बोलता था। वह अपनी ददिहाल और ननिहाल जो देख आया था।

शिवा के लिए बंगाल रोमांच से भरपूर और स्वर्ग जैसा था, पर मेरे जीवन में सदा नरक रहा। न जी सकी, न मर सकी। बस, वक़्त की दी सज़ाएँ भुगतती आ रही हूँ... ख़ुशी एक लकीर भी न बन सकी। न अच्छा बचपन बीता और न जवानी। सोचा था, विवाह के बाद ख़्वाब पूरे करूँगी। मगर विवाह करवाया तो शराबी पति मिला। हर रोज़ भार्गव शराब पीकर क्लेश करता। ऊपर से सास दहेज लाने को कहती। दहेज में साइकिल लाने की उसकी माँग मैं कभी पूरी न कर सकी। उसने मेरे चरित्र पर शक किया। भार्गव से भी कई बार पिटवाया। वह मज़दूरी करने के लिए विवश करती। तरह-तरह के दोष लगाती। मज़दूरी का यहाँ मिलता भी कुछ न था। पसेरी आलू एक दिहाड़ी के या मुश्किल से दो किलो चावल, जिसे बेचकर बमुश्किल शिवा की ख़ातिर दूध नसीब होता। शराबी भार्गव मुझे बिना क़सूर के रोज़ पीटता। पेट में मारी गई उसकी लातें 'नन्हें जीव' की मौत का कारण बनतीं। यही वजह थी कि मैं चार बरस औलाद का मुँह देखने को तरसती रही। निर्मोही भार्गव को दो चीज़ें प्यारी थीं। पहली शराब और दूसरी स्त्री देह जिसको उसने जी भरकर भोगा।

जब शिवा ने इस दुनिया में पैर रखे, चारों तरफ ख़ुशी का माहौल था। पर इस ख़ुशी में वह अंधा हुआ लगातार शराब पीता रहा। उस दिन मैं नहाकर हटी तो मेरी माँ ने मेरी बाँहों की चूड़ियाँ एक-एक करके तोड़ डालीं। मैं पल में ही शराबी पति की विधवा हो गई जो हमेशा-हमेशा की नींद सो गया था। सास के घर का दरवाज़ा मेरे लिए बंद हो गया।

पुल पर से ट्रेन खटाक-खटाक का शोर करती गुज़री तो मैं सपने से बाहर आई। मेरी आँखों के कोनों से पानी ख़ुद-ब-ख़ुद बहने लगा। सरबो और शिवा से छिपाकर मैं बहते आँसुओं को पोंछती रही। अतीत ने ज़ख़्म ही इतने दिए थे। एक को भरती तो दूसरा अपने आप बहने लगता। साथ देने वाला साथी कोई न रहा। सब अपनी ज़िंदगी में मस्त थे। आदमी की तलाश तो आख़िर हर औरत को रहती है, पर लगाम खुली नहीं छोड़ी थी। ऐसी भटकन का मैं भी शिकार थी। दीनानाथ से मुलाकात हुई। उसको मुझमें और मुझे उसमें एक अजीब-सी शै दिखती। उसका मेरी रूह और देह के साथ सच्चा साथ रहा। हम ज़माने की हदों को तोड़ने की कशमकश में थे। मैं स्वयं उसकी ओर दौड़ी चली जाती। हमारा प्रेम पीतल की बाल्टी में गिरती दूध की धार जैसा आनंदमयी और अनूठा था। यह भी सच है कि प्रेम में वियोग और पीड़ा लाज़िमी है। मैं पगली थी जिसने रानी बनने के स्वप्न सँजो लिए थे। न मैं दीनानाथ के खेत की मालकिन बन सकी और न उसकी माँ की बहू।

मुझे आख़िर औरत होने की सज़ा भुगतनी पड़ी। हमारा प्यार रेत की तरह हाथों से झर गया, जब दीनानाथ की माँ ने प्यार की राह में एक ऐसी लक्ष्मण रेखा खींच दी जिसको मैं लाँघ न सकी। उसने अपने पुत्र से दूर जाने के लिए मेरे आगे झोली फैला दी।

मेरे सँजोए हुए सपने तहस-नहस हो गए। मैं उसकी ज़िंदगी में से ऐसे दूर हुई जैसे मृत-व्यक्ति में से रूह।

अपनों से मिलने की तरंग सदा उठती रही मेरे अंदर। जब बंगाल आई तो यह तरंग दीनानाथ के लिए भी उठी। दिल ने रूहानी हूक भी लगाई। मैंने दीनानाथ के खेत-खलिहान देखे और उन्हें दूर से ही अलविदा कह चली आई। खेतों में चंदरा, हिमानी, राशी और लिलीमा जैसी लड़कियाँ चलती-फिरती दिखाई दीं। यह आवाज़ मेरी रूह से निकली थी, "दीनानाथ, मैं बेशक सबसे मिलकर जा रही हूँ, पर तेरे बिना मेरी यह तीर्थ यात्रा अभी भी अधूरी है।"

ट्रेन दिल्ली पहुँची। बुरा हाल, बेतहाशा शोर, जल्दबाज़ी, आवाज़ें ही आवाज़ें। ये भूख

बड़ी कठोर है, न जीने देती है, न मरने। कशमकश के इस माहौल में सरबो संग लाई रोटियाँ खा रही थी और शिवा ब्रेड।

"अनीमा... रोटी खाएगी?" सरबो ने जान बूझकर शरारत में मुझे रानी की जगह 'अनीमा' कहकर बुलाया।

"नहीं, अभी नहीं। तुम खाओ।" बीते काले दिनों को याद कर मेरी भूख मर गई थी।

बारह साल पहले इसी भूख ने बंगाल से पंजाब तक का हज़ारों मील का सफ़र तय करवाया था। यह भूख ही थी जिसने मुझे अपनी मिट्टी से भी तोड़ा। मुझे अच्छी प्रकार याद है, मौत जैसा साया था मेरे चारों ओर। जब बंगाल में भयकंर बाढ़ आई तो पानी जान का दुश्मन बन गया। भुखमरी और बीमारियाँ फैलीं, बच्चे और जानवर तड़प-तड़प कर मरने लगे। रोने-कराहने का सिलसिला न रुका। उस दिन कानों को अजीब-सी एक आवाज़ सुनाई दी। इस आवाज़ ने सबका ध्यान अपनी तरफ खींचा। सब टकटकी लगाकर आकाश की ओर देखने लगे। हैलीकॉप्टर क़रीब आता गया। इसी हैलीकॉप्टर से पहुँचे सरदार लोगों ने हमें खाना खिलाया। हमें कई दिनों का राशन भी दिया। पता चला, यह सारा राशन पंजाब से आया था। सबने पंजाबियों का शुक्राना किया और दिल से दुआएँ दीं। मेरा दुखी हृदय उस दिन से ही पंजाब जाने के लिए बेचैन हो उठा।

जब बाढ़ का प्रकोप रुका, मैं एक ढाबे पर बर्तन माँजने लगी। ढाबे का मालिक मज़दूरी भी न देता। जूठा और बासी खाना मिलता। उसके आगे मिन्नत-ख़ुशामदें कीं। बेबस, मजबूर और अनजाने मोड़ पर खड़ी थी। जहाँ न जी सकती थी और न मर सकती थी। पर अपनी औलाद की ख़ातिर मैं हर काम हँसकर करती रही। क़िस्मत अपना खेल खेलती रही।

"ऐ लड़की! पंजाब चलना है। रानी बनाकर रखेंगे।" दरशी ट्रक ड्राइवर ने मेरे आगे पेशकश की थी और मेरे दुखी दिल ने एकदम हामी भर दी। मन यहाँ से उड़ने को कर रहा था, भले ही आगे मौत मिले। और शिवा को उठाकर मैं पंजाब चली आई। पंजाब आकर बुढ़लाडे उतारा गया और जिस्म के मालिक बदल गए। उसने मेरी डोर दूसरे के हाथ में थमा दी और लम्बे सफ़र का राही बनकर भाग गया। भैंस-कटिया की तरह बिकती-बिकती को आख़िर जिन्दर मिल गया। जब जिन्दर ने मेरा घर-परिवार पूछा, मैं चुप रही, कुछ न बताया। मेरा नाम पूछने लगा तो मैंने बिना संकोच कहा, "रानी...।"

ट्रेन दिल्ली से टोहाणा, जींद आदि शहरों को पार करती पंजाब से मिलने को अंगड़ाइयाँ लेती, आगे बढ़ती रही, पर मेरी चेतना पीछे की ओर भाग रही थी।

इन कुछ दिनों में मैं अपने माँ-बाप के लिए गुलाबी नोटों से एक नई और शानदार झोंपड़ी डलवा आई थी। सारे गाँव में ऐसी झोंपड़ी नहीं बनी थी। सबने तारीफ़ की। कितनी ही देर बापू शुष्क आँखों से पानी बहाता रहा। उसको इलाज के लिए पैसे दिए और दसेक दिन में सारे काम निबट गए। बेटी और बेटे का फर्ज़ मिटा आई। अड़ोसिनों-पड़ोसिनों ने मुझे 'वीरन बेटी' माना। चाचा-तायों की ही नहीं, गाँव की अन्य लड़कियाँ मुझसे मिन्नतें-ख़ुशामदें करती रहीं, 'हमें भी पंजाब ले चल।' मुझे धन कौर याद आई जो अपने पुत्र के लिए बहू लाने को कह रही थी, पर मेरा मन नहीं माना। मैं सबको दिल से दिलासा और भरोसा देती रही। एक आस की किरण जगा आई थी सभी के अंदर कि जल्दी ही अगले चक्कर में पंजाब लेकर जाऊँगी, ताकि ये लड़कियाँ माल्टदास जैसों की हवस का शिकार न बनें। काम-रोज़गार कर के राजकुमारियाँ बनें और समय की 'रानियाँ' कहलाएँ।

ट्रेन पंजाब आ पहुँची। मेरा शरीर स्टेशन पर उतरा, पर रूह तो बंगाल में ही रह गई थी। सारा सामान शिवा और सरबो ने मिलकर उतारा। उन दोनों ने सारे नग गिने। पूरे थे, न कम, न ज़्यादा। सामान गिन हम खड़े हो गए। ट्रेन अगले स्टेशन को मिलने के लिए बिरहन और जोगियों की भाँति चल दी। मेरे दोनों हाथ ट्रेन के लिए जुड़ गए।

मैं जकड़ी-सी खड़ी थी। चलने के लिए मेरे पैर नहीं उठ रहे थे। पता नहीं लग रहा था, मैं क्या भूल आई हूँ?

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

भेरू दादा

ज्योति जैन

लोग कहते हैं, यादों में चेहरे होते है, या बातें होती है। स्थान होते है, या कोई घटनाएँ होती है। लेकिन मेरी यादों में इन सबके साथ एक ख़ुशबू भी बसी हुई है और वह ख़ुशबू है माँ की अनुपस्थिति में भेरू दादा के हाथ की गोल-गोल, फूली हुई, सिगड़ी पर सिकी रोटियों की, भाप की ख़ुशबू।

माँ के हाथ की रसोई का मुकाबला तो दुनिया का कोई शेफ़ नहीं कर सकता। लेकिन उसकी अनुपस्थिति में माँ के समान भाव से ही भोजन कराना, आह..। यही तो भेरू दादा किया करते थे।

भेरू दादा की याद आते ही आँखों के सामने आता है, धूसर रंगों की हॉफ स्लीव शर्ट, गहरे रंगों की पेंट, पाँयचे मुड़े हुए। थोड़े से लंबे..., बिना माँग के..तेल डले भूरे बाल। लंबा चेहरा, बालों के ही समान भूरापन लिए हल्की-भूरी आँखें, नुकीली भूरी मूँछें, दन्तपंक्ति कतार में लेकिन तंबाकू के सेवन से पीली।

और हाथ, स्त्री के हाथ के समान कोमल और उतने ही कुशल जितने एक स्त्री के हाथ होते है। हम बच्चों के लिए जिनके हृदय में अपार स्नेह भरा हुआ...। ये भेरू दादा थे।

बरसों पुरानी बात, लेकिन यादें इतनी पुरानी भी नहीं हुई कि धूमिल हो जाएँ।

मैं कुछ बरस धार अपनी मौसी के यहाँ रही। मौसाजी और मौसी सरकारी नौकरी में अधिकारी थे, सो नौकरों-चाकरों की कमी नहीं थी। भेरू दादा, बावर्ची सहित सभी कुछ काम करते थे। मैं और मौसी के बच्चे पोचोपाटी स्कूल से आते ही बस्ता हाथ से फेंकते उसके पहले भेरू दादा बस्ता हाथ में ले लेते थे।

"बाई साब...! हाथ धो लो.. मैं थाली परोसता हूँ।" कहते-कहते वे बुझने की कगार पर पड़ी सिगड़ी की खिड़की खोलकर दो-चार लकड़ी के कच्चे कोयले डालते, हाथ धोकर आते तब तक थाली परोस देते, घी के तड़के वाली तुअर दाल और कभी गवारफली, करेला, लौकी की सब्ज़ी। और सिगड़ी पर फूली गर्म रोटी, आह....क्या स्वाद था।

भोजन करते-करते गपियाना मेरा प्रिय शगल था।

"भेरू दादा... बताओ ना...! आपके घर में बच्चे नहीं हैं क्या..?"

"हैं ना बाई साब ...!" वह प्रेम से जवाब देते।

"तो वे यहाँ क्यों नहीं रहते ..?" मेरी सहज उत्सुकता होती थी। "और आप यहाँ हो तो उनके लिए खाना कौन बनाता है..?"

"उनकी माँ बनाती है ना बाई साब...!

उनकी वाणी में हमारे लिए सम्मान की कभी कमी नहीं होती। वे हमेशा बाई साब कहकर ही बोलते.. और बहुत धीरज के साथ हर बात का जवाब देते।

"तो फिर वे यहाँ क्यों नहीं रहते.. हमारे साथ..?" मेरे सवाल ख़त्म ही नहीं होते थे।

मैं कहने को तो कह दिया करती थी। लेकिन उनके चेहरे की मुस्कराहट के पीछे अपने परिवार से दूर रहने की पीड़ा तब नहीं समझ पाती थी।

मौसाजी का सरकारी क्वार्टर था। सरकारी क्वार्टर का, और वह भी अगर अफ़सर का हो तो

ज्योति जैन
1432/24, नंदानगर
इन्दौर-452011, मप्र
मोबाइल- 930031812

उसका अलग ही आनंद रहता है। बड़े कमरे.. ऊँची दीवारें और बाहर जंगला लगा हुआ आँगन।

उस दिन उस आँगन में गर्मी की छुट्टियों में हम पकड़म पाटी... लँगड़ी खेलने बाहर आ गए। पीछे-पीछे भेरू दादा चप्पल लेकर दौड़ते--"बाई साब.... चप्पल पहन लो। पाँव जल जाएँगे। साबजी भी ग़ुस्सा होंगे"।

"चप्पल तब पहनेंगे भेरू दादा.. जब आप भी हमारे साथ खेलोगे।" मैं ठुनकती।

"बाई साब खेलूँगा... पहले थोड़ा काम करने दो..।"

लेकिन बालहठ तो बालहठ होता है। और भेरू दादा एक पाँव की लँगड़ी से हमारे साथ खेलना शुरू हो जाते। अचरज की बात थी कि हमें चप्पल पहनाने को दौड़ते भेरू दादा के पाँव में कभी चप्पल नहीं होती थी।

भेरू दादा की याद आती है तो अपने साथ और कई यादें ले आती है। घर में अभाव लेकिन चेहरे पर अमीरी, ऐसा भाव हम आज नौकरों में देख पाते हैं क्या ? और एक मिनट...! उन्हें मैं नौकर क्यों कह रही हूँ ? वे तो भेरू दादा थे।

जी हाँ.., भेरू दादा को घर में कभी नौकर का दर्जा नहीं दिया। मुझे याद है मौसाजी जब उन्हें आवाज़ देते, भेरूजी कहकर आवाज़ देते थे। कितना सम्मान का भाव, तब शायद नौकर, नौकर नहीं, घर के एक सदस्य के समान ही होते थे। परिवार की ज़िम्मेदारियाँ उन पर भी थी। बच्चे-परिवार उनका भी था, लेकिन मौसी के परिवार के लिए उनका समर्पित भाव उन्हें इस घर का हिस्सा बना देता था।

जब यादों को खँगालने बैठती हूँ तो पाती हूँ कि वे घर का सब कुछ होने के साथ-साथ हमारे तो सखा भी थे। मुझे याद है खुरदुरी फर्शी पर पेम से अष्ट-चंग-पे के खाँचे तैयार करना। इमली के चिंए निकाल करके उन्हें पानी डालकर फर्शी पर घिसकर पासे तैयार करना। और घर में से ही अलग-अलग तरह की चीज़ें या बाहर अलग-अलग तरह के पत्थर निकाल करके गोटियाँ तैयार करना। ये सारे काम भी तो भेरू दादा ही करते थे और फिर हम बच्चों के साथ पूरी ईमानदारी के साथ अष्ट-चंग-पे खेलते और हम बच्चे पूरी बेईमानी से उन्हें हराने पर तुले रहते थे और मज़े की बात ये है कि भेरू दादा हारकर भी ख़ुश होते थे। ये तो फिल्म में अब कहते हैं कि जीतकर हारने वाले को बाज़ीगर कहते हैं लेकिन भेरू दादा तो इतने पुराने बाज़ीगर थे और हँसते-हँसते जीती हुई बाज़ी हार जाते थे।

भेरू दादा के काम सीमित नहीं थे बाहर साइकिल पर डिब्बा लेकर कुल्फी वाला जाता और हमारे आवाज़ देते ही दौड़कर उनका जाना, खुल्ले पैसे जो कि मौसाजी उन्हें देकर रखते थे दो-चार आने.. वे ले करके हमारे लिए कुल्फी लाना, प्रेम से बिठाकर खिलाना और मुँह गंदा होने पर बाक़ायदा गीले कपड़े से पोंछना...तब वेट-टिशु कहाँ होते थे...?

और शाम होते-होते यदि गर्मी का मौसम है तो बाहर ओटले पर पानी छींटना ताकि हमारे नन्हें पैर जलने से बच जाएँ। कहीं थोड़ी दूर तक घुमाने ले जाना ..ये सारे काम भी भेरू दादा ख़ुशी-ख़ुशी करते थे और रात को सोने से पहले कहानी सुनाना भी उन्हीं की तो ज़िम्मेदारी थी। कई बार छत पर तारों को देखते हुए वे तारों की, चाँद की कहानी सुनाते।

एक बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति इस तरह से कहानी बना लेता है, ये बातें अब समझ आती है और सम्मान के साथ-साथ उन पर आश्चर्य करने का मन करता है। कहाँ से ले आते थे वे इतने विचार? मुझे लगता है अब वे इतने विचार लाते तो क्या एक बड़े लेखक नहीं बन जाते? लेकिन सबकी अपनी नियति होती है। तो भेरू दादा बहुत सुंदर शब्दों में पिरोकर वे सब कहानियाँ सुनाते। उस वक्त तो समझ में नहीं आया, लेकिन अब जब उनकी सारी यादें समेटती हूँ.. खँगालती हूँ..तो थैली में से निकले सिक्कों के भाँति यादें खनखनाकर नीचे गिरती हैं, मैं उनको थाम लेती हूँ, उठा लेती हूँ सहेज लेती हूँ और पुन: डोरी वाली कपड़े की थैली में डाल देती हूँ।

और अब जब मैं बड़ी हो गई हूँ समझदार तो पता नहीं हुई कि नहीं लेकिन बड़ी हो गई हूँ, तो मुझे वह याद सामने आती है जब भेरू दादा का चेहरा आख़िरी बार देखा था। वह अदब से हाथ बाँधे मौसाजी के सामने खड़े थे ...घर जाने के लिए छुट्टी माँग रहे थे। मौसाजी अपने धीमे लेकिन रौबीले लहजे में उन्हें मना कर रहे थे- "अभी नहीं होगा भेरूजी.. आपको पता है मैं दौरे पर जा रहा हूँ। तीन-चार दिन तो लग जाएँगे। तब तक आप को रुकना होगा।"

"साहब जी बच्चे की तबीयत ..."

"हाँ.. हाँ ..भेरूजी..! हम समझते हैं।" मौसाजी ने पूरी बात ही नहीं सुनी। "लेकिन तीन-चार दिन तो आपको निकालना होंगे। वहाँ कुछ व्यवस्था करवा दो। हम दौरे पर से आते हैं तब आपको छुट्टी देंगे।" मानों फ़ैसला सुना कर मौसाजी तो उठ गए थे। और भेरू दादा बिना अपराध के भी अपराधी के समान सिर झुकाकर खड़े थे। अब समझ में आता है कि ग़रीब होना भी तो अपराध नहीं था...?

तब इतनी समझ नहीं थी कि भेरू दादा की उस बात की गंभीरता क्या थी..।

मौसाजी के दौरे पर से आते ही भाई मुझे लेने आ गए थे और मैं वापस मंदसौर चली गई। उस दिन के बाद से भेरू दादा नज़र नहीं आए। तब इतनी समझ भी नहीं थी कि उस दिन के बाद क्या हुआ..पूछा जाए। खेलकूद के दिन थे तो धमाचौकड़ी ही सूझती थी। अगली बार धार गई तो नई केयरटेकर गीता भाभी थी।

लेकिन अब याद करती हूँ तो भेरू दादा का वह आख़िरी बार देखा चेहरा ज़ेहन में आ जाता है।

और अब.. जब मैं शायद समझदार हो गई हूँ, तो सोचती हूँ कि क्या वह देर होने पर भी समय रहते अपने घर पहुँच पाए होंगे..? क्या उनका बच्चा ठीक होगा..? बेतुके सवाल पूछ पूछ भेरू दादा का माथा खाने वाली मैं इतनी छोटी क्यों थी कि घर के बड़ों से सवाल नहीं कर पाई.. ? वह सब यादें और चेहरे अभी भी मेरे घर की दीवारों के आलियों में क्यों सजे हुए हैं...? पता नहीं ..!

भेरू दादा हमारे मौसाजी के परिवार के लिए समर्पित थे, उनके परिवार के लिए कौन समर्पित रहता होगा...?

000

रंगरेज़ के नाम हुआ एक रास्ता

विनय उपाध्याय

हम तो दरिया हैं, हमें अपना हुनर मालूम है।
जिस तरफ़ भी चल पड़ेंगे, रास्ता हो जाएगा।

ज़िंदगी की राहों पर क़दम बढ़ाता हुआ एक कलाकार इसी यक़ीन से भरकर अपनी पहचान और प्रसिद्धि के पंख पसारता है। बेशक, एक सच्चे कलाकार के लिए मंज़िल नहीं, अहम् होता है रास्ता। ठहरना उसकी फितरत नहीं। निरन्तर चलते और रचते रहने में ही उसका मकसद पूरा होता है। इस विचार के तार फिलहाल एक नामचीन चित्रकार की स्मृति से जुड़ रहे हैं। सचिदा नागदेव। रंगों की सोहबत में यह चितेरा जाने कितने रास्तों से गुज़रता रहा। महाकाल की नगरी (उज्जैन) से भोपाल और भोपाल से दुनिया के अनेक मुल्कों की सैर करते हुए यह राहगीर जाने कितने मुक़ामों तक पहुँचा, पर उन रास्तों को कभी न भूला जिन्होंने अनजान मोड़ों पर फिर नए प्रस्थान का हौसला दिया। इस अनथक पथिक ने नश्वर दुनिया को छह बरस पहले अलविदा कह दिया लेकिन रास्तों पर छूट गए उनके नक़्शे-क़दम अब भी बाक़ी हैं। पाँव के इन गहरे निशानों पर भोपाल की निगाह बनी रही और हाल ही में इस चितेरे के नाम पर इस शहर के एक रास्ते को नई पहचान मिल गई। भोपाल के स्थानीय प्रशासन ने मध्य प्रदेश की राजधानी के महाराणा प्रताप नगर से लगे चेतक ब्रिज को सुभाष नगर तक जोड़ने वाली सड़क का नाम सचिदा नागदेव मार्ग कर दिया है। काबिले-ग़ौर है कि भारत भवन से कमला पार्क के बीच की सड़क को बरसों से चित्रकार जे. स्वामीनाथन मार्ग के नाम से जाना जाता है। इस तरह भोपाल में दो चित्रकारों की स्मृति दो सड़कों से होकर भी गुज़रती है।

निश्चय ही यह नगरीय निकाय की सांस्कृतिक सदाशयता का परिचायक है। उसकी इस नीयत की तारीफ़ की जाना चाहिए। यूँ भारत भर की सड़कों, वार्डों, इमारतों, संग्रहालयों, विश्वविद्यालयों, कला संस्थानों की पड़ताल करें, तो साहित्य, संस्कृति और कलाओं से जुड़ी अनेक विभूतियों के नाम गिनाए जा सकते हैं। इस बहाने तपस्वी साधकों के कर्मयोगी जीवन, उनके पुरुषार्थ, संघर्ष, उनके योगदान और उनकी यशगाथाओं के अध्याय बाँचने का उपक्रम होता है। इस तारतम्य में सचिदा नागदेव अब फिर प्रासंगिक हो गए हैं।

चित्रकार पिता की यादों को सहेजने उनकी बेटी मशहूर सितार वादक स्मिता नागदेव पूरे उत्साह और फ़र्ज़ अदायगी के साथ पेश आई हैं। स्मिता बताती हैं कि 1964 के बरस में पिताजी उज्जैन से भोपाल आकर बस गए थे। यहाँ के मॉडल स्कूल में बतौर कला शिक्षक अपनी सेवाएँ दीं और एक चित्रकार के रूप में सक्रिय रहे। मध्यप्रदेश का संस्कृति विभाग बनने से पहले ही वे शासकीय कला गतिविधियों और योजनाओं में बतौर सलाहकार आमंत्रित किये जाते रहे। सचिदा ने ही अपने चित्रकार मित्र सुरेश चौधरी के साथ मिलकर भोपाल में एकल चित्र प्रदर्शनी की परंपरा का आगाज़ किया। इस शहर की कला वीथिकाओं में आए दिनों नुमाइशों की गहमा-गहमी उसी पहल का नतीजा है।

उज्जैन के माधव नगर इलाके के गेहूँ व्यापारी के घर सचिदा नागदेव पैदा हुए। ताल और काल के देवता महाकाल की महिमा से आच्छादित उज्जयिनी के त्योहारी रंगारंग वातावरण ने सचिदा के मन पर गहरा असर किया। कारोबारी पेशे के लिए पहचाने जाने वाली ख़ानदान के इस उत्तराधिकारी को रंगों की सोहबत कुछ ऐसी रास आई कि तमाम उम्र वे उनकी आत्मा से चस्पा रहे। जैसा कि अमूमन होता है, चित्रकला की शुरुआत चित्रों की नक़ल (कॉपी) से हुई। पैसों की कमाई का रास्ता खुला। घर के सामने हर सोमवार को लगने वाले साप्ताहिक हाट में

विनय उपाध्याय
एम एक्स 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462016 मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

चित्र बेचने के लिए बैठना घर की माली हालत को बयाँ करता था। पढ़ाई के साथ-साथ पेंटरों की शागिर्दी शुरू हुई, जो दिन-रात सिनेमा पोस्टर बनाने में मशगूल रहा करते थे। पावडर रंगों के बड़े-बड़े सकोरे भरना, साफ़ करना और बड़े-बड़े फ़िल्मी चेहरे बनते देखना और उनसे ही अभ्यास करना एक सिलसिला बन गया।

स्वतंत्रता की लहर से भला कोई उन दिनों कैसे अछूता रह सकता था! सो सचिदा ने भी भारत-माता का खुले लहरियेदार बालों वाला चित्र बनाया। गाँधी जी का चित्र बनाने पर पाँच रुपये ईनाम में मिले थे। वर्ष 1951-52 में प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु को उनका एक चित्र भेंट किया। सचिदा के लिए यह सब सपने की तरह था।

साल 1953 का था। माधवनगर के घण्टाघर के पास एक दोमंज़िले पुराने मकान की छत पर भारती कला भवन की स्थापना कला गुरु डॉ. वि.श्री. वाकणकर ने की और प्रथम विद्यार्थी के रूप में प्रवेश लिया सचिदा नागदेव ने। वाकणकर जी ने जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट मुंबई की जी.डी. आर्ट परीक्षा के लिए विद्यार्थियों से तैयारी कराई। सन् 1954 में उक्त परीक्षा के प्रथम चरण में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी समूह में सचिदा सबसे छोटी उम्र के विद्यार्थी थे। वाकणकर जीवन भर शहरों में कम, एकाकी वन-प्रांतरों और गुफाओं में अधिक रहे। भारती कला भवन के कलाकार समूहों को इन क्षेत्रों में इसीलिए जाने, रहने, दृश्यांकन करने और शैलचित्रों की अनुकृतियाँ करने, अपने स्वर्णिम अतीत से साक्षात्कार करने का अपूर्व दुर्लभ अवसर उनके सान्निध्य में मिलता रहा। शोधदल का प्रथम समूह उनके साथ भानपुरा के जंगलों में शैलचित्रों की खोज करने दस दिनों के लिए गया, तब उनमें सचिदा रेखांकन में सबसे आगे थे।

1959 में कश्मीर यात्रा का योग बना। गुलमर्ग, पहलगाम, श्रीनगर, कुल्लू, काँगड़ा, धर्मशाला में प्रकृति के अनुपम सौंदर्य को खुली आँखों से देखने में रंग-प्रयोग में अंतर आया। लबादेदार स्त्री-पुरुष, सुंदर आँखें,

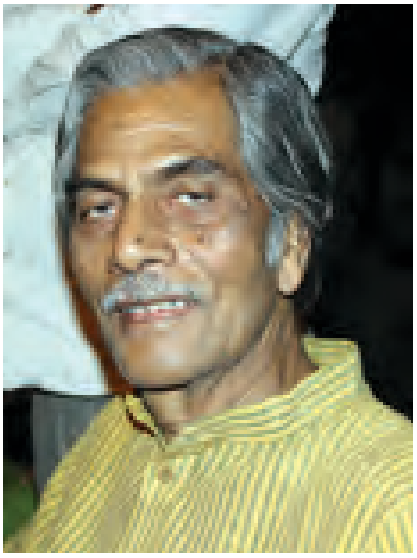

सुडौल चेहरा, पहाड़ों पर चढ़ने-उतरने का श्रम उनकी रेखाओं में उतर आए और पूर्व में की गई अनुकृतियों की छाप नदारद होकर सार-सार मौलिक सृजन में लय हो गया।

1964 का भोपाल कला-गतिविधियों से सूना था। जन जीवन शांत, मगर ताल-मीनारें-गलियाँ अपना चित्रण करने के लिए सचिदा को पुकार रही थीं। भोपाल में प्रदेश की राजधानी के अनुरूप कला-वातावरण निर्माण की आवश्यकता पड़ी। मध्यभारत कला परिषद, ग्वालियर से भोपाल आकर मध्य प्रदेश कला परिषद् हो गई थी, परंतु उसकी गतिविधियों में तेज़ी की आवश्यकता थी। साथ ही सृजनशील कलाकारों की एक संस्था भी समांतर होना ज़रूरी थी अंत: समय की नब्ज़ को पहचानते हुए सचिदा ने स्थानीय कलाकारों के सहयोग से 'रिद्म आर्ट सोसायटी' का गठन किया। सन् 1965 में स्टेडियम हॉल भोपाल में प्रथम एकल चित्र प्रदर्शनी आयोजित की, उस समय कला-संरक्षण और प्रोत्साहन के लिए दो कलाप्रेमी अधिकारी भोपाल में मौजूद थे- रुस्तम जी (आई.जी. पुलिस) और नागू (डी.आय.जी. पुलिस)। दोनों ने सचिदा की कलाकृतियों को न केवल पसंद किया, बल्कि ख़रीद कर प्रोत्साहित भी किया। इस प्रदर्शनी के कारण भोपाल के कला जगत् में एक नाम उनके रूप में तेज़ी से उभरा और एच.ई.एल. के अंग्रेज़ सलाहकारों के कंसल्टेन्ट आर्ट क्लब में उन्हें 'गाइड' के रूप में आमंत्रित किया गया। कई अंग्रेज़ मेमों ने उनकी कलाकृतियों की प्रशंसा की थी।

1974 में मध्यप्रेश कला परिषद, भोपाल का अस्तित्व उभरा, गति आई और प्रदेश के ख्यात कवि गजानन माधव मुक्तिबोध प्रसंग में उनकी कविताओं पर चित्रण करने का प्रस्ताव सचिदा को मिला। इन कविताओं पर सचिदा ने बड़े-बड़े केनवास रचे। मुक्तिबोध उज्जैन काफ़ी समय रहे थे। यह संदर्भ भी सचिदा के ज़ेहन में था। जहाँगीर कला दीर्घा मुंबई में इनके चित्रों को पसंद किया गया। इसके पूर्व मुक्तिबोध-प्रसंग में इनकी प्रदर्शनी मध्य प्रदेश कला परिषद् की कला दीर्घा में लगाई जा चुकी थी। मुंबई की प्रदर्शनी सब मित्रों ने मिलकर रात-भर में लगाई थी।

1981 में जापान के प्रोफ़ेसर किमुरा द्वारा 'ओसाका' नगर में 'कासाहारा' कला दीर्घा में एकल प्रदर्शनी आयोजित हुई। जापान प्रवास के बाद सचिदा अमूर्त दृश्य-चित्रों पर एकाग्र हुए। उनकी एकल प्रदर्शनियाँ मुंबई, कलकत्ता, मद्रास, बेंगलुरु में कई बार लगीं। व्यावसायिक कला दीर्घाओं में कृतियाँ पहुँचने लगीं। इधर प्रकृति और मनुष्य के द्वारा जो दिल दहला देने वाली घटनाओं का ज़ोर रहा उनसे सचिदा का संवेदनशील कलाकार अछूता नहीं रहा। उन्होंने 'द डेथ सीरीज़' और 'गैस ट्रेजेडी सीरीज़' की कृतियों में इस अवसाद को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने 1987 में 'शारजाह' में एक प्रदर्शनी लगाई। 1988 में गुरु वाकणकर का सिंगापुर में देहावसान होने से मन विचलित हुआ, इस दुख की झाई तत्कालीन कृतियों पर है।

छायांकन भी सचिदा का प्रिय शौक़ रहा। दोस्तों की महफ़िलों में गुनगुनाना उनको आनंद देता। अपने युवा काल में मित्रों के बीच महफ़िल जमती और सचिदा के होठों पर सुर के सतरंगी बोल गमक उठते। एक बार जब एक बड़े चित्रकार से देश के श्रेष्ठ चित्रकारों के नाम पूछे गए तब उन्होंने जो नाम गिनाए थे, उनमें सचिदा नागदेव का भी नाम था। सचिदा के गाढ़े-गहरे हस्ताक्षर कहते रहेंगे- "रास्ते आवाज़ देते हैं, सफ़र जारी रखो।"

000

बोलिए सुरीली बोलियाँ...

वंदना मुकेश

संगीत की अनौपचारिक महफ़िल में बैठी हूँ। महफ़िल अनौपचारिक अवश्य है लेकिन संगीत के जानकारों की है। बड़े उस्ताद हैं तो छोटे उस्ताद भी। और निष्ठावान शागिर्द भी, जो तराशे जा रहे हैं। साज़ मिलाए जा रहे हैं। थोड़ा ऊपर, थोड़ा नीचे, ज़रा सा उतार लें। न, न, थोड़ा सा ज़्यादा हो गया। बस, बस, बस यहीं। यह ठीक है। ओ हो फिर ज़्यादा हो गया। और फिर ... सब एक सुर में। सभी एक दूसरे के पूरक या प्रेरक। गायक, तानपुरा, तबला, स्वर मंडल, सारंगी सब एक दूसरे के साथ। सुनने वाले भी।

"जागूँ मैं सारी रैना, बलमा" बार-बार दोहराया जा रहा है। सब भूलते जा रहे हैं। अपने वजूद से परे, होश खोते जा रहे हैं। ख़ुमारी चढ़ती जा रही है। अंग-अंग, नस-नस में संगीत उतरता चला जा रहा है। विलंबित से आरंभ, मध्य लय और फिर द्रुत। उस्ताद का सजग निर्देशन। उस्ताद की दाद से चमकते चेहरे। सिर्फ संगीत की सत्ता। सुंदर भावपूर्ण बोल, कलाकारों के मध्य अद्भुत सामंजस्य। सभी कुछ विलक्षण।

ईश्वर ने मनुष्य को पशुओं की अपेक्षा सुविकसित मस्तिष्क दिया, वाणी का वरदान दिया और फूल-पत्तों, लता-वृक्षों, झरने-नदियों से सजा प्रकृति का सुंदर वातावरण प्रदान किया। प्रकृति का कण-कण एक अद्भुत लय और ताल से बद्ध है। भौंरे की गुनगुन, पंछियों का कलरव, वृक्षों के लहलहाना, नदिया की कलकल, झरने का गिरना सभी कुछ एक विशिष्ट लयबद्ध है। जैसे संगीत में हर ताल सम पर समाप्त होता है, वैसे ही जीवन में भी सब कुछ सम पर ही समाप्त होता है। जीवन को रसमय बनाने के लिए इसी सम की आवश्यकता है। हमारे किसी भी कार्य या किसी भी भाव के विषम होते ही जीवन संगीत बेसुरा हो जाता है।

सब भाग रहे हैं। मशीन का-सा जीवन है। आनंद कहाँ है? कब आख़िरी बार किसी फूल से बात की थी? कब आख़िरी बार किसी पंछी की बोली सुनी थी? कब आख़िरी बार उगते सूरज का मनभावन दृश्य आँखों में क़ैद किया था। ऐसा तो नहीं कि प्रकृति की हलचल समाप्त हो गई है; लेकिन जीवन-शैली ऐसी बदली है कि हर व्यक्ति एक अंधी दौड़ में निरंतर भाग रहा है। कहाँ और किसके पास है जीवन को समझने, टटोलने और अनुभूत करने का समय। कैलैंडर के पन्नों से दिन और महीने सरकते जाते हैं अब तो कैलेंडरों का स्थान भी मोबाइल फ़ोन ने ले लिया। भाव पर, भाषा पर, संस्कारों पर, हर उस वस्तु पर अस्तित्व रक्षण का ख़तरा मँडरा रहा है जिससे कभी मनुष्यता को परिभाषित किया जाता था। सोचती हूँ कि इस बंदिश की इस पहली पंक्ति का हमारे वर्तमान जीवन से कितना मेल है।

रात का बारह बज चुका है। बिस्तर पर लेटे घंटे भर से ऊपर हो चुका है। सोने की कोई तैयारी नहीं है सिवाय इसके कि बिस्तर पर लेट गए हैं। हाथ में मोबाइल फ़ोन है। पति-पत्नी दोनों व्यस्त हैं, उँगलियाँ खटाखट की बोर्ड पर दौड़ रही हैं एक दूसरे की उपस्थिति नकारी जा चुकी है। सोशल मीडिया पर कितने लाइक मिले। सखी-सहेलियों, यार-दोस्तों, रिश्ते-नातेदारों से समाचारों का आदान-प्रदान हो रहा है। उन्हीं उँगलियों की खटाखट में आँखें मुँदने लगती हैं।

डॉ. वंदना मुकेश,
35 ब्रुकहाउस रोड, वॉलसॉल, इंग्लैंड
WS5 3AE
मोबाइल- 0044-7886777418
ईमेल- vandanamsharma@hotmail.co.uk

अगले दिन काम पर भी तो जाना है। अच्छा है कि तकनीकी विकास ने हमारे बीच की भौतिक दूरियों को एकदम मिटा दिया है किंतु उनका क्या जो बिल्कुल हमारे निकट, हमारे सामने सजीव साक्षात् उपस्थित हैं? उधर रात का तीन बज गया है। कुछ किशोर-किशोरियाँ वीडियो गेम खेलने में व्यस्त हैं। जीत निकट है, हार का भय है। उत्तेजना बढ़ती जा रही है। उत्तेजना के अतिरेक में मुँह से अंग्रेज़ी में गालियाँ भी निकल रही है। कोई जीता। कोई हारा। ब्रह्म मुहूर्त में जागने की बजाए अब सोना होगा। लेकिन जीतने वाला जीत की ख़ुशी में नहीं सो पाता और हारने वाला हार के दुख में।

फिर सुबह हो गई है, किसी को काम पर जाना है, किसी को स्कूल। न मुस्तैदी है न चुस्ती है। लेकिन जाना तो है। दिन भर थकान रहती है, जैसे -तैसे दिन पूरा करते हैं। खाना खाया और फिर वही...। शनिवार-रविवार को सुबह उठने की जल्दी नहीं, सो आराम से लगभग दोपहर तक, घर में सब सोए पड़े हैं। उठकर भी किसी से कोई नमस्ते, चरण स्पर्श नहीं। फिर फ़ोन ही खींच लेता हैं दिन बीता जाता है। अलसाए उठते हैं तथाकथित 'ब्रंच' करके। तब तक दिन ढलने लगता है और तब अलसाए लोगों के सोए तंतु जाग जाते हैं। पार्टियाँ, मेल-जोल जवान होने लगता है और एक बार फिर रात दिन बन जाती है और दिन रात। कोई नहीं चाहता कि सोमवार आए, काम पर जाना पड़े। किंतु प्रकृति के पास यह सुविधा नहीं है। प्रकृति में हर कार्य यथासमय होता है। प्रकृति की लय कभी नहीं बिगड़ती। और जब बिगड़ती है तो बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी काँप उठते हैं। सब कुछ तहस-नहस हो जाता है। फिर उस विराट शक्ति के सम्मुख हम चींटी की तरह अस्तित्वहीन हो जाते हैं। पर हमारी स्मृति कितनी क्षीण होती है। कितना जल्दी भूल जाते हैं सूनामी, भूकंपों और बाढ़ों से आई तहस-नहस को। फिर स्वयं को सर्वशक्तिमान समझ बैठते हैं। भूल जाते हैं। उसे डिमेंशिया नाम से विभूषित नहीं करते वही तो सबसे बड़ा डिमेंशिया है कि आवश्यक आधारभूत बातों को भूल जाते हैं और उलझ जाते हैं तेरा मेरा, हिस्सा बाँट। कितनी बार यूक्रेन, सीरिया काहिरा दोहराए जाते हैं। सीमाओं का अतिक्रमण, सत्ता का लोभ, दुर्बल पर अत्याचार इनसे उबर नहीं पाते। वस्तुत: यही तो साधना है हमें, यही तो सीखना है हमें। कुछ भी साधने के लिए बहुत अभ्यास अर्थात् साधना अपेक्षित है। लेकिन साधक की साध पर ही निर्भर करता है कि वह कितनी कठिन साधना करता है। लेकिन कुछ सीखने की कोई आयु नहीं होती। भई, जब जागे तभी सवेरा। हालाँकि हमारे शास्त्रों में सूर्योदय से पूर्व ब्रह्म मुहूर्त में उठने को सर्वोत्तम माना गया है। कहाँ उठ पाते हैं हम? लेकिन हम प्रयास तो कर ही सकते हैं न। जो अब तक कर नहीं सके वह आगे भी नहीं कर सकते किसी किताब में नहीं लिखा है। विश्व महामारी कोविड के समय हुए लॉकडाउन के दिनों में इंग्लैंड के 99 वर्षीय वयोवृद्ध कैप्टन सर टॉम मूर के बारे में कौन नहीं जानता? जब एक क्षीणकाय वृद्ध अपने बगीचे में बैसाखी की मदद से चल कर इंग्लैंड की राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना अर्थात् एन. एच. एस. की मदद के लिए 24 दिन में एक हज़ार पाउंड जमा करने के अपने लक्ष्य से कहीं अधिक 32 मिलियन पाउंड इकट्ठा करते हैं तो यह स्थापित हो जाता है कि यदि हम कुछ कल्याणकारी कार्य करने का संकल्प ले लें तो प्रकृति का हर कण हमारे संकल्प की पूर्ति के लिए साथ देने लगता है। कहने का तात्पर्य बस इतना ही भर है कि कोई कार्य ऐसा नहीं है कि हम नहीं कर सकें बस संकल्प की आवश्यकता है।

प्रकृति और संगीत के साम्य को समझने का प्रयास करें तो जीवन कितना सुंदर हो सकता है। बस एक ही नियम पालन करना है। स्वयं को लय और तान की समझ से युक्त करना। आज भारतीय योग, योगा अर्थात् अथवा अंग्रेज़ीकृत योगा का महत्त्व संपूर्ण विश्व में निर्विवाद एवं सर्वमान्य है। क्या है योग? भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के पचासवें श्लोक की पंक्ति का अर्थ है – 'योग: कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। अब प्रश्न यह है कि यह कैसे संभव हो सकता है ? वस्तुत: मन, बुद्धि और शरीर के संतुलन ही, अवस्था ही योग है और वर्तमान जीवन-शैली हमें इस अवस्था को प्राप्त करने का समय नहीं देती, न इस पर विचार करने का ही समय देती है। वर्तमान मन, बुद्धि शरीर के इसी संतुलन का अभाव गहराता जा रहा है। इसी कारण, स्वास्थ्य, बोली-बानी इत्यादि सब कुछ लयहीन हो रहे हैं। कितनी अजीब सी बात है कि इसके लिए मनुष्य ही ज़िम्मेदार है। बाकी मनुष्य स्वयं ही नष्ट करने में लगा है। विकास की क़ीमत चुकानी पड़ती है। गाँव से शहर आया आदमी गाँव से कट जाता है। देस से परदेस आया आदमी देस से धीरे-धीरे कटता जाता है। भाषा बदल जाती है, चाल बदल जाती है, पोशाक बदल जाती है। कौआ हँस की चाल चलने लगता है। रंग जाता है रंगा सियार सा। विस्मृत कर देता है सबकुछ। तभी स्वीडन की ग्रेटा थनबर्ग जाग जाती है। पर्यावरण रक्षण के प्रति जग में जन-जागृति का अभियान लेकर वह विश्व मंच से गुहार लगाती है। तो अन्य सोए हुए भी जागने लगते हैं। आँखें अभी भी उनींदी हैं। लकिन जाग रहे हैं।

भाव विषम हो तो व्यक्त करने में कठिनाई होगी ही। तिस पर भाषा का अभाव तो अपाहिज ही बना देगा। बाज़ार में सब कुछ उपलब्ध है। किंतु 'जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार। संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥' विचार तो हमें करना होगा क्योंकि 'शब्द सँभाल के बोलिए, शब्द के हाथ न पाँव। एक शब्द है औषधि, एक करे है घाव' प्रयास तो करना ही होगा, सुरीला बोलने का, सुरीला रचने का, सुरीला करने का। संयम तो रखना ही होगा। योग सीखना ही होगा। अभ्यास करना ही होगा।

मैं जाग जाती हूँ एक बार फिर जाग जाती हूँ, गायक प्रस्तुति के अंतिम चरण, अर्थात् चरम पर पहुँच गया है। मैं लौट आती हूँ और ''जागूँ मैं सारी रैना, बलमा'' की अंतिम तिहाई के साथ, संगीत के मदहोश करनेवाले जादू का अनुभव करते हुए एक नए योगमय संकल्प के साथ मैं भी साथ गुनगुनाना उठती हूँ।

000

एक प्रकृति प्रेमी की प्रेम कथा

कमलेश पाण्डेय

समृद्धि उनका पहला प्यार थी। इसके बाद उन्हें शक्ति मिली जिसके साथ एक ज़ोरदार प्रेम का दौर चला। इन दोनों से चले अफेयर ने उन्हें कैसेनेवा स्तर का प्रेमी बना दिया यानी अब वे जब, जिससे चाहे प्रेम कर सकते थे। कुछ दिन तृप्ति से भी मेलजोल रहा, पर जल्द ही उससे ब्रेकअप कर वे तृष्णा से डेटिंग करने लगे जो शुरू से ही उनपर डोरे डालती रही थी। हालाँकि एक सौम्य सी संतुष्टि भी आसपास ही रहती थी, पर उन्होंने कभी उसे आँख उठा कर भी नहीं देखा। शांति भी उनके प्रेम रडार के पार ही होती थी। ये सारे प्रेम व्यापार चल ही रहे थे कि एक हादसा हो गया। एक दिन यूँ ही सारे राह चलते-चलते उन्हें प्रकृति से प्रेम हो गया।

वैसे पहले भी जब वे समृद्धि के साथ कहीं घूमने फिरने जाते थे, तो अक्सर ये प्रकृति टकराती रहती थी। वे एक उचटती सी नज़र डालकर निकल जाते थे। शायद कुछ दिन तृप्ति के संग-साथ ने उनके मिजाज़ में थोड़ा ठहराव लाया था, जिसकी वजह से किसी दिन ज़रा ठहर कर उन्होंने प्रकृति पर निगाह डाली। बकौल शायर "तेरा हुस्न सो रहा था, मेरी छेड़ ने जगाया, वो निगाह मैंने डाली, कि सँवर गई जवानी"। कम से कम उन्हें तो ऐसा ही लगा। उन्हें प्रकृति की उठान-ढलान, धानी चुनर, रंग-बिरंगा आँचल और अल्हड़ चाल वगैरह पसंद आए। प्रकृति का प्राकृतिक रूप मोहक और बहुरंगी था। बस निगाह डाल कर सँवारने की ज़रूरत थी। हाय हैलो हुई और डेटिंग का सिलसिला शुरू हो गया।

पर प्रकृति हमेशा उन्हें ही अपने पास बुलाती, ख़ुद कभी नहीं आती थी। अपने ही रंग-ढंग में रमी रहती थी। उन्हें अपनी शर्तों पर प्रेम करने की आदत थी। जल्द ही वे कुढ़ने लगे। ये क्या कि रोज़ वही हरी साड़ी, फूल पत्तियों वाला ओल्ड फैशन्ड गेटअप, देहातियों सी बहकी-बहकी चाल और बूँदों की टिपटिप या हवा की हाहाकार जैसी बोली। उस तक पहुँचने के रास्ते भी ऊबड़-खाबड़, कभी उमस, कभी चिलकती धूप, तो कभी ठिठुरन। प्रेम में बाधाएँ और कष्ट उनके लिए नहीं बने थे। वे चाहते तो चटपट ब्रेकअप कर लेते, पुराने अफेयर तो चालू ही थे। पर उन्होंने कुछ शर्तें लागू कर प्रकृति को एक मौका देना तय किया।

इसके बाद प्रकृति की क्या दशा हुई आपको भी मालूम होगा। डेटिंग स्थल पर पाँच सितारे टँके, वहाँ तक जाने के लिए चिकनी सड़क बनी। इस काम में जो भी उठान-ढलान बीच में आया, बारूद या जेसीबी से बराबर कर दिया गया। रिसॉर्ट कहलाने वाले इस प्रकृति-प्रणय कुंज में हूहा करती हवा का प्रवेश बंद करवा कर उष्ण या शीतल वातानुकूलित समीर का प्रवाह हुआ। साथ ही हुआ प्रकृति का भी संपूर्ण मेकओवर। झाड़-झंखाड़ हटा कर करीने से छँटी हरियाली, अमलतास की बड़ी-बड़ी बिंदियों की जगह नियोन के फ्लैश लाइट्स और एलईडी की चकमक लड़ियाँ। पत्थरों पर सर पटकती धाराओं को बाँध कर रिवूलेट और फाउंटेन बने। उन्हें प्रकृति के प्रकाश विन्यास से भी चिढ़ थी, ये क्या कि कभी बेतुका-सा झुटपुटा तो कभी एकदम चौंधियाहट। प्रकृति से प्रेम व्यापार के लिए उन्होंने जो प्रासाद बनवाया उसमें रोशनी के इस गड़बड़झाले को हटाकर दिन रात एक-सा करवा दिया। ये सब करने के बाद वे विधिवत् प्रकृति से प्रेम करने आने लगे। पुरानी प्रेमिकाएँ समृद्धि और शक्ति भी साथ होतीं। बात यहीं नहीं

कमलेश पांडे
बी-260, पॉकेट-12, केंद्रीय विहार
सेक्टर-12, नोएडा (उ.प्र.)
मोबाइल- 8383016604
ईमेल- kamleshpande@gmail.com

रुकी, प्रेम और व्यापार को एकाकार करने की अपनी आदत से लाचार उन्होंने अन्य प्रकृति प्रेमियों को भी आमंत्रण दिया और उनकी प्रेमलीला हेतु कॉटेज नामक प्रणय कुंजों का निर्माण करवाया।

किंतु प्रकृति का स्वरूप इतना विराट् था कि प्रकृति प्रेम के इस मॉडल में समाया ही नहीं। जिधर नज़र उठाओ, दूर-दूर तक वह अपने प्राकृतिक रूप में ही दिखती रही। प्रेम के नाम पर इंसानों का ये अत्याचार प्रकृति सदियों से झेल रही थी। उनकी चुनी सरकारें तो प्रेम का बहाना भी किए बग़ैर उससे साधिकार छेड़छाड़ करती रहती थीं। इससे पहले कि अपनी दृष्टि सीमा में आई सारी प्रकृति को वे अपने प्रेम से सराबोर कर देते, प्रकृति ने ही उनसे ब्रेकअप करने का मूड बना लिया।

बारूद और मशीनों से डर कर अपने जिस्म को झाड़ते हुए प्रकृति ने एक अँगड़ाई ली तो प्रणय कुंज अरारा कर धराशायी होने लगे। अपनी धाराओं की अल्हड़ चाल को कैटवाक में बदलने के लिए बने रैंपों को उसकी खिसियाई लहरों ने उखाड़ फेंका। टू लेन चिकनी सड़क को जगह-जगह प्रकृति ने अपने उठान-ढलान जैसा ही बना दिया। अपने जिस्म पर हुए हर अतिक्रमण को प्राकृतिक बुलडोज़रों से हटाना शुरू किया तो प्रकृति प्रेमियों में भगदड़ मच गई।

प्रकृति के अलावा उनका ये प्रेम प्रसंग उन सच्चे प्रकृति प्रेमियों को भी महँगा पड़ा जो प्रकृति की शर्तों पर ही उससे प्रेम करते थे। वे तो उसकी बाँहों में ही रहते थे और उसके हर अंग को मुलायमियत से स्पर्श करते थे। इस ब्रेकअप का कहर उन पर कुछ ज़्यादा ही टूटा। प्रकृति कई दिनों तक उनसे नाराज़ और दूर रही।

उन प्रेमी जनों की तरह, जो अच्छी कुटाई के बाद भी प्रेम से बाज़ नहीं आते, उनका भी प्रकृति प्रेम अभी कायम है। प्रकृति प्रेम का व्यापारिक मॉडल उनके भविष्य के प्रोजेक्टों में शामिल हो चुका है। मौक़ा मिलते ही वे फिर प्रकृति पर डोरे डालना चालू कर देंगे, मुझे यक़ीन है।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

देवी नागरानी

अश्क आँखों से गर निकल जाते
मुस्कराते जो तुम बहल जाते
हम तो बैठे थे आस में उसकी
वो बुलाते तो सर के बल जाते
दर-दरीचों की जागती क़िस्मत
काश कुछ रिश्ते उनमें पल जाते
हम न आते जो उनके धोखे में
यूँ न रंगीन ख़्वाब छल जाते
फँस भी जाते अगर गुनाहों में
उसकी रहमत से हम निकल जाते
शह के बदले में मात हो जाती
गर ग़लत चाल हम ये चल जाते
जाने क्यों दल-बदल रहे हम तुम
अच्छा होता जो ख़ुद बदल जाते
ज़िंदगी दे रही है मौका फिर
काश इस बार हम संभल जाते
आग ही आग बन गई 'देवी'
तुम जो छूते तो हाथ जल जाते

000

कैसे उजड़े हैं आशियाँ देखो
ढह गए घर जहाँ मकाँ देखो
कैसी चिंगरियाँ हैं फैली ये
जल रहे आशियाँ कहाँ देखो
जिसने फहराया जीत का परचम
कितनी हारी है बाज़ियाँ देखो
थे सिकंदर जो इस ज़माने के
उनकी मगरूर शोख़ियाँ देखो
फ़ुरसतों में करेंगे बातें फिर
कह रहा है बेज़ुबाँ देखो
बाढ़ कैसी है आई आँखों में
दर्द का कारवाँ रवाँ देखो
दूर रहकर किनारे साथ रहे
फ़ासले 'देवी' दरमियाँ देखो

000

है बाग-बाग मिरा दिल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
महक उठी है ये महफ़िल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
न तू कली है कोई और मैं कोई भँवरा
हुए हैं फिर भी क्यों घायल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
गवारा कैसे हो ये दूरी, है कैसी मजबूरी
मिलन हुआ है क्यों मुश्किल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
क्यों झूम- झूम के मन बावरा है नाचे यूँ
गया है कल से मचल दिल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
खिली कली तो बनी है गुलाब गुलशन का
हुआ लिबास भी झिलमिल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
उठी जो दिल में तमन्ना यूँ लेके अँगड़ाई
तमाम यादें थीं बेकल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से
न ग़म-ख़ुशी का लिया तूने ज़ायक़ा 'देवी'
गले तू आके कभी मिल, ग़ज़ल की ख़ुशबू से

000

ये वो है कशकोल जिसका छेद भी दिखता नहीं
ख़्वाहिशों का ये कुआँ क्यों कर कभी भरता नहीं
बोझ अपने ही तले धरती है धँसती जा रही
ख़ैर कर मौला, कहर से कोई क्यों डरता नहीं
आस्माँ छूने की ज़िद में मन उड़ा क्यों जा रहा
पैर जाने क्यों ज़मीं पर आजकल पड़ता नहीं
जाने किस हालात से मजबूर होकर ले लिया
वर्ना क़र्ज़ा वह किसी से लेने की करता नहीं
क्या है नीयत इसकी-उसकी, तेरी-मेरी जाने सब
करता है इन्साफ़ जो वो, क्यों किसे खलता नहीं
वक्त है बेदारगी का फिर भी काफ़िर सो रहा
नींद से ग़फ़लत की नादाँ 'देवी' क्यों उठता नहीं

000

पंछियों के बालो-पर थे, पर सरों का क्या हुआ
नीड़ में जो थे बसाए, उन घरों का क्या हुआ
नींव आँगन की हिली तो हिल गई दीवार भी
लड़खड़ाई पीढ़ी क्यों, उन आसरों का क्या हुआ
क्यों नया इतिहास कोई लिख रहा है याद में
जिनकी तड़पी आह थी, उन शायरों का क्या हुआ
क्यों बहारों में ख़िज़ां की याद बरबस आ गई
जो कली मसला किए उन कायरों का क्या हुआ
डगमगाती नाव देखी उस तूफ़ानी रात में
आँखों से ओझल हुए उन लंगरों का क्या हुआ
सूद तेरा हम चुका पाए कहाँ ऐ ज़िंदगी
क़र्ज़ तूने भी लिए कुछ, उन करों का क्या हुआ
तिनका-तिनका लोग बिखरे उस तूफ़ानी रात में
तिनकों से 'देवी' बसे घर उन छतों का क्या हुआ

000

देवी नागरानी
ईमेल - dnangrani@gmail.com

व्यंग्य

केजी-2 वाट्सएप समूह में आपका स्वागत है

भूपेन्द्र भारतीय

बाप बना तो एक बार फिर मैं भी कुछ दिन पहले केजी-2 की वाट्सएप कक्षा में बाहरी रूप से भर्ती हो गया। जैसे आजकल हर कोई कही भी बैठकर किसी भी संस्था में वाट्सएप के माध्यम से भर्ती हो जाता है। मैं भी फिर से ऐसे ही एक आभासी स्कूल में भर्ती हो गया। मेरे समय में पहली कक्षा से ही स्कूल की शुरूआत होती थी। पाँचवीं कक्षा से ड्रेस कोड जैसी आफ़त आती थी। टिफिन के नाम पर माड्साब की छड़ी व पानी स्कूल के पास लगे हेंडपंप से ही पिया जा सकता था। आजकल जैसे केजी वन, केजी टू, प्ले स्कूल, किंडर गार्डन आदि का झंझट नहीं था। इन दिनों बाप बनना भी कोई मज़ाक थोड़े है। सुबह उठते ही बच्चों के स्कूल के लिए कूदाफाँदी शुरू। सुबह-सुबह स्कूल वाले से ज़्यादा माँ-बाप की फ़जीहत ! वाह रे मेरी आधुनिक शिक्षा नीति। बाप बनकर भी फिर से स्कूल की माथापच्ची करनी पड़ेगी पता ही नहीं था।

मैं केजी-2 के वाट्सएप समूह में शामिल तो कर लिया गया लेकिन मुझे बहुत बाद में पता चला कि इसमें पढ़ाई नहीं होगी। बल्कि इस समूह के माध्यम से मुझे एक आज्ञाकारी बाप बनाया जाएगा। मुझे अपने बच्चे का टिफिन कैसे तैयार करना है। उसकी माँ का कैसे हाथ बटाना है। टिफिन में किस दिन क्या रखना है और कौन से रंग की सब्ज़ी रखना है और किस दिन कौनसे रंग की रोटी रखना है। इस टिफिन संहिता का ज्ञान मुझे इस वाट्सएप समूह से मिलने लगा। मैं अब जाकर हमारी अंग्रेज़ी मानसिकता वाली चमत्कारी शिक्षा नीति को समझने लगा। किस दिन किस रंग की ड्रेस व कब रंगीन कपड़े पहनना है ! किस दिन स्कूल में पढ़ाई होगी और किस दिन सिर्फ़ गतिविधि होगी, यह समझना मेरे लिए मुश्किल हो गया है।

आजकल के स्कूलों में गतिविधि को सुंदर अक्षरों में लिखते हुए "एक्टिविटी" का नाम दिया जाता है। कब कौन सी एक्टिविटी का संदेश वाट्सएप कक्षा में आ जाए ! मेरी धड़कन बढ़ी रहती है। हमारे समय के माड्साब इतना नहीं डराते थे, जितना आजकल के ये एक्टिविटी मैसेज डरा देते हैं। एक्टिविटी मेरे बच्चे को करना है लेकिन माँ-बाप की एक्टिविटी पहले से ही शुरू हो जाती है। इधर एक्टिविटी का वाट्सएप संदेश आया और बाप-माँ को अपनी एक्टिवा उठाकर बाज़ार से एक्टिविटी के लिए सामान ख़रीदने के लिए भागना पड़ता है।

आजकल इसमें ग़ज़ब की एक्टिविटी हो रही है। मेरे केजी-2 वाट्सएप समूह में मुझे एक बार फिर अपने बचपन को पास से देखने का अनुभव हो रहा है। लेकिन यह कैसा बचपन ? सुबह से उठो और फिर स्कूल की बस में चढ़ो तो शाम तक घर आओ ! और शाम को घर आते ही फिर कोचिंग के लिए भागो ? कोचिंग का वाट्सएप समूह अलग है। उस पर भी मुझे बहुत कुछ सीखने को मिलता है। डाँट भी पड़ती है। उस समूह में मैं अतिरिक्त ख़र्चा करके सीख रहा हूँ व अपने बच्चे को पढ़ा रहा हूँ ! उस समूह में भी एक्टिविटी की कभी-कभी चर्चा होती है। कभी-कभी कोचिंग वाले वाट्सएप समूह में भी एक्टिविटी का संदेश आता है और मेरी धड़कनें बढ़ने लगती हैं !

इस तरह की वाट्सएप कक्षाओं के माध्यम से मेरा तो हमारी सरकार व शिक्षा विभाग से निवेदन है कि हमारी नई शिक्षा नीति में शिक्षा के साथ-साथ एक्टिविटियों का भी अलग से एक विषय रखना चाहिए। और हो सके तो सरकार को एक एक्टिविटी विभाग बना देना चाहिए। सरकार के हर विभाग की सारी एक्टिविटियों को एक्टिविटी विभाग ही देखे। मेरे इस समूह में बड़े-बड़े दिग्गज अभिभावक भर्ती हैं। लेकिन यहाँ वे भी सीख ही रहे हैं। संदेशों का पालन करने में भागदौड़ करते रहते हैं। बड़े अधिकारी, कलेक्टर, जज, बिज़नेसमैन, पुलिस जैसे अभिभावक होकर भी बच्चों के स्कूल की एक्टिविटियों के सामने नतमस्तक है। केजी-2 समूह में रहकर मन में विचार आता है कि मैं अपने बच्चे को शिक्षा के लिए स्कूल भेज रहा हूँ ? या फिर किसी फिल्म की शूटिंग में भेज रहा हूँ ! वहीं समूह के संदेशों से लगता है कि किसी कंपनी के द्वारा अपने कर्मचारियों को घर आते ही वाट्सएप संदेश भेजकर फिर वर्क फ्रॉम होम पर लगा दिया गया है....।

000

भूपेन्द्र भारतीय
205, प्रगति नगर, सोनकच्छ,
जिला देवास, मध्यप्रदेश 455118
मोबाइल- 9926476410
ईमेल- bhupendrabhartiya1988@gmail.com

अमेरिका का शहर लॉस वेगस -जलते रेगिस्तान में चमकता स्वर्ग

रेखा भाटिया

हवाई जहाज़ के बड़े पँख के नीचे कोहरे में ज़मीन पर बहती एक नदी धुँधली-सी दिखाई पड़ रही है और यादों की एक धुँधली नदी मन की ज़मीन पर बहना शुरू हो जाती है। सुबह के 7:25 बजे हैं, सूरज के दर्शन आसमान में और धरती के मध्य होने शुरू हो गए हैं। मेरा सफ़र भी शुरू हो रहा है। मन ख़ुश है, आभार मान रहा है आज के दिन का। मार्च का अट्ठाईसवाँ दिन। आज से पूरे सवा साल पहले एक अधूरी प्रेम कहानी को मैं आज फिर से अंजाम देने जा रही हूँ। साल 2021 दिसंबर महीने में बचपन के ख़्वाब ग्रैंड कैनियन को देखने का शौक़ पूरा करने गई थी। बहुत तपस्या की तन-मन-धन की, समय की, ऊर्जा की ! सर्दी सहने के चरम को छू सारे शारीरिक कष्ट सहकर भी ग्रैंड कैनियन के दर्शन न हो पाए, वैसे ही जैसे बहुत तपस्या करने के बाद भी भगवान् दर्शन न दें और तपस्या असफ़ल हो जाए।

मैंने अपने प्रिय लेखक पंकज सुबीर का अभी-अभी आया नया उपन्यास "रूदादे-सफ़र" पढ़ने के लिए निकाल लिया, सुना है पिता-पुत्री के रिश्तों पर एक बहुत भावुक कर देने वाला और बहुत ही गंभीर विषय पर लिखा गया है। यहाँ सूरज के उभरने के साथ ही धरती का अक़्स छितरे बादलों में से होता हुआ कुछ साफ़ नज़र आने लगा है। मन की ज़मीन पर यादों की कई बस्तियाँ बसी हैं, कुछ सूखे पहाड़ों के मध्य, कुछ दु:ख के समुंदर से घिरी हुई। विदेश में प्रवास करने का एक यह बहुत बड़ा दु:खद सच है, पिता को अचानक एक दिन में खो दिया और कोविड न भी होता तब भी एक दिन में मध्य भारत नहीं पहुँचा जा सकता। यहाँ तो सुख भी अकेले और दु:ख भी अकेले भोगना पड़ता है।

आज मन के दो टुकड़े जुड़ रहे हैं एक पुराना यादों का और एक नया जो ख़ूबसूरत यादें बनाने के सपने फिर से देख रहा है। इंसानी मन और ख़्वाहिशें भी कितनी अजीब हैं न, लाख अधूरी रह जाएँ फिर से जीवित हो उठ खड़ी हो उठती हैं।

हवाई जहाज़ पूर्वी तट से पश्चिमी तट की ओर जा रहा है, कई घंटों का सफ़र है और पश्चिमी तट का समय पूर्वी तट से तीन घंटे पीछे है। आज जहाज़ में अधिकतर यात्रियों ने मास्क नहीं पहनकर रखा है, लॉस एंजलिस तक साढ़े पाँच घंटे लगेंगे। जीवन में कितना बदलाव आ गया है सबके। कोविड से पहले सब कुछ नार्मल था और अब ख़ैर कुछ-कुछ नार्मल महसूस हो रहा है और अच्छा लग रहा है। लेकिन जैसे-जैसे पीछे सरकते वक्त के साथ पश्चिमी तट की तरफ जा रहे हैं, छोटे-बड़े उबड़-खाबड़ काले पहाड़ धरती के सीने पर वक्त की मोटी सफ़ेद बर्फ़ बन जमे हैं। मानव मनोवृति, मन:स्थिति और मानसिकता कुछ अजीब-सी होती है, मैं

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शार्लोट, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए -28277
मोबाइल- 704.975.4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

पिछली यात्रा का अनुभव याद कर आने वाली नई यात्रा के फिर से असफल होने की आशंका से बेचैन हो रही हूँ। जीवन की यात्रा में भी हम कुछ ऐसी ही आशंकाओं से भर जाते हैं ...

लॉस एंजलिस एयरपोर्ट पर चार घंटों का ले ओवर है, और मैं क़िताब से मन सरकाकर यात्रा के बारे में ज़्यादा सोच रही हूँ। यायावर मन यात्राओं में जीवन का आनंद पाता है, लॉस वेगस जाने का मूल कारण लॉस वेगस है ही नहीं। जिप्सी मन जानता है असली कारण, मैं मुस्करा पड़ी। इस साल पश्चिमी तट पर ठंड भी ज़्यादा पड़ रही है और एटमोस्फेरिक रिवर की वजह से बारिशें लगातार पड़ रही हैं, बाढ़ की स्थिति बन आई है कई हिस्सों में। पूरा पश्चिमी तट मरुस्थल में धीरे-धीरे तब्दील होता जा रहा है, ग्लोबल वॉर्मिंग की वजह से। एक सरकार आती है और पर्यावरण को बचाने की बात करती है, योजनाएँ बनाती है। दूसरी सरकार ग्लोबल वॉर्मिंग को पूरी तरह से ख़ारिज कर योजनाओं को रद्द कर देती है। सरकारें पोशाकों की तरह योजनाएँ बदल लेती हैं, वोट बैंक के कारण। पर्यावरण की फ़िक्र या भगवान् कर लेंगे या आम जनता .....

हवाई जहाज़ में फिर चढ़ते ही आसमान में विचार फुर्र से हवा से बतियाने लगे। पायलट ने प्लेन को 90 डिग्री कोण पर मोड़ा, लॉस एंजेलिस शहर का नज़ारा नज़रों के सामने था, यह सबसे मज़ेदार पल होता है हर फ्लाइट का। घना, बहुत बड़ा महानगर, ऊँची बिल्डिंगें और बहुत थोड़ी-सी उधार की हरियाली साथ ही ख़ूबसूरत समुंदर। बड़े शहर पानी पर हक़ जता हरियाली का ढोंग -दिखावा कर लेते हैं शहर को ख़ूबसूरत दिखाने के लिए लेकिन ख़रीदा पानी छोटे कस्बों के हक़ का होता है, जो पर्यावरण की मार सबसे अधिक सह रहे हैं पूरी दुनिया में।

जैसे-जैसे फ्लाइट लॉस एंजेलिस से दूर उड़ान भरती रही, कैलिफोर्निया स्टेट और नवाडा स्टेट का पीलापन लिए मरुस्थल दृष्टिगोचर होता रहा। आसमान साफ़ था, सब कुछ बहुत स्पष्ट नज़र आ रहा था। छोटी-सी फ्लाइट थी। लॉस वेगस पीली, काली, स्लेटी

और कत्थई - लाल पहाड़ों की बस्तियों के मध्य बसा एक घना शहर। मार्च-अप्रैल में भी कई पहाड़ बर्फ की मोटी परत से ढके हुई थे। रेगिस्तान के पीलेपन में ऊँचे काले और पीले बर्फ से ढके पहाड़ अपनेआप में रोमांचित कर रहे थे। नवाडा, लॉस वेगस घूमने का यह पाँच सालों में दूसरा मौका था और संयोग से बसंत के मौसम में ही। अब कारण बता ही देती हूँ, मेरे दूसरे कविता संग्रह के आने की ख़ुशी को सेलिब्रेट करने हमने मौसम की मार और बर्फ से बचने के लिए नवाडा, लॉस वेगस चुना। डेढ़ साल पहले फीनिक्स, एरिज़ोना में आए थे ग्रैंड कैनियन देखने, तब बचपन की एक प्रेम कहानी अधूरी ही रह गई थी। सोचा रास्ता बदल कर अधूरी कहानी को पूरा किया जाए। इसीलिए कमर कस कर आए थे इस बार मकसद पूरा कर कर जाएँगे। जब लॉस वेगस

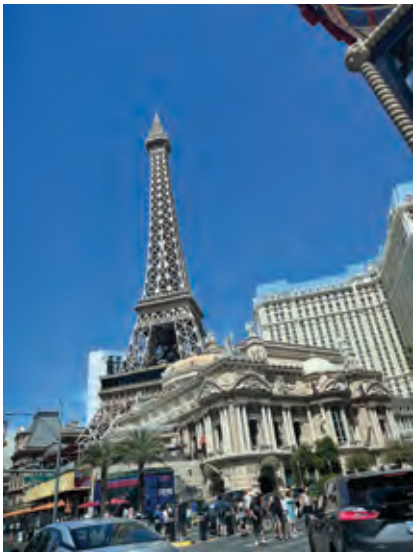

आए तब लॉस वेगस घूमने का मकसद नहीं था, उसे केवल शरणास्थली बनाने का मकसद था। रिसोर्ट और कार पूरे आठ दिनों के लिए बुक कर दिए थे। लॉस वेगस एयरपोर्ट पर ही गैंबलिंग की रंगबिरंगी छोटी-बड़ी मशीनें गैंबल करने के लिए लगी थीं। कई बड़े शोज, जादुई खेल-तमाशे, शॉपिंग के लिए कई बड़े स्टोर्स, होटल्स बुक करने के लिए कई बड़े प्रलोभन लिए सजे काऊंटर और मदिरा सेवन के लिए कई बार ! एक अजीब तरह की बू और ऐशो-आराम के सारे साज़ो-सामान। एयरपोर्ट पर जो लोग शहर में आ रहे थे उनकी आँखों में ऐशो-आराम और मनोरंजन के स्वप्न और बेफ़िक्री की चमक का नशा छलक रहा था, कुछ दिन का ख़रीदा हुआ राजसी जीवन जीने का अवसर और जो लोग छुट्टियाँ ख़त्म कर जा रहे थे, उनके चहेरे पर वापस जाने का अफ़सोस साफ़ झलक रहा था।

मार्च अंत में भी यहाँ हड्डियाँ ज़माने वाली ठंड पड़ रही थी, ग्लोबल वार्मिंग का असर इस शहर की तबियत पर गहरा पड़ा था, इस शहर के स्वभाव के विपरीत लोग पूरे कपड़ों में ढके थे।

एयरपोर्ट से कार लेकर जब रिसोर्ट की तरफ चले लॉस वेगस के बड़े-बड़े बेहद ख़ूबसूरत होटल, उनकी वास्तुकला, आकार, बनावट, सजावट देखकर एक बार फिर से दंग रह गए, और मन की लालसा बढ़ी कि कुछ दिन तो यहाँ गुज़ारें जाएँ!

जल्द ही अपने को तैयार कर जब शहर की सड़कों पर उतरे, सबसे पहली मुलाकात हुई प्रबल स्वर के स्वामी "ग्रेट टेल्ड ग्रेकल" बड़े पंछी से जो ऊँचे सुर में गा रहे थे, महीन टहनियों के बीच विशाल कौए से दिखते। हमने सुर में सुर क्या मिला दिया, वह और ज़ोरों से गाने लगे, ज़रा न शर्माए। इनकी चाल-ढाल तो बिलकुल लॉस वेगस जैसी ही थी।

हम उबर टैक्सी कर लॉस वेगस स्ट्रिप आ गए, यह शहर का मेन रोड एरिया है और यहीं सारे मुख्य और बड़े -बड़े होटल हैं, इसी एरिया से लॉस वेगस घूमने की शुरुआत होती

है। रंगबिरगी रोशनियों, बिल बोर्ड और तरह-तरह की थीम पर बने ऊँचे चमचमाते अधिकतर केसिनो होटल इसी एरिया में हैं। सभी मुख्य महँगे रेस्टोरेंट्स, शॉपिंग मॉल, जुआघर, और वेगस में होने वाले शोज़ जैसे म्यूज़िक, मैजिक, कॉमेडी और सर्कस के करतब जैसे म्यूज़िकल डांस शोस इसी एरिया में हैं। सबसे ख़ास बात हर होटल एक थीम पर बना होता है, उस होटल की बिल्डिंग भी उसी थीम पर बनी होती है। भीतर उसकी सजावट, वास्तुशिल्प, कमरे, फर्नीचर, सामान सभी उसी एक थीम पर होता है। हर एक होटल अंदर से बहुत बड़ा और विशाल होता है, उसमें मेहमानों के ठहरने के लिए हज़ारों कमरे होते हैं। सबसे नीचे वाली मुख्य तल पर जुआघर, बहुत सारे शराबख़ाने और रेस्त्रां होते हैं और ऊपर की मंज़िल पर ख़रीददारी के लिए दुकानें, शोज़ के लिए थियेटर, बड़े-बड़े हाल अलग-अलग कार्यक्रमों के लिए जैसे कई बड़ी कंपनियाँ अपना सेमीनार और सालाना मीटिंग, मेल -मिलाप लॉस वेगस के बड़े होटलों में करती हैं। बाकी की ऊपरी मंज़िलों पर मेहमानों के रहने के लिए कमरे होते हैं। यदि आप आपकी छुट्टियों में सिर्फ ड्रिंक करना और गैंबल करना पसंद करेंगे तो आपको होटल से बाहर निकलने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती है, लग्ज़री होटल में सभी सुख-सुविधाएँ मौजूद हैं। स्पा, सैलून से लेकर जिम, तरणताल, जहाँ आप पूरा आराम कर रिलैक्स हो सकते हैं। दुनिया के सबसे अधिक, सबसे बड़े और बेहतरीन होटल एक ही शहर में हैं। क्या महल या क़िले यह होटल उनसे भी शानदार, बेजोड़ और आधुनिक वास्तुशिल्प और टेक्नोलॉजी के बेजोड़ उदहारण हैं। सबसे ख़ास बात यह होटल कोई ऐतिहासिक इमारतें नहीं हैं जिन्हें आज से दो हज़ार सालों के बाद भी देखा जाएगा या संरक्षित कर रखा जाएगा, यह शुद्ध मनोरंजन की व्यावसायिक इमारतें हैं। इन्हें समय-समय पर अपग्रेड किया जाता है, पुरानी इमारतों को हटा नई और अधिक सुख-सुविधा वाली आधुनिक इमारतों को बहुत जल्द खड़ा किया जाता है।

सबसे रुचिकर बात है, ये सब होटल, शॉपिंग काम्प्लेक्स, रेस्टोरेंट, शो थिएटर आपस में बाहर और अंदर से जुड़े हुए हैं। आप इन्हें चलते-चलते एक बिल्डिंग से दूसरी बिल्डिंग में घूमते हुए देख सकते हैं। लॉस वेगास स्ट्रिप 4.5 मील लंबा मुख्य मार्ग है। बहुत रौनक और चकाचौंध से रोशन सड़क के दोनों ओर लोग पैदल ही घूमते हुए होटलों के वास्तुशिल्प, नियॉन बल्बों और बड़े-बड़े बिल बोर्ड से सजी चमचमाती इन इमारतों को देखते जाते हैं। सड़क पर साल भर बहुत भीड़ होती है, यह शहर कभी रात में सोता नहीं है। जितने लोग सड़क पर घूम रहे होते हैं उससे पाँच गुना ज़्यादा लोग अंदर केसिनो, होटलों, बार, रेस्टोरेंट और शॉपिंग काम्प्लेक्स में होते हैं। आम होटलों में कमरे और रेस्टोरेंट होते हैं लेकिन लॉस वेगास के होटलों में मॉल के

साथ-साथ थियेटर भी होते हैं। यह अपने आप में बहुत अद्भुत है क्योंकि इनका रख-रखाव भी बहुत भिन्न होता है। मज़े की बात है एक ऐसी सम्पूर्ण मनोरंजन की दूकान है यह शहर जो किसी भी फेंटेसी को पूरा करने में सक्षम है और यह दूकान चौबीस घंटे खुली रहती है।

ज़िंदगी की कोई भी कल्पना बड़े या छोटे परदे देखी होगी लेकिन इस शहर में ज़िंदगी की कोई भी कल्पना हक़ीक़त में जीने को मिलती है। जो भी यहाँ आता है वह इस काल्पनिक संसार का ख़ुद हिस्सा होता है। किसे कब, कहाँ, क्या और कैसे होना है वह ख़ुद निर्णय ले सकता है। यह दुनिया का सबसे बड़ा व्यस्क थीम पार्क है। रात्रि जीवन जीने की संसार में सबसे उत्तम जगह और यहाँ आने वाले ख़ुद को एक अद्भुत, अलग और अलौकिक दुनिया में पाते हैं। एक स्थानीय कहावत है, "जो भी लॉस वेगस में होता है, जो भी पाप आप करते हैं, वह राज़ वेगस में ही पीछे रहता है।" यह शहर तपते रेगिस्तान में धरती का स्वर्ग कही जाने वाली नगरी है, जिसमें बच्चे, बूढ़े, नौजवान, आदमी औरत, सभी आयु, वर्ग के लोग मग्न हो जाते हैं।

आज वेगस स्ट्रिप पर आकर थोड़ा धक्का लगा। इस इठलाते शहर की अदाओं में कुछ नीरसता आ गई थी। उबर के ड्राइवर ने बताया कोविड की बड़ी मार पड़ी है इसे और दूसरा बहुत ठंड, बारिश और बर्फ़ पड़ने की वजह से वातावरण सुस्त हो गया है। सच ही कहा था उसने जब 2017 मार्च -अप्रैल में हम घूमने आए थे तब गर्मी के छोटे कपड़े पहन कर घूम रहे थे और आज स्वेटर-जैकेट सब पहन रखा है। ग्लोबल वार्मिंग जिस तेज़ी से वातावरण पर गहरा प्रभाव डाल रहा है, उसका असर आम होता जा रहा है और हम मानव .... उतनी तेज़ी से धरती के वातावरण को स्वस्थ रखने के लिए कुछ भी नहीं कर रहे, पूरी तरह से स्वीकार भी नहीं रहे !

लॉस वेगस को देखने का असली मज़ा रात में आता है। जब शाम ढलने लगती है और शहर का वातावरण मादक होने लगता है। दिन चढ़ा हुआ था और तब सबसे बेहतर उपाय होता है किसी भी बड़े होटल के केसिनो में

चले जाओ या शॉपिंग काम्प्लेक्स में।'बलाज़िओ होटल' हर वर्ष चाइनीस न्यू ईयर के रंगों पर आधारित थीम पर दुनिया भर के विभिन्न फूलों, फल और पौधों से भव्य सजावट करता है वाटर फाउंटेन और कई बड़ी ख़ूबसूरत मूर्तियों पर। जिसे देखने सालभर लाखों लोग आते हैं, हमने वहीं से शुरूआत की। यह तस्वीरें खींचने का एक बेजोड़ स्थान है। फिर यहाँ के शॉपिंग मॉल होते हुए बाहर आकर यहाँ 'अरिया होटल ' तक हर 15 मिनट में मुफ्त में चलने वाली ट्रैन की दो बार सवारी की, इस ट्रैन से स्ट्रिप का ख़ूबसूरत नज़ारा दिखता है। यहाँ से 'एम जी एम होटल्स' तक पहुँचा जा सकता है। 'न्यूयॉर्क-न्यूयॉर्क होटल' आर्टिटेक्ट का बेजोड़ नमूना है, यहाँ के होटलों की बिल्डिंग्स के सामने खड़े होने पर आभास होता है आप हूबहू न्यूयॉर्क शहर के सामने खड़े हैं लेकिन 1/3 आकर में छोटा ! एम्पायर बिल्डिंग, स्टेचू ऑफ़ लिबर्टी के हूबहू नमूने, ब्रूकलिन ब्रिज भी। ब्रुकलिन ब्रिज के स्टेज पर गाता गायक, म्यूज़िक की धुन और सड़क पर रेस्टोरेंट में बैठे रिलैक्स करते लोग, आसपास उत्साह से भरे, घूमने की उत्तेजना से भरे यात्री माहौल को बेहद ख़ुशनुमा बना रहे थे। इस होटल के भीतर भी शॉपिंग मॉल, रेस्टोरेंट न्यूयॉर्क शहर की बिल्डिंगों जैसे बनाए गए हैं जो सुंदर हैं। ऊँची-ऊँची काँच की नक़्क़ाशीदार दीवारों के मध्य बहता मध्यम प्रकाश और मादक चकाचौंध मन को बहलाती है। वेगास में अब मांसाहारी के साथ शाकाहारी खाने के बहुत विकल्प हो गए हैं, लगभग सभी नामी और छोटे रेस्टोरेंट में।

कई केसिनो और होटलों में घूमने के बाद जब शाम घिर आई हम फिर बेलाजिओ होटल के पास आ गए और हर रात हर घंटे-आधे घंटे में यहाँ की झील में म्युज़िक के साथ फुव्वारों वाला विश्व प्रसिद्ध शो देखने। शो देखने यहाँ बहुत भीड़ होती है। कई महिला-पुरुष डिज़्नी के कैरेक्टर की पोशाकों में घूमते हैं, कई अर्धनग्न युवतियाँ ख़ास तरह के लिबासों में सजी-धजी सड़क पर घूमती दिखाई पड़ती हैं और यह सभी थोड़े पैसे के लिए यात्रियों से

उनके साथ फ़ोटो खिंचवाने की ज़िद करते हैं। कई पुरुष-महिलाएँ ज़बरदस्ती हाथ में एडल्ट शो के कार्ड थमा देते हैं। यह सोचकर इनके साथ फ़ोटो खिंचवा लिया, इतनी ठंड में अर्धनग्न खड़े हैं, पता नहीं इनकी कैसी मज़बूरी है।

अगले दिन हमें शहर से बाहर जाना था। लॉस वेगस देर रात तक जगाता है। हम किसी तरह ख़ुद को धकेलते आठ बजे तैयार होकर निकल पड़े। आज सुबह की मुलाकात सूरज की इस शहर से बड़ी सुस्त रही और शायद सूरज को इसकी आदत भी है। आज इस शहर पर घने बादलों का जमावड़ा है। बड़ी-बड़ी, ऊँची, आलीशान, चमकीली होटलों की इमारतें जो कल रात नशे में डूबी थीं, अभी भी नशे में सुस्त पड़ी हैं। एक अजीब-सी नशे की गंध से भरा हुआ। सुबह की ऊर्जा रात में और

रात की ऊर्जा उत्तेजना के चरम पर होती है।

शहर के चारों ओर सोच और कल्पना से अधिक पहाड़ हैं और एक बहुत रमणीक स्थान है। लॉस वेगस स्ट्रिप एरिया से बाहर दिन की रोशनी में शहर का दूसरा हिस्सा देखा, यहाँ भी अधिकतर स्पा, मसाज स्टोर्स, टेटू बनवाने की दुकानें, स्मोक शॉप्स, वैपिंग, गैंबलिंग, मदिरा के स्टोर्स हैं। यह यहाँ की जीवन शैली का एक अभिन्न अंग है। इस शहर में प्रेम और सौंदर्य के मायने बदल जाते हैं जो दिल से विस्थापित हो शरीर पर ही टिक जाते हैं।

आज यूटाह प्रदेश के जादुई पहाड़ों से घूमकर देर रात लॉस वेगस लौट रहे थे हाईवे इंटरस्टेट 15 से, तब घन अँधेरे में कई मीलों दूर से लॉस वेगस शहर की चमक देखी, जो विश्व में किसी स्थान की सबसे अधिक चमक है। इसे अंतरिक्ष से देखा जा सकता है।

लॉस वेगस शहर के दोनों तरफ आते-जाते खुले-खुले मीलों तक फैले मरुस्थलीय मैदान, पहाड़, घाटियाँ, वादियाँ, चट्टानों के विभिन्न प्रकाश, आकार और रंग, कहीं बहती नदी, कहीं झील सच चंद शब्दों में इस स्थान की ख़ूबसूरती को लिखना असंभव है। ज़र्रे - ज़र्रे पर प्रकृति एक नया रंग, एक नया ढंग ओढ़ लेती है। लॉस वेगस के पास ही कई प्राकृतिक रमणीक स्थान हैं, जिन्हें एक दिन में घूम सकते हैं। कई कंपनियाँ हैं जिनके पास अलग-अलग पैकेज हैं, जो प्राइवेट जीप, कार, बस, वैन और हेलीकॉप्टर से टूर देते हैं। लॉस वेगस शहर का टूर हेलीकॉप्टर से लिया जा सकता है और शहर का टूर खुली बस में भी लिया जाता है। खुली बस यात्रियों में बहुत प्रसिद्ध है।

नवाडा प्रदेश का अधिक क्षेत्रफल रेगिस्तान है; लेकिन पूरे अमेरिका में सबसे अधिक पर्वत शृंखलाएँ नवाडा में हैं। यहाँ पर नदियाँ, रेत के टीले, झीलें, पर्वत, पहाड़, कैनियन सभी एक जगह देखने को मिलते हैं। वेगस के आसपास सड़कें बहुत खुली हुई हैं और रमणीक दृश्य देखते हुए लंबी ड्राइव बहुत लोकप्रिय है। भिन्न-भिन्न भौगोलिक स्वरचना ही यहाँ की विशेषता है। बसंत ऋतु

अभी शुरू हो रही है, बर्फ भी है, सूर्य भी है, बारिश भी है, ठंड भी फिर भी सौंदर्य अपने चरम पर है। अमेरिका में कहीं भी घूमने जाओ एक जैकेट ज़रूर साथ रखनी चाहिए। अभी तो हम हड्डियाँ जमा देने वाली ठंड से भी मुकाबला कर रहे हैं।

रेगिस्तान में रहकर भी लॉस वेगस के पास पानी के स्रोत है। नवाडा अमेरिका का सिल्वर स्टेट 'सुनहरी प्रदेश' कहा जाता है लेकिन यहाँ अमेरिका की सबसे अधिक सोने की खदानें हैं जो संसार में चौथे नम्बर पर हैं। यहाँ की 81 प्रतिशत ज़मीन सरकार के कब्ज़े में है, कई मिलिट्री बेस हैं। यहाँ जनसंख्या बहुत कम है।

यहाँ आसपास प्राकृतिक भ्रमण के मुख्य स्थान- फायर ऑफ़ वैली, स्टेट पार्क, रेड रॉक कैनियन नेशनल मोनुमेंट, हुवर डैम, लेक मीड, माउन्ट चार्ल्सटन, डेथ वैली नेशनल पार्क, ग्रैंड कैनियन वेस्ट रिम प्रमुख हैं। लॉस वेगस सिर्फ गैंबलिंग का ही अड्डा नहीं है, इसकी लोकेशन कुछ इस तरह मध्य में है कि कई-कई जगहों पर यहाँ से जाकर एक दिन में आराम से घूमा जा सकता है। हमारी यात्रा का एक मुख्य कारण यही है। यहाँ के एयरपोर्ट से देश में बहुत सारे छोटे - बड़े शहरों के लिए सीधी फ्लाइट है। शहर से कुछ 40 मिनट दूरी पर लेक मीड पर बना प्रकृति की गोद में बसा हुवर डैम इंजीनिरिंग का एक बेजोड़ उदहारण है। इस डैम से तीन राज्यों के लाखों लोगों को बिजली और पानी की आपूर्ति होती है। कत्थई-भूरी कैनियन के बीच लेक मीड का फिरोज़ी रंग का पानी बहुत आकर्षित करता है। डैम से मेमोरियल ब्रिज भी दिखाई देता है। हुवर डैम का हमने 2017 में टूर लिया था।

लॉस वेगस का इतिहास बहुत रोचक है। सन् 1905 में साल्ट लेक सिटी और लॉस एंजेलिस के बीच एक रेलरोड बनाया गया और लॉस वेगस में एक छोटा सर्विस स्टेशन बनाया गया। सन् 1931 में नवाडा में जुआ खेलने को क़ानूनी मान्यता मिल गई। ग्रेट डिप्रेशन के समय इसी साल सन् 1931 में हुवर डैम की कंस्ट्रक्शन शुरू होने के साथ ही हज़ारों वर्कर इस एरिया में रोज़गार के लिए

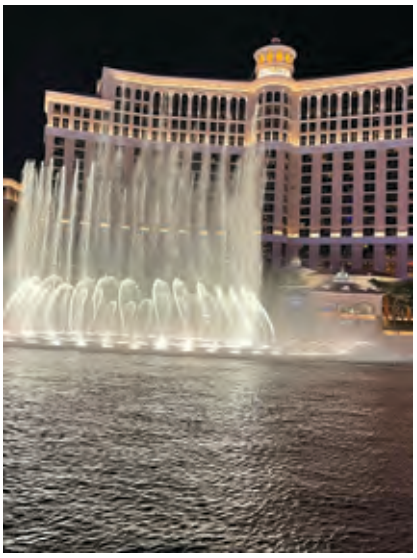

आए। शनिवार को छुट्टी के दिन उनके मनोरंजन के लिए वे लॉस वेगस आने लगे। यहीं से इस शहर के विकास ने पँख लगा नई उड़ान भरी और आज लॉस वेगस जुआ, मदिरा और वेश्यावृत्ति में विश्व की राजधानी है और नवाडा स्टेट की सबसे बड़ी आर्थिक और सांस्कृतिक राजधानी है। सन् 1946 में अमीर ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए महँगा फ्लेमिंगो होटल और जुआघर खुला। उसके बाद अमेरिका के घरेलू युद्ध के दौरान सन्1951 से लेकर 1963 तक अमरीका की मिलिट्री के द्वारा कई न्यूक्लियर बमों की इस क्षेत्र में ज़मीन पर टेस्टिंग की जाने लगी और इस शहर की गैंबलिंग पार्टियों में बड़ा उछाल आया। आज वर्तमान गवाह है यह संसार की सबसे बड़ा पार्टियों का शहर है। लॉस वेगास के संगीत शोज, एक्रोबेट वाले डांसिंग शोज,

मैजिक शोज और कॉमेडी शोज, कंसर्टस विश्व स्तर के हैं और विश्व में किसी भी एक स्थान पर इतनी उच्च कोटि के शोज एक साथ नहीं होते हैं। कई शोज सिर्फ वयस्कों के लिए होते हैं। हमारे इस भ्रमण में हमने दो वयस्क शो और एक पारिवारिक शो देखा; जिनमें नृत्यकला, संगीत, एक्रोबेट्स, सेट्स, लाइट्स और स्टोरी का मिश्रण बहुत उच्च स्तर का था। यह शोज उनके स्तर के कारण विश्व प्रसिद्ध हैं। वेगस की फ्रीमॉन्ट स्ट्रीट नाईट लाइफ विश्व प्रसिद्ध है, फ्रीमॉन्ट स्ट्रीट का अनुभव बहुत अलग होता है। पूरी स्ट्रीट की छत लेड लाइट्स से सजी विश्व की सबसे विशाल छत है। संगीत के साथ लाइट शो का बहुत सुंदर मनभावन डिस्प्ले होता है। यहाँ अर्धनग्न युवतियाँ और युवक सड़क पर विभिन्न वेशभूषा में सजे होते हैं, जिनके साथ फ़ोटो खिंचवाया जा सकता है। सन् 2017 में यह सब देखना बड़ा रोमांचकारी लग रहा था और एक हिचक की वजह से अजीब भी। तब साथ फ़ोटो खिंचवाने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी। खिंचवा भी लिया तो किसी को न दिखाने की कसम खा ली थी। लेकिन अब सन् 2023 में कई टूरिस्ट जिनमें भारतीय भी बहुतायात थे। युवक-युवतियाँ मदिरा पीते, सड़क पर नाचते, पार्टी करते उनके साथ रील्स बनाने में मग्न थे। आधुनिकीकरण ने कुछ ही सालों में मानव जीवन को कितना बदल दिया है, जिसे करने में हया महसूस होती थी, अब कोई हया का पर्दा नहीं करता !

यह सही है कि लॉस वेगस रात्रि जीवन का स्वर्ग है लेकिन यहाँ पूरे परिवार और बच्चों के साथ छुट्टियाँ मनाने के अनेकों आकर्षक स्थान हैं। एम्यूज़मेंट पार्क और एक्वेरियम है। कई दिनों की इस यात्रा में मैं टूरिस्टों का बहुत ध्यान से निरीक्षण कर रही थी। कई परिवार तीन पीढ़ी मिलकर अपने ग्रैंड पेरेंट्स का, पालकों का जन्मदिन, एनिवर्सरी एक साथ इकट्ठा मनाने आए थे। यहाँ विश्व का बेहतरीन स्वादिष्ट खाना मिलता है। जहाँ-जहाँ भी वेगस में घूम रहे थे बहुत सारे स्थानों पर सबसे अधिक संख्या बुज़ुर्गों की थी और वह भरपूर आनंद ले रहे थे। सोचकर अजीब

लगता है इस उम्र में वह इन जगहों को इतना आनंद कर रहे हैं। सच में उम्र दिमाग़ का कीड़ा ही तो है, ज़िम्मेदारियों को निभाने के बाद बची ज़िंदगी को कुछ क्षण उल्लास से जिया जाए और कुछ यादें ताज़ा की जाएँ जीवन के बीते सुनहरे काल की और कुछ नई यादें बटोरी जाएँ। हम जहाँ भी भ्रमण पर जाते हैं, सभी यात्राओं में हम अलग-अलग तरह के लोगों से मिलते हैं, बातें करते हैं, आपस में अनुभव बाँटते हैं, ख़ुशियाँ बटोरते हैं। यात्राओं का सबसे ख़ूबसूरत असर दिमाग़ पर पड़ता है, जो ज़िंदगी को समृद्ध बनाता है। इस बार लॉस वेगस शहर का पारिवारिक पहलू भी देखा।

वेगस स्ट्रिप एरिया में स्टैचू ऑफ़ लिबर्टी, आईफ़ल टावर, सीज़र्स पैलेस, वेनिशियन होटल, काँच का बना इजिप्ट का पिरामिड, एम जी एम होटल, हाई ऑब्ज़रवेशन व्हील आधुनिक युग के मनुष्यों द्वारा बनाये गए लाज़वाब संरचना के नमूने हैं और अभी सितम्बर 2023 में नया बना "स्फीयर" टेक्नोलॉजी, लेड लाइट्स स्क्रीन और 4डी का बेजोड़ उदहारण है जो आने वाले समय में मनोरंजन के नए तरीक़ों का धरती पर बेमिसाल उदाहरण होगा, उसकी चमक स्पेस से भी दिखाई देगी।

आम जीवन में हम सभ्य रहते हैं, दिन में शराब की बोतल हाथ में लेकर सड़कों पर नहीं निकल जाते लेकिन लॉस वेगस में कइयों के भीतर का जंगलीपन बाहर आ जाता है और उनका व्यवहार बेपरवाह हो जाता है। यह शहर बना ही उसी के लिए है वहाँ तक तो ठीक है लेकिन सबसे अधिक देखना तकलीफ़दायक था, असंख्य नौजवान युवक, युवतियाँ नशे में धुत जीवन को बर्बाद कर सड़कों पर रह रहे हैं। होमलेस (बेघर) की भरमार है वेगस में। इन लोगों को न अपने आज का पता है, न कल का और न ही आगे का। न आज की दशा का, न ही कोई दिशा है कल की। किसी व्यसन की लत का पड़ जाना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होता है। अति शोरशराबा, चमक-दमक और उग्र उत्तेजना दैनिक जीवन में हो तब वह जीवन में नकारात्मकता को

बढ़ावा देती है।

यह सोच मेरी हो सकती है, तटस्थ मन ठहराव ज़रूर देता है लेकिन फिर भी मनुष्य मात्र जब सांसारिक जीवन जीता है तब राग, द्वेष, काम, क्रोध कहीं न कहीं जीवन में किसी वक्त, किसी रूप में आता है, जीवन का तनाव। लेकिन जब आप घूमने जाते हैं प्रकृति के करीब होते हैं स्वत: ही जीवन के उस तनाव से मुक्त हो पाते हैं। अपने आप में जीने लगते हैं। प्रकृति विस्मित करती है। विलक्षण होती है, अतुल्य है। यहाँ मनुष्य आश्चर्य ही कर सकता है उस अविश्वनीय को देख कर स्वयं को भुला देना या स्वयं को पाकर स्वयं में जीना ! यात्राओं की बहुत प्लानिंग करनी पड़ती है, जैसे शहरों को बसाने के लिए बहुत योजना बनानी पड़ती है। योजना तो मैंने बहुत की थी लेकिन बसंत के मौसम में स्नो के साथ

कभी बारिश का अंदेशा, कभी दिन अचानक से बहुत गरम, कभी हवा चलने की वजह से गर्म रहकर भी बहुत ठंडा महसूस होता था। अंदेशों के बावजूद हम समय के साथ धार में बहते जा रहे थे। तब आने वाली कोई बाधा, बाधा न लगकर पार हो जा रही थी और हम जहाँ-जहाँ भी घूम रहे थे, उसका आनंद अधिक आ रहा था। अनुभव बटोरते जा रहे थे बिना शंका के और वह अधिक संतुष्टि दे रहे थे, यह आत्मिक सुख अधिक था किसी भौतिक सुख से।

तीन महीनों बाद अगस्त में हम फिर लॉस वेगस घूमने गए एक हफ़्ते के लिए.....लॉस वेगस एक ठहराव नहीं था, एक पायदान था जो मैं चढ़ना चाहती थी अपने आप को एक्स्प्लोर करने के लिए। अच्छाई-बुराई, दिन-रात दोनों ही होते हैं, यह शहर रात का अँधेरा दिखाता है, तभी जीवन की रोशनी की क़ीमत अधिक समझ में आती है। एडल्ट शो देखते वक्त महसूस हुआ लोग उत्तेजना में चीख रहे थे, कुछ हँसी आई, कुछ आनंद आया। शायद मन तटस्थ था और एक क्षण आया और गुज़र भी गया कोई ख़ास मन पर चिन्ह नहीं छोड़ पाया सिवाय कलात्मक पक्ष को सराहने के।

हमें फायर वैली और रेड रॉक कैनियन का टूर लेना अभी बाकी है। पंद्रहवीं सदी से यूरोपीय देशों के लोगों के आने से हज़ारों वर्षों पहले अमेरिका के मूल निवासी "नेटिव इंडियंस" यहाँ आसपास की स्टेटस में रहते थे। फायर वेल्ली स्टेट पार्क और रेड रॉक कैनियन पार्क में चट्टानों पर हज़ारों सालों पहले के भित्ति चित्र उनकी मौजूदगी के गवाह हैं। कई दिन तक हम घूमते रहे। कई होटलों में ठहरे। कभी पूरा दिन और देर रात तक घूम वेगस वापस आ जाते थे। हमने कई-कई घंटों और कई सौ मीलों ड्राइव किया। दो और राज्यों में भी घूमने गए, इस जगह के मोह ने हमें बाँध लिया। अप्रैल 2023 में हमारा अगला पड़ाव था नवाडा राज्य का बहुत ख़ूबसूरत नेशनल पार्क "डेथ वैली" जिसे हम घूमने गए। यह लॉस वेगस से ढाई घंटे की दूरी पर है। एक दिन पहले ही पहाड़ों पर स्नो पड़ी थी।

यह कहना यहाँ बहुत सार्थक होगा कि मैं स्वीकार करती हूँ मुझे प्रकृति को निहारना बहुत भाता है। मुझे महसूस होता है जितना कष्ट लेकर गहरे और गहरे उतरो प्रकृति के भीतर उतना ही अधिक, अप्रितम, अनुपम, अनछुआ सौंदर्य प्रकृति का देखने को मिलता है। आज बाथटब में गिर जाने की वजह से बहुत बड़ा नील पड़ गया घुटने के पास। यहाँ छा गया ताज्जुब बटे सन्नाटा, अब बताया जाए या छिपाया जाए, घूमना अधर में लटक जाएगा। देर रात वापस शार्लिट की फ्लाइट भी पकड़नी थी। थोड़ा जाँबाज़ बन चोट का दर्द छिपा लिया। वेगस से ढाई घंटे की ड्राइव बहुत मनोरम थी। पचास-पचास मीलों दूरी तक इक्का -दुक्का एक घर, कई एरिया संरक्षित थे। निर्जन काली पहाड़ियों पर सफ़ेद बर्फ़, बीच-बीच में सुनहरी सँकरी-चौड़ी कैनियन, उनके आगे रेत के टीले और कहीं-कहीं बिखरा उन पर सफ़ेद नमक। जैसे-जैसे डेथ वैली के करीब पहुँच अंदर बढ़ते गए, लगा मानों किसी अलग लोक मंगल गृह पर पहुँच गए हैं। भौगिलिक विविधता का इतना अलौकिक और सुंदर उदाहरण आज तक नहीं देखा था। पहली नज़र का किशोरावस्था का प्यार जितना आकर्षित करती डेथ वैली, जिसका आकर्षण स्वत: ही बाँध ले। गगनचुंबी मीलों तक फैली अनगिनत उघाड़ काली पर्वत शृंखलाएँ एक तरह सफ़ेद शिखरों के साथ, दूसरी ओर उघाड़ पीली -पथरीली, उबड़-खाबड़ पर्वत शृंखलाएँ, खिली धूप में गहन ठंडाई। कहीं मीलों ख़ामोश पथरीली, पीली, उबड़-खाबड़, कटी-फटी, सूखी ज़मीन, कहीं बालू के ढेर, कहीं चौड़ी दरारें, कहीं कत्थई ज़मीन पर षटकोण, अष्टकोण जैसी आकृतियाँ, कंकर-पत्थर। बमुश्किल कहीं जीवन के अंश थे, यहाँ जीव -जंतु तो क्या घास के तिनके बराबर भी निशान न थे। 1000 मील के क्षेत्रफल में नवाडा और कैलिफोर्निया की सीमाओं में फैला डेथ वैली धरती का सबसे गर्म स्थान और अमेरिका का सबसे सूखा स्थान है। यहाँ डेढ़ इंच वर्षा पूरे साल में होती है। यहाँ दिन का तापमान गर्मियों में 130 फेरेनाइट से भी ऊपर चला जाता है।

यहाँ का रेगिस्तान जिसे देखते और इसमें चलते ऐसा महसूस हो रहा था मानों बहुत जीवंत रेगिस्तान है। पहला और सबसे प्रसिद्ध बिन्दु हमने देखा " बेड वाटर बेसिन" जोकि समुद्र तल से 282 फ़ीट नीचे गहराई में पहाड़ों के मध्य वादी में है। यहाँ की जलवायु बहुत शुष्क है, जिससे पानी ठहरता नहीं है, तुरंत वाष्पित हो जाता है। ऊपर पहाड़ों से मिनरल्स बहकर आते हैं और पीछे नमक जैसे फॉर्म में छूट जाते हैं। उनके क्रिस्टल नमक और धूल-मिट्टी के कणों के साथ मिलकर बनते हैं। ऐसा लगता है मानों नमक की झील है, जिसमें क्रिस्टल फार्मेशन होता है विभिन्न बहुभुज आकारों में। उन पर चलकर, उनको देखकर आभास होता है जीवनदायिनी धरती जल की एक बूँद के बिना कितनी असहाय और बंजर है। वह उसका उपजाऊ गुण खोकर बिखरने

लगती है। एक ही नज़र में जीवनचक्र दिखाई देता है। 11000 फ़ीट ऊँचे पहाड़ों पर जल बर्फ बन जमा रहता है और नीचे तलहटी में तपन से धरती सूखी और बंजर। यहाँ 9 मील लम्बी "आर्टिस्टिक ड्राइव" की घुमावदार सड़क पर अविश्वनीय पहाड़ों और चट्टानों के रंग पिंक, हरा, पीच, सफ़ेद, पीला, सुनहरी, काला, ग्रे, भूरा, कत्थई देखते ही मन खिल उठता है। लगता है किसी पेंटर ने अपने ब्रश से इनमें सहज ही रंग भर दिए हैं। एक ज्वालामुखी के फटने के बाद जलवायु की गर्मी और पानी से इन्हें यह रंग मिला है। डेथ वैली आज जो दिखाई देती है वह धरती के भीतर डेढ़ अरब वर्ष पहले शुरू हुई हलचल और कुदरत की ताकत का निरंतर किया हुआ कार्य है।

ज़ेब्रिस्की पाइंट को देखना बहुत रोचक है। इस जगह की विलक्षण बनावट, समान्तर विविध रंगों की कत्थई, भूरी, पीली और सुनहरी टीले नुमा पहाड़ियाँ इसे अनोखा रूप प्रदान करती हैं। नौ करोड़ वर्ष पहले यहाँ एक झील थी, जिसमें गर्म पानी की धाराएँ बहती थीं और एक ज्वालामुखी भी फटा था। वर्तमान में जो पीछे छूट गया उसी सूखी झील से बना यह स्थान है। इस नेशनल पार्क में देखने को बहुत कुछ है और यह आपकी रुचि, समय, और हिम्मत पर निर्भर है आप कितना एक्स्प्लोर करना चाहते हैं!

नेशनल पार्क्स घूमने में अक्सर बहुत समय की ज़रूरत होती है और बहुत चढ़ाई चढ़नी पड़ती है लेकिन यदि प्राकृतिक दृश्य नयनसुख के लिए देखना चाहें तब भी बहुत संभावनाएँ हैं।

मन में ख़ूबसूरत शहर लॉस वेगस और आसपास की ख़ूबसूरत प्राकृतिक सुंदरता की हज़ारों सेल्फी लेकर जब वापस अपने शहर शार्लिट लौटी तब प्रकृति की उदारता कहने को सैकड़ों कहानियाँ थीं मेरे पास। एक अधूरी प्रेम कहानी को पूरा करने की चाह ने इस यात्रा को जन्म दिया था। लौटी तब प्रेम कहानी पूरी ज़रूर हुई लेकिन कुछ ख़राशों के साथ....

क्रमश:

000

ग़ज़ल

ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

विज्ञान व्रत
एन - 138, सैक्टर - 25,
नोएडा - 201301
मोबाइल- 9810224571
ईमेल- vigyanvrat@gmail.com

बच्चे जब होते हैं बच्चे
ख़ुद में रब होते हैं बच्चे
सिर्फ़ अदब होते हैं बच्चे
इक मकतब होते हैं बच्चे
एक सबब होते हैं बच्चे
ग़ौर-तलब होते हैं बच्चे
हमको ही लगते हैं वर्ना
बच्चे कब होते हैं बच्चे
तब घर में क्या रह जाता है
जब ग़ायब होते हैं बच्चे

000

वो मेरा चेहरा न हुआ
मैं भी शर्मिन्दा न हुआ
मैं उसका हिस्सा न हुआ
मुझको ये धोखा न हुआ
सब उसका सोचा न हुआ
वो मेरा रस्ता न हुआ
मैं उसकी भाषा न हुआ
तो मेरा चर्चा न हुआ
होने को क्या-क्या न हुआ
मैं ही बस अपना न हुआ

000

गुज़रे दौर-ज़माने रख
कुछ अख़बार पुराने रख
देख निशाने पर है तू
तू भी ठीक निशाने रख
जाने कब तक पहुँचेगा
रस्ते में मैख़ाने रख
अपना मन बहलाने को
अपने ही अफ़साने रख
जिनका तू मुश्ताक़ रहे
कुछ मंज़र अनजाने रख

000

उसने ख़ुद को पाने तक
छाने हैं तहख़ाने तक
बस किरदार बचाने तक
ज़िन्दा है मर जाने तक
सिर्फ़ मुझे ही सोचेगा
वो मुझसा हो जाने तक
मुझको ढूँढ़ नपाएगा
मुझमें गुम हो जाने तक
बिल्कुल बे-पहचान हुआ
इक पहचान बनाने तक

000

क्यों उनका मेयार जिऊँ
मैं अपना किरदार जिऊँ
मैं अपना किरदार जिऊँ
जीने के आसार जिऊँ
जीने के आसार जिऊँ
जब तक हूँ ख़ुद्दार जिऊँ
जब तक हूँ ख़ुद्दार जिऊँ
ख़ुद से इक तकरार जिऊँ
ख़ुद से इक तकरार जिऊँ
दोधारी तलवार जिऊँ

000

सामने बैठा हुआ हूँ
और ख़ुद को ढूँढ़ता हूँ
आज अपनों से मिला हूँ
फिर पराया हो गया हूँ
आपको जबसे मिला हूँ
आप में ही खो गया हूँ
आप अब मुझमें नहीं हो
देखता हूँ क्या बचा हूँ
ख़त्म होगा ही नहीं जो
एक ऐसा रास्ता हूँ

000

ग़ज़लें

नज़्म सुभाष

लोग जाएँ फिर कहाँ फरियाद करने के लिए
न्याय जब होने लगे बर्बाद करने के लिए
तख़्तियों की भीड़ है, भड़काऊ जिनमें इश्तिहार
लोग पागल हैं यहाँ उन्माद करने के लिए
ये सियासत के नए प्रतिमान ठहरे मुजरिमों
क़ैद करना है तुम्हें आज़ाद करने के लिए
लूटकर सब ले गए जो कुछ बचा था लूट से
आए थे बस्ती में जो इमदाद करने के लिए
अपने-अपने तर्क सबके अपनी-अपनी आस्था
शेष क्या बचता है फिर संवाद करने के लिए
जोंक बनकर मुफ़लिसों का ख़ून पीता है वही
जो भी आता है इधर आबाद करने के लिए
सोचता हूँ इन दिनों कर लूँ मुहब्बत की तलाश
दर्द-ए-दिल फिर से नया ईजाद करने के लिए

ooo

यक़ीनन इसलिए बौने बड़े हैं
झुकाए सर स्वयं बरगद खड़े हैं
ज़मीनी हाल वो कैसे लिखेंगे
क़लम जिनके नगीनों से जड़े हैं
बदलनी हैं पुरातन मान्यताएँ,
ज़हन लेकिन हमारे ख़ुद सड़े हैं
वो जो कह दें वही सच मान लेंगे
हमें है होश कब हम बेवड़े हैं
हक़ीकत में तो मनमर्ज़ी है कायम
रजिस्टर पर नियम बेशक कड़े हैं
मगन हैं खींचने में पाँव सारे
यहाँ हर ओर फैले केकड़े हैं
वहीं पर 'नज़्म' देखी धूसख़ोरी
जहाँ पर न्याय के परचम गड़े हैं

ooo

तू किसी की बात पर बिल्कुल न अपने कान दे
कट रही है जेब तेरी इस पे थोड़ा ध्यान दे
ज़िंदगी से इस क़दर उकता गए हैं हम कि अब
मौत ही दे दे ख़ुदा पर वो ज़रा आसान दे
जब पड़ोसी की तरक़्क़ी आपको पचती नहीं
तो पड़ोसी मुश्किलों में आपकी क्यों जान दे
आमजन के दर्द को समझें सियासी लोग भी
ऐ ख़ुदा तू ज़िंदगी में उनके भी तूफ़ान दे
शान्ति के प्रस्ताव सारे रद्द कर दे इन दिनों
ये फ़सादी दौर है गुंडों को भी सम्मान दे
लग्ज़री लाइफ की ख़ातिर बेईमानी भी सही
अब कोई कहता नहीं 'ईश्वर मुझे ईमान दे'
फ़ेसबुकिया दौर में ऐ 'नज़्म' सब उस्ताद हैं
मान जाएँगे बुरा तू मत किसी को ज्ञान दे

ooo

दफ़्तरों में न्याय के चस्पा हैं जो नारे न देख
घूस रख दे मेज़ पर उम्मीद के तारे न देख
राह में जो भी मिले पहले किनारे कर उसे
जीतने के वास्ते चेहरे कभी हारे न देख
ये तेरी ख़ानाबदोशी साथ तेरे जाएगी
तू जहाँ ठहरा उसे हसरत से बंजारे न देख
सोचना तुझको था पहले इश्क़ के अंजाम पर
बढ़ चुका जब उस तरफ़ तो अश्क के धारे न देख
झुग्गियों से पूछ तू ख़ुशहालियों की दास्ताँ
कोठियों से गूँजते उद्घोष जयकारे न देख
एक दिन होना यही था टालते टलता नहीं
बँट चुके जब दिल यहाँ तो घर के बँटवारे न देख
ये सियासी दौर ख़ुद विध्वंस का पर्याय है
मुल्क़ गर जलने लगे तो शक से अंगारे न देख

ooo

नज़्म सुभाष
356/केसी-208 कनकसिटी
आलमनगर लखनऊ -226017 उप्र
मोबाइल- 6394894504
ईमेल- nazmsubhash97@gmail.com

बहुरंगी दोहे

रघुविन्द्र यादव

मर्यादा को रौंदती, तोड़े जन विश्वास।
शेष नहीं संवेदना, अब कुर्सी के पास।

अँधियारा जब-जब करे, नैतिकता की बात।
सकुचाती है चाँदनी, इठलाती है रात।

उस बस्ती के सोचिए, क्या होंगे हालात।
जहाँ कलमुँहा चाँद को, कहे अमा की रात।

जो भी मुर्गा बाँग से, जो भी करे सवाल।
हाकिम का आदेश है, सबको करो हलाल।

नैतिकता ईमान के, विकट हुए हालात।
झूठ सत्य को कह रहा, सरेआम बदज़ात।

बस्ती-बस्ती भूख है, नगर-नगर है प्यास।
कंकरीट को दे दिया, हमने नाम विकास।

धर्म स्थलों पर हो रहे, वहाँ निरंतर शोध।
मर जाते हैं भूख से, लाखों जहाँ अबोध।

हुई मोम-सी ज़िंदगी, पिघल रही हर रोज़।
हिरन सरीखा मन अभी, ख़ुशी रहा है खोज।

मंतर पढ़ना प्यार के, है चूहों की भूल।
ज़हरी डसने का कभी, तोड़ें नहीं उसूल।

क़दम-क़दम पाखण्ड है, नगर-नगर उत्पात।
कौन तर्क विज्ञान की, आज करेगा बात।

नीर क्षीर को छाँट दें, रहे नहीं वो हंस।
पक्षपात में लीन हो, करते हैं विध्वंस।

जब-जब धंधा धर्म का, पड़ता है कमज़ोर।
धर्म बचाने का तभी, मचने लगता शोर।

कोई डूबा बाढ़ में, बुझी किसी की प्यास।
बरसा है मातम कहीं और कहीं उल्लास।

क़दम-क़दम पर ज़िंदगी, करती रही निराश।
गुलमोहर-सा मैं तपा, बनकर खिला पलास।

दीपक का होता रहा, हर युग में गुणगान।
किसने रेखांकित किया, बाती का बलिदान।

मान रही थी मानवी, जिसको निश्छल नेह।
उसका अंतिम लक्ष्य था, पाना सुंदर देह।

जहाँ अहम् पलने लगा, हुआ वहाँ विध्वंस।
आख़िर मारे ही गए, रावण हो या कंस।

करने लगीं हैं आरियाँ, सद्भावों की बात।
चौकस रहना क्यारियों, हो सकता है घात।

चढ़ा हुआ है धर्म का, सब पर गहरा रंग।
किसको फ़ुरसत है यहाँ, लड़े भूख से जंग।

गीदड़, लोमड़, भेड़िये, हैं सेवा में लीन।
भेड़ करेंगी एक को, कुर्सी पर आसीन।

माली भी हैरान है, देख समय का फेर।
बरगद को बौना कहें, गमले उगे कनेर।

हर दिन खींचा जा रहा, द्रुपद सुता का चीर।
सत्ता अंधों की मगर, नहीं समझती पीर।

रघुविन्द्र यादव,
प्रकृति भवन, नीरपुर,
नारनौल (हरियाणा) 123001
मोबाइल- 9416320999
ईमेल- raghuvinderyadav@gmail.com

गीत

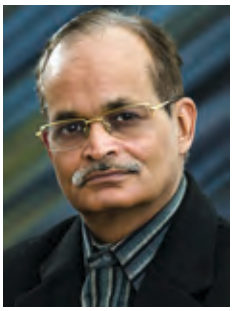

सूर्य प्रकाश मिश्र के गीत

बादल के बहाने

थोड़े ही सही आए बादल
लगता है कि आँगन भीगेगा
कागा ने पढ़ी पाती उनकी
मन भीग गया तन भीगेगा

बादल के बहाने बह लेंगे
सूरत को तरसते नैन भरे
धरती की तरह से सूख चले
फिर हो जाएँगे घाव हरे

बूँदों में घुली कविता सुनकर
प्राणों का ये बन्धन भीगेगा

देखा तो सिहर कर बैठ गई
नइहर की पठाई पुरवाई
सखियों की कही कितनी बातें
मुट्ठी में छिपा कर ले आई

यादों से भरी चादर ओढ़े
सोया है जो सावन भीगेगा

कजरी की कसम सब भूल गए
बुलबुल के सुनहरे अफसाने
कोयल के, गिलहरी के किस्से
झूलों में छिपीं मीठी ताने

मैना की अदाएँ भीगेंगी
तोता का बिछावन भीगेगा

000

नीला हरा रंग

नीले हरे रंग का पानी

फिर लिख देगा धवल रेत पर
शंख सीप से प्रेम कहानी

झलक रहे बूँदों के मोती
अक्षर बन कर तब निकलेंगे
जब चमकीले आसमान पर
झिलमिल करते दीप जलेंगे

भावों की अभिव्यक्ति बनेगी
चंचल लहरों की मनमानी

चाँद, चाँदनी के जीवन के
खट्टे-मीठे भाव लिखेगा
मिट्टी में शैवाल घोलकर
उलझे हुए स्वभाव लिखेगा

सारी रात जियेगी जी भर
फिर पूनम की रात सुहानी

पवन बजाती मधुर बाँसुरी
बादल सुध-बुध भूल गए हैं
जी भर शहद पी चुके भौंरे
कमल कुंज में झूल गए हैं

ढलने लगा शाम का आँचल
खिलने लगी रात की रानी

000

बूँदों की चिंगारी

कह दो सावन से ना बरसे
फिर तरसेगी विरहन कोई
इन बूँदों की चिंगारी से
सुलगेगा फिर यौवन कोई

होठों से माथे पर लिखकर
वो जबसे जीवन गीत गए
अक्षर-अक्षर पढ़ते-पढ़ते
जाने कितने युग बीत गए

अब नैन बरसते हैं जितना
क्या बरसेगा सावन कोई

ले गई पवन मन की चिट्ठी
पर लाई ना कोई उत्तर
मनुहार उचरते कागा से
ले आए कोई खोज-ख़बर

कहता है कोई प्यार इसे
और कहता पागलपन कोई

विरहन संग सीझ रही मैना
विरहन संग सूख रही तुलसी
कहता आँखों का सूनापन
बिन जिये ज़िंदगी बीत रही

देखो बिन चाँद चकोर कोई
बिन जोग लिये जोगन कोई

000

सूर्य प्रकाश मिश्र
बी 23/42 ए के, बसन्त कटरा, गाँधी चौक, खोजवा (दुर्गाकुंड), वाराणसी 221001, उप्र
मोबाइल: 09839888743
ईमेल- surya.misra1958@gmail.com

मैं हिन्दी का लेखक शपथ पूर्वक यह कथन करता हूँ कि-

मैं एक हिन्दी का लेखक हूँ, इसलिए मेरे बारे में कुछ बातें जानना आपके लिए आवश्यक है। इन बातों को जान लेने के बाद मेरे द्वारा कही गई किसी भी बात, या मेरे द्वारा उठाए गए किसी भी क़दम पर आपको आश्चर्य नहीं होगा। असल में एक विशेष प्रकार का स्वभाव मुझमें वंशानुगत रूप से डीएनए में आता है। वंशानुगत का अर्थ है हिन्दी लेखन वंश का नुमाइंदा होने के नाते। कुछ गुण होते हैं जो मुझे अपने लेखक पुरखों से मिलते हैं। उनमें भी थे और मुझमें भी हैं, तथा मेरे बाद के लेखकों में भी होंगे। असल में हम सब लेखक परंपरा के ध्वज वाहक होते हैं। हमारे पुरखे हमें जो ध्वज सौंप देते हैं वही ध्वज लेकर हम आगे बढ़ते हैं। तो आज हम इन्हीं ध्वजों की बात करेंगे, जो स्वभाव के रूप में मुझे मेरे लेखक पुरखों से प्राप्त हुए हैं। मतलब कुछ विशेष करने का अधिकार, जिस पर कभी भी, कोई भी सवाल नहीं उठा सकता।

1 यह कि मुझे हर उस आलोचक या समीक्षक को महान् घोषित करने का पूरा अधिकार है, जो मेरी रचनाओं को महान् घोषित करेगा। इसी तरह से मुझे उस आलोचक या समीक्षक को घटिया घोषित करने का पूरा अधिकार है, जो मेरी रचनाओं को घटिया घोषित करेगा। साथ ही मुझे यह अधिकार भी प्राप्त है कि जो आलोचक या समीक्षक मेरी रचनाओं पर किसी भी प्रकार की कोई बात न करे, उसे मैं पूर्वाग्रह से ग्रस्त घोषित कर सकता हूँ।

2 यह कि मैं उन सभी कार्यक्रमों को सोशल मीडिया पर अत्यंत सफल तथा गरिमामय आयोजन घोषित करने का पूरा अधिकार रखता हूँ, जिन कार्यक्रमों में मुझे बुलाया जाएगा। जिन कार्यक्रमों में मुझे नहीं बुलाया जाएगा मैं उन कार्यक्रमों की सोशल मीडिया पर धज्जियाँ बिखेरते हुए उनको 'फूहड़' तथा 'असफल' कार्यक्रम घोषित करने का अधिकार रखता हूँ। जिन कार्यक्रमों में मुझे बुलाया गया, उन कार्यक्रमों के लिए मैं बिना ख़ाली सभागृह का फ़ोटो डाले 'श्रोताओं से खचाखच भरा सभागृह' लिखने का भी पूरा अधिकार रखता हूँ।

3 यह कि मैं उन सारे सम्मानों तथा पुरस्कारों को 'नोबल पुरस्कार' से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण तथा बड़ा सम्मान घोषित करने का पूरा अधिकार रखता हूँ, जो सम्मान या पुरस्कार मुझे दिये जाएँगे। साथ ही मैं उन सम्मानों तथा पुरस्कारों को 'पूर्व नियोजित', 'पक्षपाती' तथा 'सेटिंग वाले' घोषित करने का अधिकार रखता हूँ, जो पुरस्कार या सम्मान मुझे नहीं प्रदान किए जाएँगे। मैं ऐसे सम्मानों तथा पुरस्कारों की तब तक निंदा करता रहूँगा, जब तक निर्णायक समिति मुझे ये सम्मान या पुरस्कार प्रदान करने का निर्णय नहीं ले लेती।

4 यह कि मैं साहित्यकारों की उन सारी सूचियों को 'संतुलित' तथा 'समावेशी' घोषित करने का पूरा अधिकार रखता हूँ, जिन सूचियों में मेरा नाम शामिल कर लिया जाएगा। मैं उन सारी सूचियों को 'हास्यास्पद' घोषित करने का पूरा अधिकार रखता हूँ, जिन सूचियों में मुझे शामिल नहीं किया जाएगा। साथ ही मैं इस प्रकार की सूचियाँ बनाने वाली संस्थाओं को भी 'रद्दी' और 'बकवास' संस्थाएँ घोषित करने का पूरा अधिकार रखता हूँ। यहाँ मैं एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि मेरा नाम सूची में ठीक स्थान पर नहीं रखा गया, तो भी मैं उस सूची को ख़ारिज कर देने का पूरा अधिकार रखता हूँ।

5 यह कि मैं उन सारी पत्रिकाओं को 'अत्यंत महत्त्वपूर्ण' तथा 'गंभीर' पत्रिका घोषित करने का पूरा अधिकार रखता हूँ, जो पत्रिकाएँ अपने विशेषांकों में मेरी रचनाएँ प्रकाशित करती हैं। मैं उन पत्रिकाओं को 'दोयम दर्जे की' तथा 'नामालूम' पत्रिका घोषित करने का भी पूरा अधिकार रखता हूँ, जो पत्रिकाएँ अपने विशेषांकों में मेरी रचनाएँ नहीं प्रकाशित करती हैं। साथ ही मैं इस प्रकार के विशेषांकों को भी 'कूड़ा' और 'नीरस' कहने का अधिकार रखता हूँ।

यह सारी सूचनाएँ आपको पहले से प्रदान की जा रही हैं कि आप इनमें से कुछ भी करने के पहले इन सारी बातों को याद रखें...। **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

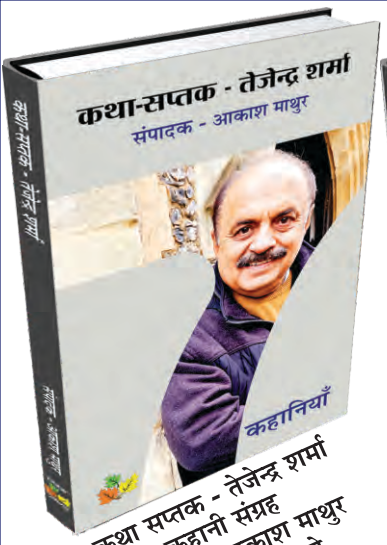

कथा सप्तक - तेजेन्द्र शर्मा
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

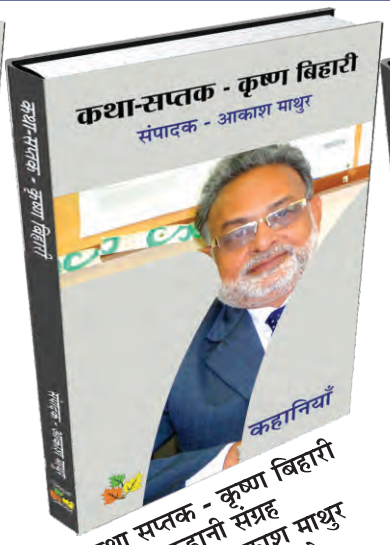

कथा सप्तक - कृष्ण बिहारी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

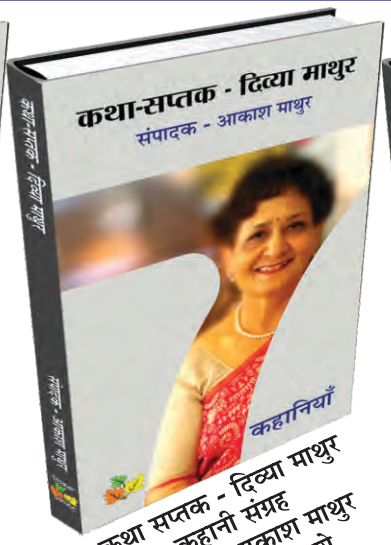

कथा सप्तक - दिव्या माथुर
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 200 रुपये

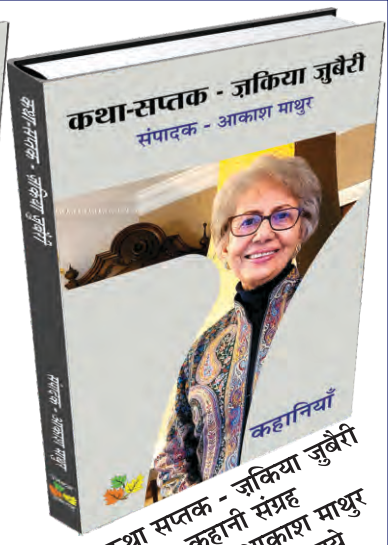

कथा सप्तक - ज़किया ज़ुबैरी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

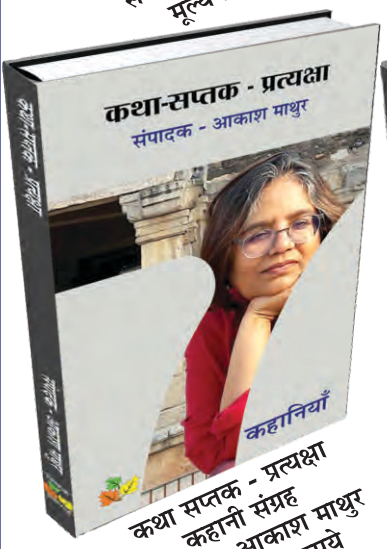

कथा सप्तक - प्रत्यक्षा
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

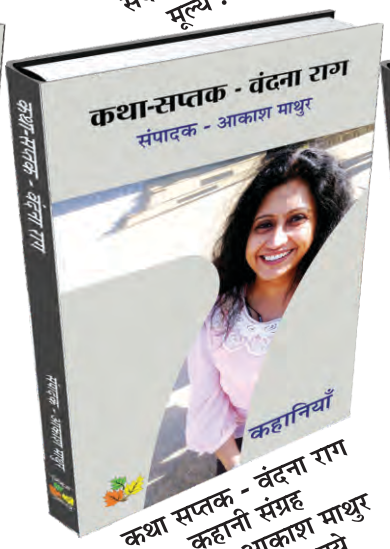

कथा सप्तक - वंदना राग
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 200 रुपये

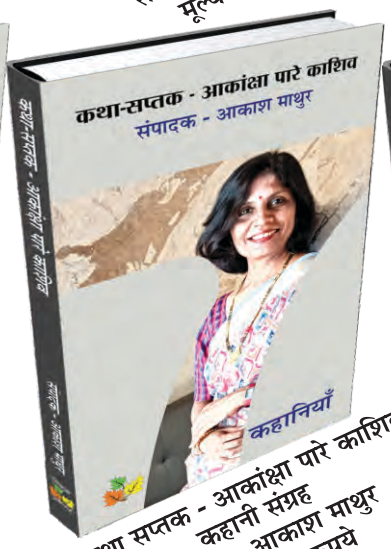

कथा सप्तक - आकांक्षा पारे काशिव
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

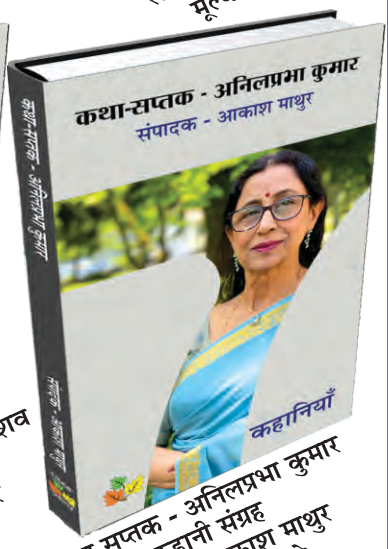

कथा सप्तक - अनिलप्रभा कुमार
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

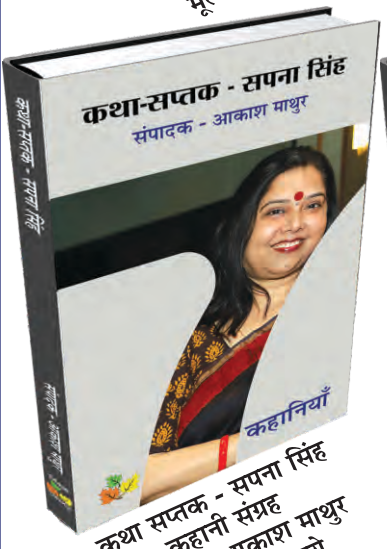

कथा सप्तक - सपना सिंह
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

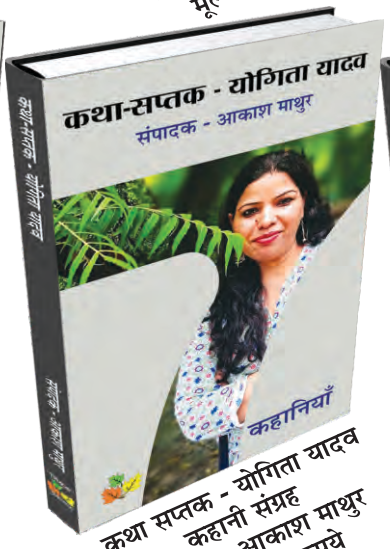

कथा सप्तक - योगिता यादव
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

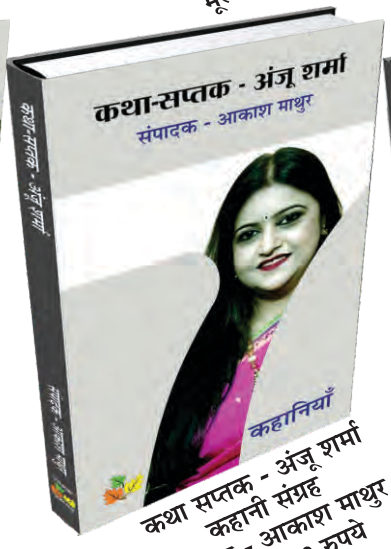

कथा सप्तक - अंजू शर्मा
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

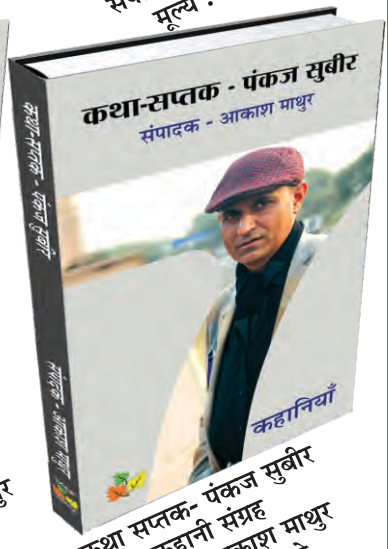

कथा सप्तक- पंकज सुबीर
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 के शुभारंभ समारोह के अवसर पर अतिथिगण श्री उमेश शर्मा, श्री सुनील भालेराव तथा श्री हितेन्द्र गोस्वामी।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 के शुभारंभ समारोह के अवसर पर अतिथिगण श्री अनिल पालीवाल तथा श्री राजेश चाण्डक।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 के शुभारंभ समारोह के अवसर पर अतिथिगण श्री लोकेन्द्र मेवाड़ा तथा श्री कैलाश अग्रवाल

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर प्रवासी कवयित्री कथाकार सुश्री शिखा वार्ष्णेय के आगमन पर उनका सम्मान किया गया, इस अवसर पर उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को संबोधित भी किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।